सचित्र

राजनैतिक भारत

(Political Parties in India)

—:o:—

लेखक

हनुमानप्रसाद गोयल बी० ए० एल-एल० बी०

कामरेड मन्मथनाथ गुप्त (भूतपूर्व काकोरी क़ैदी)

दामोदर स्वरूप गुप्त (रचयिता "हिन्दी-रत्न-कोष")

—:o:—

प्रकाशक

विश्व-विद्यालय-परीक्षा-बुकडिपो,

पानदरीबा, इलाहाबाद।

प्रथमवार } मार्च, १९४० { मू० सजिल्द २॥)
अजिल्द २)

प्रकाशकीय

त्रिपुरी कांग्रेस से अब तक के राजनैतिक वातावरण में एक विचित्र सी चहल-पहल रही। विविधि पार्टियों के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से प्रायः देश के समझदार व्यक्तियों की भी समझ में नहीं आ रहा था कि स्वराज्यप्राप्ति के लिए किस मार्ग का अनुसरण किया जाय। नित्यप्रति अख़बार पढ़ने के कारण हमारे मस्तिष्क में भी यही उलझन पैदा हो रही थी। निरंतर विचार करने के बाद, आख़िरकार २३ जनवरी को हमारे विचार में यह बात आयी कि भारत की तमाम राजनैतिक संस्थाओं का एक संक्षिप्त इतिहास मय उनके उद्देश्यों के रामगढ़ कांग्रेस के अवसर पर प्रकाशित किया जाय, जिससे जनता के सामने वर्त्तमान राजनीति की एक तस्वीर आ जाय, और वह समझ सके कि भारत के लिए कौन सा मार्ग उपयोगी है। अस्तु, कार्य प्रारंभ हो गया; प्रस्तुत पुस्तक सामने है।

कृतज्ञता प्रकाश

इस पुस्तक के लिखने में श्री बा० हनुमान प्रसाद जी गोयल तथा श्री मन्मथनाथ गुप्त ने विशेष परिश्रम किया है, अतः हम उनके विशेष कृतज्ञ हैं। हम श्री पं० गयाप्रसाद जी तिवारी बी० काम० प्रोप्राइटर, नारायण प्रेस के भी कम कृतज्ञ नहीं हैं, जिन्होंने अपने प्रेस को इस काम में लगाकर, इतनी बड़ी पुस्तक को दो सप्ताह के अन्दर ही सम्पन्न कर दिया।

इसके अतिरिक्त इस कार्य में हमें जिन संस्थाओं, पुस्तकों, समाचार पत्रों से सहायता मिली है, उनके मंत्रियों, लेखकों तथा सम्पादकों के हम कृतज्ञ हैं। हम अपने उन मित्रों को भी नहीं भुला सकते जिन्होंने समय समय पर इस कार्य में सहयोग दिया है।

प्रकाशक—

देश के पैंतीस करोड़ से

रामगढ़ कांग्रेस के पुनीत अवसर पर हिन्दी के पाठकों को "राज-नैतिक भारत" नामक पुस्तक अर्घ्य रूप में अर्पण करते हुए हमें अपार हर्ष होता है। इस समय देश के राजनैतिक आकाश में विभिन्न पथगामी दल-बादलों का जो तुमुल द्वन्द्व मच रहा है, उसकी प्रगाढ़ कालिमा में हमारे भविष्य का उज्ज्वल सूय्य प्रायः ढँक सा गया है। फिर भी यह केवल एक मौसमी हवा है। इसमें डरने या घबराने की कोई बात नहीं। डर या घबराहट तो उन वन्य पशुओं को होनी चाहिए, जिनका जीवन दूसरों के रक्त और मांस से पला करता है। स्वराज्य के चातक, पपीहों, और मयूरों के लिए तो यह समय भी उत्साह और हौसले का है। संभव है, दलबंदियों की इन काली काली घटाओं द्वारा देश में कुछ समय के लिए आंधी और तूफान तक खड़े कर दिये जायँ, किन्तु इन्हीं घटाओं के अंदर हमारी स्वतंत्रता खेती की सारी हरियाली भी छिपी हुई है। अतएव इन राजनैतिक दलबादलों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना, उनके रूप रंग, रुख़ और गहनता का यथोचित अध्ययन करना, और फिर अपने अपने मस्तिष्क की स्वतंत्रता 'आब्ज़र्वेटरी' (Observatory) द्वारा देश के भविष्य का सच्चा 'फ़ोरकास्ट' (forecast) निकालना हम सबों का पहिला कर्तव्य है। इसके पश्चात् हमें क्या करना चाहिए, यह स्वयं विदित हो जायगा। प्रस्तुत पुस्तक इस प्रकार के अध्ययन में यथेष्ट सहायता देगी, ऐसी हमारी आशा है, और इसी आशा को लेकर इस पुस्तक की रचना की गयी है। आज से बीस साल पहिले भारतवर्ष में मुख्यतः दो दल थे, जो प्रायः नरम दल और गरम दल के नाम से पुकारे जाते थे। ज़्यादा से ज़्यादा एक दल और कहा जा सकता है, जो बम पार्टी या अनार्किस्ट पार्टी के नाम से प्रसिद्ध था। किन्तु गत पन्द्रह साल के दौरान में इतने नये नये दल पैदा हो चुके हैं कि साधारण पाठकों के लिए बड़ी कठिनाई का सामना होता है। और केवल साधारण पाठक ही क्यों, अच्छे अच्छे राजनैतिक कार्यकर्ता,

यहां तक कि सम्पादक और लेखक गण भी इनके सम्बन्ध में बहुधा भ्रम में पड़ते हुए देखे गये हैं। इसी भ्रम को मिटाने के लिए, तथा इस सम्बन्ध में कम से कम पन्नों में अधिक से अधिक ठोस ज्ञान पाठकों के सामने पेश करने के लिए प्रस्तुत पुस्तक तैयार की गयी है। इसमें से एक एक विषय पर कम से कम एक एक पुस्तक पढ़ने की ज़रूरत है, इसलिए स्पष्ट है कि हमारी पुस्तक पूर्णता का दावा नहीं कर सकती, फिर भी इस छोटे से ३७० पन्ने के दायरे में जितनी जानकारी इकट्ठी की जा सकती है, उतनी में हमने कोई त्रुटि नहीं रक्खी।

इस पुस्तक का एक ऐब यह है कि इसमें कतिपय घटनाओं की पुनरावृत्ति हो गयी है, किन्तु ऐसी पुस्तक के लिए यह अनिवार्य था। उदाहरणार्थ किसी एक घटना को, जैसे कांग्रेस मंत्रि-मंडल की स्थापना को ले लीजिए। इसकी कुछ न कुछ प्रतिक्रिया प्रत्येक संस्था पर हुई, इसीलिए इन संस्थाओं का इतिहास लिखते समय उसका उल्लेख करना ज़रूरी हो गया।

हमारी यह पुस्तक एक प्रगतिशील उद्देश्य को ही सामने रखकर लिखी गयी है। इस कारण प्रत्येक संस्था का इतिहास लिखते समय हमने प्रगतिशील राष्ट्रीय दृष्टिकोण से काम लिया है और उसी के अनुसार उन की आलोचना भी की है। हमारा काम तो केवल इतिहास लिखने का है; किन्तु हम समझते हैं, समालोचना ही इतिहास का प्राण है। इतिहास केवल भूतकाल की घटनाओं का विवरण ही नहीं, वह वर्तमान एवं भविष्य का पथ-प्रदर्शक भी है।

आज के राजनैतिक भारत में जो धाराएं, उपधाराएँ तथा एक दूसरे को काटती हुई धाराएँ चल रही हैं, उनको बिना समझे भारतीय राजनीति पर कोई मन्तव्य करना एक ज़बर्दस्ती होगी। इस पुस्तक में जिन संस्थाओं, दलों का इतिहास दिया गया है वे प्रायः सब की सब जीवित हैं। एक मात्र क्रान्तिकारी दल ही ऐसा

है, जो इस समय नैसर्गिक मृत्यु प्राप्त कर चुका है। फिर भी इसको इस पुस्तक में स्थान देने के कारण हैं। आतंकवादी दल मर चुका है। जिन आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों में वह पैदा हुआ था वे अब जाती रहीं, इसलिए वह दल भी मर गया। देश के हक़ में यह अच्छा हुआ। किन्तु फिर भी उसका इतिहास हमारी जाति की सुप्त चेतना (Subconcious) में प्रविष्ट हो चुका है, युग-मन पर उसकी क्रिया जारी है, इसलिए मृत होने पर भी उसका इतिहास इसमें सम्मिलित करना आवश्यक समझा गया। फिर एक बात और भी है; आज हमारे सार्वजनिक जीवन में सुभाष बाबू से लेकर एम० एन० राय तक सैकड़ों ऐसे व्यक्ति फ़ारवर्ड ब्लाक, रेडिकल लीग, कांग्रेस समाजवादी दल में हैं जो पहिले प्रमुख आतंकवादो क्रान्तिकारी थे। इन लोगों को समझने के लिए इनके पिछले इतिहास को समझना ज़रूरी जान पड़ता है। इसी कारण हमें इस मृत दल का भी इतिहास दे देना ज़रूरी मालूम हुआ। इसी प्रकार ख़िलाफ़त कमेटी का इतिहास भी हमने दिया है, यद्यपि इस समय वह एक मुर्दा पार्टी है।

रामगढ़ कांग्रेस हमारी जाति के लिए एक विशेष अवसर है, न मालूम इस पथ संगम से देश का रथ किधर चल पड़े। इस समय विचारों के संघर्ष से सारा राजनैतिक गगन पीड़ित है, मूल्य परिवर्तित हो रहे हैं, ऐसे समय में यदि इस पुस्तक का प्रकाशन इस धुंधलेपन को दूर कर प्रकाश की एक टिमटिमाती रेखा पैदा कर सके, तो हम अपने श्रम को सार्थक समझेंगे।

हनुमानप्रसाद गोयल
मन्मथनाथ गुप्त
दामोदरस्वरूप गुप्त

विषय-सूची

चित्र-सूची

—:०:—

इन्डियन नेशनल कांग्रेस

कांग्रेस का इतिहास हमारी स्वतंत्रता की वर्तमान लड़ाई का इतिहास है। यह लड़ाई इधर बीस वर्षों से जिस स्वरूप को धारण कर रही है, वह केवल भारतवर्ष के ही इतिहास में नहीं, बल्कि संसार भर के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना है। इसका ढङ्ग ही अलौकिक है—साँप मर जाय, पर लाठी न टूटे। शत्रु लोहा मान ले पर शस्त्र उठाने की जरूरत न पड़े। वास्तव में इस युद्ध की उड़ान नैतिकता के अकाश में है जो इस पार्थिव जगत् के लिए एक बिल्कुल नयी बात है। इसकी जीत बिल्कुल निश्चित है; बल्कि यों कहिए कि अंशतः हो भी चुकी है। अतः संसार के आश्चर्य चकित नेत्र आज एक टक इसी ओर निहार रहे हैं। योरोप के प्रलयकारी युद्धों के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाले शांतिप्रिय लोग आज इसी में एक नयी आशा की झलक देख रहे हैं, और दुनिया की तमाम पददलित जातियाँ भी आज इसमें एक नयी शक्ति का अनुभव कर रही हैं। बहुत संभव है कि लड़ाई का यह नया ढङ्ग जो आज भारत की स्वाधीनता का साधन हो रहा है, आगे चल कर किसी समय दुनिया की तमाम राजनैतिक और सामाजिक उलझनों को सुलझाने में समर्थ हो। अस्तु।

पूर्व परिस्थिति

राष्ट्रीय कांग्रेस का इतिहास सन् १८८५ से आरंभ होता है। किंतु

इसके सम्बंध में कुछ लिखने के पूर्व देश की पूर्वावस्था पर भी एक विहंगम-दृष्टि डाल लेना उचित जान पड़ता है।

भारतवर्ष में अंग्रेज़ों की अमलदारी का श्रीगणेश एक व्यापारी कंपनी द्वारा किया गया था, जो सन् १६०० में ईस्ट इंडिया कंपनी के नाम से इंगलैंड में स्थापित हुई थी। आरंभ में इस कंपनी का अन्य योरोपियन कंपनियों के समान एक मात्र उद्देश्य इस देश में व्यापार करना ही था और लगभग १०० वर्ष तक उसका यही उद्देश्य बराबर बना रहा। किंतु बाद में ज्यों-ज्यों इस कंपनी के एजेन्टों को यहाँ की राजनैतिक कमज़ोरियों का ज्ञान होने लगा, त्यों-त्यों उन्होंने इन कमज़ोरियों से लाभ उठाना भी प्रारंभ कर दिया। भाग्य उनके साथ था। यहाँ के देशी नरेशों की आपसी फूट और वैमनस्य ने उन्हें पूरी-पूरी मदद पहुँचाई। अतएव उनकी राजसत्ता इस देश में उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। यहाँ हमें उस इतिहास में जाने की आवश्यकता नहीं जो इस कंपनी की ओर से की गयी दग़ाबाज़ियों और नारकीय कृत्यों से भरा पड़ा है, जिनके द्वारा कंपनी के एजेन्टों ने क़दम-क़दम पर इक़रारों और अहदनामों को तोड़ा, स्थान-स्थान पर लूट मचाई, और कंपनी को मालामाल करने के साथ ही साथ अपनी जेबों को भी दोनों हाथों से भरा। न यहाँ यही बताने की ज़रूरत है कि किस प्रकार इन नीच कृत्यों में कुछ दग़ाबाज़ और नमकहराम हिन्दुस्तानियों ने उनका साथ दिया। इतना ही कहना पर्य्याप्त होगा कि अपने राज्य-विस्तार के काम में कंपनी की ओर से किसी नैतिक पहलू पर कभी ध्यान नहीं दिया गया; केवल स्वार्थ साधन ही उनका मुख्य लक्ष्य रहा।

कंपनी के इस बढ़ते हुए राज्यविस्तार को देख कर ब्रिटिश पार्लिया-मेंट को उसके प्रबंध कार्य पर निगरानी रखने की आवश्यकता जान पड़ी। अतएव सन् १७७४ ई० में एक "रेग्युलेटिंग ऐक्ट" पास हुआ जिससे कंपनी के डायरेक्टरों की सभा के ऊपर एक "बोर्ड आफ़

कंट्रोल" (नियंत्रण-समिति) क़ायम हुआ, तथा भारतवर्ष में कौंसिल सहित एक गवर्नर जनरल की नियुक्ति की गयी। सन् १७८५ ई० में कुछ और सुधार किए गये। इसके पश्चात् १७९३, १८१३, १८३३ तथा १८५३ में जब जब कंपनी को नया चार्टर दिया गया तब-तब उसके प्रबंध-कार्यों की जाँच-पड़ताल भी की गयी। इन जांच-पड़तालों से यद्यपि कंपनी के आदमियों की काली करतूतों का कभी-कभी कुछ दिग्दर्शन पार्लियामेंट की बैठकों में हो जाया करता था, किन्तु भारतीयों के हक़ में उनसे कुछ विशेष फल न निकला।

सन् १८३३ ई० में कंपनी की राज्य-सत्ता यहां तक बढ़ गयी थी कि अब उसका एक व्यापारिक कंपनी के रूप में बना रहना अनुचित समझा गया और उसका इस देश में व्यापार करने का अधिकार ले लिया गया। इस समय से वह एक पूर्ण राजनैतिक संस्था के रूप में हो गयी। इसी समय एक नया क़ानून भी पास किया गया, जिसमें कहा गया कि "पूर्वोक्त प्रदेशों का कोई भी निवासी, या सम्राट् की कोई भी प्रजा, जो वहाँ रहते हों, केवल अपने धर्म, जन्म स्थान, वंश या वर्ण के कारण कंपनी में किसी स्थान, पद या नौकरी से वंचित न रक्खे जायंगे।" इस नियम से भारतीयों को अंग्रेज़ों की बराबरी में केवल योग्यता के लिहाज़ से ऊंची से ऊंची नौकरी मिल सकती थी, लेकिन इस नियम का पालन किसी समय भी नहीं किया गया।

इसी समय भारतीयों की शिक्षा के विषय में भी बहस छिड़ी। लार्ड मेकाले का कहना था कि यहां शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी रक्खा जाय। हिंदुस्तानियों की ओर से राजा राममोहनराय भी इसी मत के समर्थक थे। निदान अंग्रेज़ी शिक्षा के पक्ष में ही निर्णय कर दिया गया, जो आज तक इस देश में चालू है।

सन् १८४३ ई० में सिंध और १८४९ ई० में पंजाब का देश भी अंग्रेज़ी के कंपनी के हाथ में आगया। इसी समय लार्ड डलहौज़ी की

ज़बरदस्त नीति के कारण अनेकों देशी नरेशों की रियासतें भी कंपनी के राज्य में मिला ली गयीं। इसका परिणाम यह हुआ कि कंपनी पर से लोगों की रही सही श्रद्धा भी उठ गयी और उसके प्रति क्रोध एवं घृणा की लहर, देश के एक छोर से दूसरे छोर तक दौड़ने लगी। इस कंपनी की व्यावसायिक नीति की कुटिलता यहां के देशी कला-कौशल को नष्ट करने के अनेकों नीच प्रयत्न देश के कारीगरों पर उसका बढ़ता हुआ अत्याचार, लोगों को ईसाई बनाने की कोशिशें सब प्रकार से इस देश के धन-शोषण की उसकी नीति आदि कुछ ऐसी बातें थीं जिनसे भारतीयों में असंतोष की मात्रा पहिले ही से बढ़ी हुई थी। किंतु अब डलहौज़ी की इन नयी ज़्यादतियों ने कंपनी के शासन को एकबारगी असह्य बना दिया, जिससे यहां के अधिकांश भारतीय स्वाधीन होने के लिए व्याकुल हो उठे।

परिणाम में सन् १८५७ ई० का बलवा हुआ, जिसे भारतीयों की स्वतंत्रता का संग्राम कहना अधिक मुनासिब होगा। यद्यपि इसमें थोड़ी बहुत धार्मिकता का भी पुट अवश्य मिला था; किंतु वास्तव में इसे एक राजनैतिक स्वतंत्रता का ही युद्ध कहना अधिक युक्तिसंगत होगा। सफल हो जाने की अवस्था में यह भारतीय इतिहास में वही स्थान प्राप्त करता जो आज अमेरिकन स्वतंत्रता के युद्ध को अमेरिका के इतिहास में प्राप्त है। इस युद्ध में उत्तर भारत के तमाम हिंदू और मुसलमान, कंपनी की देशी पल्टनों की सहायता से अंतिम मुग़ल बादशाह बहादुरशाह को अपना शासक मान कर और बिठूर के क़ैदी पेशवा नाना साहब को अपना नेता बनाकर स्वाधीन बनने की चेष्टा में एकबारगी उठ खड़े हुए थे। यद्यपि उनका यह प्रयास सफल नहीं हो सका; किंतु फिर भी वह मानवीय हृदय की इस प्राकृतिक इच्छा का पूर्ण द्योतक था कि हम अपने ही आदमियों द्वारा शासित हों।

सन् ५७ ई० के बलवे के साथ ही साथ ईस्ट-इंडिया-कंपनी की

हुकूमत भी इस देश से ग़ायब हो गयी और यहां का शासन-सूत्र सीधे ब्रिटिश पार्लियामेंट के हाथ में जा पहुंचा। इस अवसर पर महारानी विक्टोरिया के नाम से एक घोषणा प्रकाशित की गयी, जिसने भारतीयों के फटे हुए हृदयों पर कुछ मरहम का काम किया। यद्यपि इसमें किये हुए वादे कभी पूरे नहीं किये गये और आगे चल कर इसे साफ़ लफ़्ज़ों में केवल एक रस्मी पत्र कहा गया, जिसकी कोई क़ानूनी क़ीमत नहीं (भारत सरकार के सुप्रसिद्ध ला मेम्बर स्वयं सर जेम्स स्टीफ़ेन के शब्द हैं, "The proclamation has no legal force whatever"); फिर भी उस समय की भारतीय प्रजा ने महारानी की घोषणा पर पूरा पूरा विश्वास कर लिया। अंग्रेज़ी सरकार ने भी अब अधिक फूँक-फूँक कर पैर रखना आरंभ किया। देशी राज्यों को एक-एक करके हड़पने की नीति अब छोड़ दी गयी, और जितनी भूमि मिल चुकी थी उसी में अब अंग्रेज़ी हुकूमत की जड़ जमाने और उसे सुदृढ़ बनाने की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। इससे अगले क़रीब बीस साल तक देश में चारों ओर पूर्ण शांति स्थापित हो गयी और कहीं युद्ध इत्यादि का नाम भी नहीं सुनाई दिया। धीरे धीरे लोगों में यह भाव फैलने लगा कि 'भारत में अंग्रेज़ी राज्य ईश्वर की एक देन है और सब लोग उसी उदासीन और अलिप्त भाव से अपने अपने काम-काज में लग गये, जो कि हमारे राष्ट्रीय जीवन की एक ख़ासियत है।

किंतु इससे यह न समझना चाहिए कि उस समय के ब्रिटिश शासन में किसी प्रकार के दोष रह ही न गये थे। दोष अनेकों थे और उन्हें उस समय के कतिपय उदार अंग्रेज़ राजनीतिज्ञ समय-समय पर दिखाया भी करते थे। उदाहरणार्थ सन् १८५३ ई० में ऊँचे दर्जे की सरकारी नौकरियों के लिए विलायत में सिविल सर्विस की परीक्षाएँ जारी की गयी थीं, जिनका उद्देश्य केवल हिन्दुस्तानियों के

मार्ग में इन नौकरियों के लिए रुकावटें डालना था। ऐसा समझा गया था कि हिन्दुस्तानियों के लिए इंगलैंड जाकर अंग्रेज़ लड़कों के साथ अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य की परीक्षा में बाज़ी मार लेना प्रायः असंभव होगा। किंतु इस पर भी जब कुछ भारतीय नवयुवकों ने विलायत जा-जा कर इस परीक्षा को पास करना आरंभ किया तब उनके रास्ते में और नयी रुकावटें पेश करने की फ़िक्र की गयी। अब (सन् १८७६ ई० के क़रीब) इस परीक्षा में बैठने के लिए परीक्षार्थियों की उम्र घटा कर केवल १९ वर्ष की कर दी गयी। इधर लार्ड लिटन ने भारत में एक "वर्नाक्युलर प्रेस ऐक्ट" बनाया जिससे यहाँ के देशी पत्रों के पैरों में बेड़ियाँ पड़ गयीं, तथा "आर्म्स ऐक्ट" पास किया जिससे भारतीयों के सब हथियार छिन गये। इन्हीं दिनों दुर्भिक्ष और अकाल का भी दौर-दौरा ज़ोरों पर होता रहा, जिसका कारण वास्तव में अन्न की उतनी कमी न थी जितनी अनाज ख़रीदने के लिए लोगों के पास पैसों की कमी थी। इन दुर्भिक्षों में देश के लाखों प्राणी मौत की भेंट हो गये। उधर अफ़ग़ान-युद्ध भी छेड़ दिया गया, जिसका सारा ख़र्च इस कंगाल देश को ही उठाना पड़ा। इस पर भी देहली में इन्हीं दिनों एक बड़े ख़र्चीले शाही दर्बार का आयोजन किया गया, जिसमें महारानी विक्टोरिया ने भारत-सम्राज्ञी की उपाधि धारण की।

लार्ड लिटन के बाद लार्ड रिपन का शासन-काल आया जो भारतीयों के हक़ में कुछ अच्छा रहा। इस समय "वर्नाक्युलर प्रेस ऐक्ट" हटा लिया गया; अफ़ग़ान युद्ध भी बंद हो गया तथा स्थानीय-स्वराज्य का आरंभ कर के इस देश में एक नये युग का श्री गणेश किया गया। इसके अतिरिक्त सन् १८८३ ई० में एक और नया बिल पेश किया गया जो इलबर्ट बिल के नाम से प्रसिद्ध था और जिसका उद्देश्य यह था कि हिंदुस्तानी मैजिस्ट्रेटों पर से वह रुकावट उठा ली जाय

जिसके कारण वे अंग्रेज़ और अमेरिकन अपराधियों के मुक़दमें नहीं सुन सकते थे। अंग्रेज़ों ने इसका ऐसा घोर विरोध किया कि वायसराय को जहाज़ पर बिठा कर इस देश से बिदा करने तक का षड्यंत्र रच लिया गया। परिणाम स्वरूप यह बिल पास न हो सका; तो भी अंग्रेज़ों के इस विरोध ने हिंदुस्तानियों की आँखें खोल दीं और वे अपनी अधीनता एवं असहायता को अधिक साफ़ तौर पर अनुभव करने लग गये।

किसानों की दशा इस समय बहुत ही ख़राब थी। लगान का तरीक़ा अत्यंत कठोर था। पुलीस और अदालतों में घूसख़ोरी और ज़्यादतियों की भरमार थी। सारी प्रजा दुःखी, पीड़ित और असहाय दीख रही थी; किंतु उसके कष्टों को दूर कराने की कौन कहे, उन्हें प्रकट करने तक का भी कोई मार्ग न था। लोगों को अभी पिछले बलवे की याद भी न भूली थी। सम्भव था कि यदि उनके दुःखों और शिकायतों को प्रकट करने का कोई उचित रास्ता न किया जाता तो उनके अंदर फिर उन्हीं हिंसात्मक भावों और गुप्त षड्यंत्रों का प्रादुर्भाव हो गया होता जिनके परिणाम-स्वरूप सन् १८५७ ई० के ऐतिहासिक बलवे को जन्म मिला था। यह कोरी कल्पना नहीं है। इस प्रकार के कुछ अकाट्य प्रमाण भी मिल चुके थे, जिनसे सिद्ध होता था कि देश के अंदर ही अंदर राजनैतिक अशांति इस समय सुलगने लग गयी है। श्रीयुत ए० ओ० ह्यूम को, जिनका नाम कांग्रेस के इतिहास में सदा के लिए अमर हो गया है, ऐसी रिपोर्टों की सात जिल्दें मिली थीं, जिनमें भिन्न-भिन्न ज़िलों में बग़ावत के भाव फैलने का वर्णन किया गया था। अस्तु, इन्हीं श्रीयुत ह्यूम की दूरदर्शिता ने उन्हें एक ऐसी सार्वजनिक संस्था की आवश्यकता सुझाई, जिसके द्वारा भारतवासी अपनी आवश्यकताओं को सरकार के सामने उपस्थित कर सकें; अपनी शिकायतों को उस तक पहुँचा सकें, और क्रांतिमय भावों

को त्याग कर वैध आन्दोलन का पाठ ग्रहण करें। अतएव उन्होंने इस विषय में बड़ा परिश्रम किया और देश के तमाम बड़े-बड़े नेताओं और पढ़े-लिखे लोगों के साथ पत्र-व्यवहार करके सब का ध्यान इस ओर आकर्षित किया और फिर इन लोगों की सहायता से अंत में सन् १८८५ ई० में उस संस्था को जन्म दे दिया, जो आज ५५ वर्षों से भारत-राष्ट्रीय कांग्रेस (Indian National Congress) के नाम से इस देश का सच्चा प्रतिनिधित्व कर रही है।

कांग्रेस के जन्म से क़रीब पचास वर्ष पहिले भी राजा राममोहन ने कुछ राजनैतिक प्रश्नों की चर्चा यहाँ आरम्भ की थी और भारतीय जनता की कुछ आवश्यकताओं को एक संगठित रूप में लेकर ब्रिटिश सरकार के सामने रक्खा था, किंतु उस समय इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। आगे चल कर जब अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रचार हुआ और भारतीयों को यहाँ की राज्य प्रणाली की जाँच करने का अधिकाधिक अवसर मिलने लगा, तब उन्हें राजनैतिक सुधारों की भी आवश्यकता जान पड़ने लगी। क़रीब १८५० ई० में कलकत्ते में एक प्रांतीय संस्था "ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशन" के नाम से और बम्बई में एक दूसरी संस्था 'बम्बई एसोसियेशन' के नाम से राजनैतिक चर्चा के लिए खोली गयी थी। इसके बाद पूना की सार्वजनिक सभा भी स्थापित हुई, जो अब तक चालू है। किंतु ये तमाम संस्थाएँ स्थानीय थीं। सम्पूर्ण देश की ओर से अभी तक एक भी संस्था नहीं खुली थी। इसी समय पार्लियामेंट के कुछ मेम्बरों ने, जिनमें जान ब्राइट, हेनरी फ़ासेट और चार्ल्स ब्रेडला के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, भारतीय प्रश्नों पर विशेष दिलचस्पी दिखाना शुरू किया। इससे भी यहाँ के शिक्षितों की आँखें खुलने लगीं। इधर समाचार-पत्रों के प्रचार से भी देश की राजनैतिक जागृति को खूब ही प्रोत्साहन मिला। इसके बाद जब देशी पत्रों की स्वतंत्रता का अपहरण करने एवं सिविल सर्विस के परीक्षार्थियों की

उम्र कम करने का क़ानून बना तो लोगों में बड़ा असंतोष फैला और यह असंतोष इलबर्ट बिल का विरोध देख कर और भी अधिक बढ़ गया। इस प्रकार कांग्रेस की स्थापना के समय यहाँ का राजनैतिक वातावरण उसे पुष्ट बनाने के लिए काफ़ी अनुकूल दिखाई देता था और शिक्षित भारतीयों को एक ऐसी संस्था की आवश्यकता भली-भाँति विदित हो चुकी थी। अस्तु, उसका स्वागत सभी ओर से किया गया।

फिर भी यह समझना भूल होगा कि कांग्रेस के जीवन के ये पचपन वर्ष बिल्कुल निरापद और निष्कंटक बीते हैं। वस्तुतः उसके जीवन में अनेकों ही उतार-चढ़ाव आये हैं, अनेकों ही प्रकार की घटनाएँ घटी हैं, कभी उसे सफलता मिली है तो कभी असफलता; कहीं आशा की सुनहरी धूप दिखाई दी तो कहीं निराशा के घनघोर बादल। किंतु सब कुछ होते हुए भी उसका संघटन बराबर ज़ोर पकड़ता ही गया। यहाँ तक कि आज महात्मा गाँधी के नेतृत्व में उसकी शक्ति संसार की सब से बड़ी ताक़त, अंग्रेज़ी हुकूमत को भी न्याय मार्ग पर चलने के लिए विवश कर रही है।

कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन

ह्यूम साहब का मत आरंभ में यह था कि कांग्रेस केवल सामाजिक प्रश्नों को अपने हाथ में ले। राजनैतिक प्रश्नों को कलकत्ते के "इंडियन एसोसियेशन," बम्बई के "प्रेसिडेन्सी एसोसियेशन" तथा मद्रास की "महाजन सभा" जैसी प्रांतीय संस्थाओं के ज़िम्मे छोड़ दे। इ के अतिरिक्त वह कांग्रेस का सभापति किसी प्रांतीय गवर्नर को बनाना चाहते थे, जिससे शासकों और प्रजापक्ष के बीच एक प्रकार का लगाव क़ायम हो जाय। किंतु जिस समय उन्होंने भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड डफ़रिन से यह राय प्रकट की तो डफ़रिन साहब ने उन्हें

समझाया कि देश की भलाई इसी में है कि इस संस्था को एक स्वतंत्र राजनैतिक संस्था के रूप में ही रहने दिया जाय, जिससे कि यह भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में वही हक़ अदा कर सके, जो इंगलैंड में पार्लिमेंट के विरोधी दल (Opposition party) का प्रायः हुआ करता है। ह्यूम साहब को यह राय ठीक जँची, और उन्होंने इसी के अनुसार कार्य आरम्भ कर दिया।

मार्च सन् १८८५ ई० में तय हुआ कि बड़े दिन की छुट्टियों में अर्थात् तारीख़ २५ से ३१ दिसम्बर तक देश के हर एक भाग के प्रतिनिधियों को आमंत्रित कर के पूना में इस सभा का प्रथम अधिवेशन किया जाय और इसी उद्देश्य से गश्ती चिट्ठियाँ भी सारे देश में भेजी गयीं। इन चिट्ठियों में सभा के उद्देश्य ये बतलाये गये :—(१) राष्ट्र की प्रगति के कार्य में जी-जान से लगे हुए लोगों का एक दूसरे से परिचय हो जाना और (२) इस वर्ष में कौन कौन से राजनैतिक कार्य अंगीकार किये जायँ इसकी चर्चा करके निर्णय करना।

किंतु अधिवेशन शुरू होने के पहिले ही पूना में हैज़ा फैल गया। अतएव यह प्रथम अधिवेशन तारीख़ २८ दिसम्बर सन् १८८५ ई० को बम्बई नगर में गोकुल दास तेजपाल संस्कृत कालेज के बड़े हाल में मनाया गया। इस में जिन नेताओं ने मुख्य रूप से भाग लिया, उनके नाम थे :—श्रीयुत ए० ओ० ह्यूम, बाबू सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, सर दीनशा ईदल जी वाछा, श्री एस० सुब्रह्मण्य अय्यर, श्री महादेव गोविंद रानाडे, श्री सीताराम हरी चिपलूणकर, श्री आनन्द चार्लू, सर फ़ीरोज़शा मेहता, श्री गंगाप्रसाद वर्मा (लखनऊ), श्री काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग और श्री दादा भाई नौरोज़ी। सभापति चुने गये थे श्रीयुत उमेशचन्द्र बनर्जी। श्रीमती एनी बीसेन्ट के शब्दों में सचमुच ही "वह एक बड़ा गंभीर और ऐतिहासिक क्षण था, जिसमें मातृभूमि के द्वारा सम्मानित

अनेकों व्यक्तियों में इस प्रथम पुरुष ने प्रथम राष्ट्रीय महासभा के अध्यक्ष का आसन ग्रहण किया।"

इस अधिवेशन में कुल मिला कर नौ प्रस्ताव पास किये गये थे, जिनसे भारतीय मांगों की प्रथम बुनियाद पड़ी। ये प्रस्ताव इस प्रकार थे:—(१) भारतीय शासन की जाँच के लिए एक रायल कमीशन बैठाया जाय; (२) इंडिया कौंसिल तोड़ दी जाय; (३) कौंसिलों में कुछ चुने हुए सदस्य रक्खे जायं और उन्हें प्रश्न पूँछने का अधिकार मिले तथा पंजाब और संयुक्त प्रांत में कौंसिल क़ायम की जाय; (४) आई० सी० एस० की परीक्षा भारत में भी ली जाय और परीक्षार्थियों की उम्र बढ़ा दी जाय, (५) व (६) सेना के खर्च में कमी की जाय; (७) ब्रह्म देश के क़ब्ज़ा करने पर असंतोष; (८) उपर्युक्त सब प्रस्ताव राजनैतिक सभाओं में भेज दिये जायँ; (९) कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन २८ दिसम्बर सन् १८८६ ई० को कलकत्ते में होना निश्चित हुआ।

इसके बाद हर साल इसी प्रकार से बड़े दिन की छुट्टियों में कांग्रेस का सालाना जलसा देश के बड़े बड़े शहरों में किया जाने लगा। इन जलसों में जो प्रस्ताव पास किये जाते थे उनमें से कुछ तो केवल पुराने प्रस्तावों की पुनरावृत्ति मात्र होते थे और कुछ समयानुसार नयी माँगों के संबंध में रहते थे। इनका उद्देश्य प्रायः शासन-सम्बंधी छोटे-मोटे सुधार करवाना, भारतवासियों को ऊंची-ऊंची नौकरी दिलवाना या किसी अनुचित क़ानून को रद्द करवाना इत्यादि हुआ करता था। आजकल की दृष्टि से अवश्य ही इस प्रकार के प्रस्ताव बिल्कुल तुच्छ और हेय जान पड़ेंगे; किंतु याद रहे कि उस समय का भारत आज कल का सा भारत नहीं था। न तो उस समय आजकल की सी राजनैतिक शिक्षा ही लोगों में फैली थी और न कांग्रेस का संघटन ही उतना ज़ोरदार था। वास्तव में वह ज़माना हाकिमों के रोबदाब का था। प्रजा

को अपनी शक्ति का उस समय पता ही नहीं था। ऐसी अवस्था में जो लोग कांग्रेस का काम चला रहे थे, उनकी स्थिति वास्तव में वैसी ही रहा करती थी, जैसी बत्तीस दाँतों के बीच में जीभ की। उपर्युक्त ढंग के प्रस्तावों को भी वे बहुत ही डर-डर कर दबी ज़बान से पास किया करते थे। अस्तु, कांग्रेस का यह रवैया लगभग बीस साल तक जारी रहा। इसके बाद स्वदेशी आन्दोलन का ज़माना आया, जो यहाँ के राजनैतिक इतिहास का पहला ज़बर्दस्त आन्दोलन कहा जा सकता है। इसी समय काँग्रेस से नरम दल और गरम दल नाम के दो टुकड़े हो गये। पश्चात् मिन्टो-मार्ले सुधार का युग शुरू हुआ और फिर क्रमशः होमरूल आन्दोलन, असहयोग पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा और राउंड-टेबुल-कान्फ़रेन्स के दिन भी दिखाई दिये। श्रीयुत पट्टाभिसीतारामैया ने काँग्रेस की सम्पूर्ण जीवनी को अपनी पुस्तक में निम्न-लिखित मुख्य-मुख्य भागों में विभक्त किया है जो देश के राजनैतिक इतिहास की दृष्टि से बहुत युक्तियुक्तजान पड़ता है।

(१) सुधारों का युग— सन् १८८५ ई० से १९०५ ई० तक
(२) स्वशासन का युग सन् १९०६ ई० से १९१६ ई० तक
(३) होमरूल का युग सन् १९१७ ई० से १९२० ई० तक
(४) स्वराज्य का युग सन् १९२१ ई० से १९२८ ई० तक
(५) पूर्ण स्वाधीनता का युग—सन् १९२९ ई० से १९३५ ई० तक
(क) युद्धकाल— सन् १९३१ ई०
(ख) पुनस्संगठन काल— आज तक

अस्तु, आगे हम भी इसी क्रम से कांग्रेस की जीवनी पर विचार करेंगे, और संक्षेप में यह दिखाने का प्रयत्न करेंगे कि देश की राजनैतिक जाग्रति के साथ ही साथ कांग्रेस के कार्यक्रम में किस प्रकार उत्तरोत्तर तीक्ष्णता आती गयी और किस प्रकार देश भर में सरकार की दमन नीति ने अपना राक्षसी रूप दिखाना आरंभ किया और फिर

कैसे हर एक दमन की असफलता पर प्रजा को संतुष्ट करने के लिए सरकार की ओर से थोड़े-थोड़े शासन-सुधारों के नेवाले फेंके गये।

सुधारों का युग (सन् १८८५ ई० से १९०५ ई०) तक

बम्बई के प्रथम अधिवेशन में कांग्रेस के निम्न लिखित उद्देश्य निश्चित किये गये थे:—

(१) भारतवर्ष की तमाम भिन्न-भिन्न जातियों को एक राष्ट्रीयता के सूत्र में बाँधना।

(२) भारतीयों की मानसिक, नैतिक, सामाजिक और राजनैतिक उन्नति की तजवीज़ करना।

(३) जो अवस्थाएँ भारतवर्ष के लिए हानिकर अथवा अन्यायपूर्ण हों, उनमें उचित परिवर्तन कराकर भारत और इंगलैंड के बीच एकता का भाव स्थापित करना।

इन उद्देश्यों को सामने रखकर कांग्रेस ने सन् १९०५ ई० तक अपने वार्षिक अधिवेशनों में अनेकों प्रकार के प्रस्ताव पास किये। इस बीच में कोई नयी बात उसके जीवन में नहीं दिखाई दी। उसका ढंग सरकार के प्रति सदैव अनुनय-विनय का बना रहा। जो प्रस्तावक या समर्थक-गण कांग्रेस के मंच पर आकर बोलते थे, वे अपनी भूमिका में अंग्रेज़ी शासन के लाभों को दिखलाना और अपनी राज-भक्ति को प्रदर्शित करना नहीं भूलते थे, ताकि उन पर किसी प्रकार से राजद्रोह का संदेह न उठ सके। प्रस्ताव की भाषा भी अत्यन्त नम्र और विनयपूर्ण रहा करती थी। फिर भी यहाँ के गोरे हाकिमों को देश की यह बढ़ती हुई जागृति असह्य जान पड़ने लगी और अपने शासन की यह नुक़्ताचीनी उन्हें अच्छी न लगी। निदान वे कांग्रेस को संदेह की दृष्टि से देखने लगे। उनका यह संदेह दिन पर दिन बढ़ता ही गया; यहाँ तक कि वही लार्ड डफ़रिन, जिन्होंने एक दिन ह्यूम साहब को यह राय दी थी

कि कांग्रेस को सामाजिक संस्था के बजाय राजनैतिक संस्था बनाया जाय, बाद में कांग्रेस के खुले हुए शत्रु बन गये और उसे एक राज-द्रोही संस्था बताने लगे। संयुक्त प्रांत के छोटे लाट सर आकलैंड कालिवन कांग्रेस वालों के तीव्र विरोधी थे। परिणाम स्वरूप जिस समय सन् १८८८ ई० में कांग्रेस का चौथा अधिवेशन इलाहाबाद में किया गया तो उसके पंडाल के लिए कहीं ज़मीन तक नहीं मिली। यह दशा धीरे-धीरे ख़राब ही होती गयी। सन् १८९० ई० में बंगाल सरकार ने अपने तमाम अफ़सरों को कांग्रेस की सभा में जाने या उसमें भाग लेने के लिए मनाही कर दी। इसके बाद ताजीरात हिंद में राजद्रोह-संबंधी नयी धाराएँ भी बढ़ा दी गयीं। अंत में सन् १८९९ ई० से लार्ड कर्ज़न का वह दमनकारी शासन शुरू हुआ, जिसने इस देश के राजनैतिक आन्दोलनों में एक नये युग को जन्म दिया।

कांग्रेस ने इन बीस वर्षों के अंदर जो महत्व पूर्ण प्रस्ताव पास किये, वस्तुतः वे निम्न-लिखित विषयों पर थे :—

(१) इंडिया कौंसिल

आरम्भ से ही भारत मंत्री की इस कौंसिल के विरुद्ध कांग्रेस ने अपनी आवाज़ उठाना शुरू किया था; परंतु सरकार की ओर से कोई ध्यान नहीं दिया गया। आगे चल कर कांग्रेस ने इस बात पर भी ज़ोर दिया कि यदि यह कौंसिल तोड़ी न जाय तो कम से कम उसमें कुछ आवश्यक सुधार ही कर दिये जायँ और भारत मंत्री का वेतन ब्रिटिश सरकार अपने ख़ज़ाने से दे।

(२) सरकारी नौकरियाँ

प्रायः सभी विभाग की तमाम ऊँची-ऊँची नौकरियों के विषय में सरकार की ओर से सौतिया पक्षपात का हिसाब रक्खा गया था। यद्यपि सन् १८३३ ई० के क़ानून एवं महारानी विक्टोरिया के घोषणा-पत्र

के अनुसार इस विषय में गोरे और काले का कोई भेद नहीं किया जा सकता था, किंतु बाद की सरकारी नीति ने यह साफ़ तौर पर सिद्ध कर दिया कि वास्तव में ये आश्वासन केवल राजनैतिक मक्कारियाँ ही थीं, जिनके द्वारा उस समय के भारतीयों को राजभक्त बनाने की कोशिश की गयी थी। कांग्रेस ने आरम्भ से ही इस विषय में सरकार को ध्यान दिलाना आरंभ किया। आई० सी० एस०, आई० ई० एस० आई० एम० एस०, पी० डब्लू० डी०, रेलवे, अफ़यून, चुंगी (कस्टम), तार-विभाग इत्यादि प्रायः सभी विभागों की ऊँची ऊँची नौकरियों में हिन्दुस्तानियों को भी जगह देने की माँग कांग्रेस ने बार बार पेश की। किंतु सरकार की ओर से उस पर बहुत कम ध्यान दिया गया और जब कभी ध्यान भी दिया गया तो ऐसी कंजूसी के साथ रियायतें की गयीं कि उनसे जनता को संतोष नहीं हो सकता था। कांग्रेस के ही ज़ोर देने पर बाद में आई० सी० एस० के परीक्षार्थियों की उम्र १९ वर्ष से बढ़ाकर २३ वर्ष कर दी गयी।

सेना

इस देश में इतनी बड़ी अंग्रेज़ी सेना का मुख्य उद्देश्य यह है कि अंग्रेज़ों का पूर्वीय साम्राज्य सुरक्षित रहे, फिर भी उसके ख़र्च का सारा बोझ ग़रीब हिंदुस्तान के सिर पर लादा गया है। इससे किसी को मतलब नहीं कि इस बेहिसाब बोझ से इस कंगाल देश की कमर टूटेगी या रहेगी। कांग्रेस यद्यपि आरम्भ से ही इस के विरुद्ध अपनी आवाज़ हर साल उठाती रही; तथापि यह ख़र्च घटने के बजाय बराबर बढ़ता ही गया। कांग्रेस ने इस बात पर भी ज़ोर दिया कि अगर यह ख़र्च घटाया न जाय तो इसका कुछ हिस्सा इंगलैंड बर्दाश्त करे; क्योंकि यह सेना उसी के स्वार्थ के लिए रक्खी जाती है। इससे सन् १८९४ ई० में वेल्बी कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार थोड़ी बहुत छूट सैनिक ख़र्च में भारत के लिए दे दी गयी थी, परंतु उसी के साथ अंग्रेज़

सैनिकों की तनख़्वाहों में ७,६६,००० पौंड की सालाना वृद्धि कर उससे भी भारी नया बोझ भारत के सिर लाद दिया गया। सेना में ऊँची नौकरियों के लिए भी कांग्रेस बराबर ज़ोर देती रही। उस समय इस विषय में भी कोई सुनवाई नहीं हुई, किंतु सन् १९१७ ई० में सेना की कमीशंड जगहें भारतीयों के लिए खोज दी गयी हैं।

शासन-सुधार

प्रथम अधिवेशन में कांग्रेस की मांग केवल इतनी ही थी कि केंद्रीय और प्रांतीय कौंसिलों के आकार में वृद्धि कर के उनमें निर्वाचित सदस्यों का अनुपात बढ़ा दिया जाय तथा पंजाब और संयुक्त प्रांत में भी कौंसिलें स्थापित कर दी जायं। यही प्रस्ताव १८९० ई० तक दोहराया जाता रहा। सन् १८९० ई० में लार्ड क्रास का "इंडियन कौंसिल्स ऐक्ट" पास हुआ, जिसे कांग्रेस ने राजभक्ति दर्शाते हुए स्वीकार किया; परंतु इस बात पर खेद प्रकाशित किया कि "स्वतः उस ऐक्ट के द्वारा लोगों को कौंसिलों में अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार नहीं दिया गया।" इसके बाद सन् १८९७ ई० तक कौंसिल के सदस्यों के हक़ूक़ बढ़ाये जाने के लिये ज़ोर दिया जाता रहा। फिर सन् १९०४ ई० तक कुछ नहीं हुआ। १९०४ और १९०५ ई० में फिर इन कौंसिलों का आकार और निर्वाचित सदस्यों के अधिकार बढ़ाने के लिए ज़ोर दिया गया। इसके बाद सन् १९०६ ई० में पहिले-पहिल औपनिवेशिक स्वराज्य की चर्चा कांग्रेस में की गयी और उसे अपना ध्येय बतलाया गया।

इसके अतिरिक्त कितने ही अन्य आवश्यक प्रश्नों पर भी कांग्रेस ने अपनी मांगें पेश की थीं। उदाहरणार्थ शासन और न्याय-विभाग का अलग किया जाना, जंगल के क़ानून में सुधार, मद्य-पान निषेध, नमक कर में कमी, देशी धन्धों की उन्नति, मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा

इत्यादि अनेकों विषय ऐसे हैं जिनके संबंध में कांग्रेस की माँग आरंभ से ही चली आ रही है।

स्वशासन का युग [१९०६ ई०—१९१६ ई०]

स्वदेशी आन्दोलन

सन १९०६ ई० से देश के राजनैतिक इतिहास में एक नये युग का संचार दिखाई देने लगा। इस समय से भारत-वासियों की रगों में एक नई गर्मी—नये तेज—का प्रवाह शुरू हुआ जो उससे पहिले कभी नहीं देखा गया था। इस नवीन स्फूर्ति का जन्मदाता वास्तव में लार्ड कर्ज़न का वह छः साल तक (१८९९ से १९०५ तक) का दमनपूर्ण शासन था, जिसने भारतीयों की सहिष्णुता और राजभक्ति की कमर तोड़ दी थी। कलकत्ता कारपोरेशन के अधिकारों का अपहरण करने वाला क़ानून, सरकारी गुप्त समितियों का क़ानून, विश्व विद्यालयों को सरकारी नियंत्रण में लाने का प्रयत्न (जिससे शिक्षा और महँगी हो गयी), भारतीयों के चरित्र को झूठा बताना, बारह सुधारों का बजट, तिब्बत का आक्रमण और अंत में बंग-विच्छेद आदि कर्ज़न साहब के कुछ ऐसे कारनामे थे जिनके कारण न केवल बंगाल में ही बल्कि समस्त भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक आग सी लग गयी। चारों ओर मीटिंग और जुलूसों की धूम मच गयी। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार होने लगा। स्वदेशी वस्तुएं अपनाई जाने लगीं। देश के कितने ही कला-कौशल फिर से जी उठे। राष्ट्रीय स्कूलों और विश्व-विद्यालयों की भी जगह-जगह पर स्थापना होने लगी। "वन्दे मातरम्" का गीत घर घर सुनाई देने लगा और ऐसा जान पड़ने लगा कि यह बूढ़ा भारत अब अपना चोला बदल रहा है और उसके अंदर से एक नवीन भारत जन्म ले रहा है।

दमन-नीति

किन्तु हमारे अंग्रेज़ हाकिम, जो अभी तक भारतीयों के डरपोक और ख़ुशामदाना व्यवहार के आदी बने हुए थे, अब थे नया रंग-ढंग कैसे बर्दाश्त कर सकते थे ? निदान उन्होंने भी अपने दमन का प्रहार आरंभ कर दिया। क़ानूनों के नये-नये अस्त्र गढ़े जाने लगे। प्रेस ऐक्ट, राजद्रोही मीटिंग ऐक्ट, क्रिमिनल ला एमेन्ड-मेंट ऐक्ट आदि सब इसी समय बनाये गये थे। इनके द्वारा देश के तमाम मुख्य मुख्य पत्र, जो इस नई जागृति के प्रचारक थे, बंद कर दिये गये। बन्दे मातरम्, युगांतर, संध्या आदि सब इसी प्रेस ऐक्ट के शिकार हो गये। नेताओं पर भी मुक़दमे चलाये जाने लगे। कितनों ही को देश निकाला हुआ और कितनों ही को लम्बी-लम्बी सज़ाएँ। लोकमान्य तिलक को ६ वर्ष की क़ैद हुई। लाला लाजपत-राय भी मांडले में रक्खे गये। श्री अरविंद घोष पर तीन बार मुक़दमा चला, जिससे अंत में उन्हें ब्रिटिश राज्य ही छोड़ कर पांडि-चेरी में रहना पड़ा। इनके अतिरिक्त बंगाल के और भी नौ प्रमुख नेताओं को देश निकाला दिया गया। इस प्रकार हमारे अंग्रेज़ हाकिम इस नवीन आंदोलन के बढ़ते हुए समुद्र को अपने दमन की झाड़ू से रोक देने के लिए सिर तोड़ परिश्रम करने लगे।

राजनैतिक हत्याएँ

किंतु उनके ये प्रयत्न निष्फल हुए। नहीं, बल्कि उनका उलटा और भंयकर परिणाम भी हुआ। देश की स्वाभाविक बढ़ती हुई प्रगति को जब इस तरह बेहद दबाया गया तब वह कितने ही मार्गों से हिंसा के रूप में फूट निकली। पहिले हिंसा का कहीं नाम न था। किंतु अब नवयुवक हाथ से बाहर होने लगे। वैध आन्दोलन की जगह बम और पिस्तौलों ने लेना शुरू किया। सन् १९०७ ई० में लंदन

की एक सभा में मदनलाल धिंगड़ा के द्वारा सर कर्ज़न वाइली की हत्या हुई, जिसके लिए उसको और उसके एक पारसी मित्र को फांसी की सज़ा मिली। तारीख़ ३० अप्रैल सन् १९०८ ई० को दो बम मुज़फ्फ़रपुर में दो स्त्रियों पर गिरे, जो वास्तव में वहाँ के जिला जज को मारने के लिए बनाये गये थे। इसके लिए एक १८ वर्षीय नवयुवक खुदीराम बोस को फांसी हुई। सुकुमार अवस्था के इस बालक की मृत्यु पर देश में एक कोने से दूसरे कोने तक दुःख और सहानुभूति की लहर छा गयी और खुदीराम की तस्वीर घर-घर में दिखाई देने लगी। इसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द के नवयुवक भाई श्री भूपेन्द्रनाथ दत्त अब अपने "युगान्तर" पत्र के द्वारा हिंसावाद का खुले तौर पर प्रचार करने लगे। इस अपराध में जब उन्हें लम्बी क़ैद की सज़ा मिली, तो उनकी बूढ़ी माता ने अपनी पुत्र की इस देश सेवा पर हर्ष प्रकट किया और बंगाल की ५०० स्त्रियाँ उसे बधाई देने आईं। उस नवयुवक ने भी अदालत में शिर ऊंचा करके यह घोषित किया कि "मेरे बाद इस पत्र को सम्हालने वाले तीस करोड़ भारतवासी मौजूद हैं।" इस प्रकार परिस्थिति दिन पर दिन नाज़ुक होती जा रही थी।

कांग्रेस का रुख और सूरत का झगड़ा

कांग्रेस का राजनैतिक बहाव भी इधर कई वर्षों से धीरे-धीरे दो प्रकार की विचार धाराओं में बंटता जा रहा था:—(१) प्राचीन विचार-धारा, (२) नवीन विचार धारा। प्राचीन विचार-धारा के समर्थक लोग कांग्रेस में अपने उन्हीं पुराने अनुनय-विनय के रवैया को क़ायम रखना चाहते थे, जैसा अब तक होता आया था। किसी उग्र नीति के वे सख्त विरोधी थे। किंतु नवीन विचार धारा वाले नेता नयी क्रांति के उपासक थे और नौ जवान भारत के प्रतिनिधि थे। उन्होंने समझ लिया था कि किसी सरकार से अपनी बातें मनवाने के लिए उसे

मजबूर करने की ज़रूरत है। अतएव वे अनुनय-विनय की नीति को छोड़ कर कांग्रेस की ज़बान में और काम में कुछ गर्मी लाना चाहते थे। वे यहाँ के राजनैतिक कार्यक्रम को भी कुछ अधिक क्रियात्मक बनाना चाहते थे, और इसके लिए विदेशी वहिष्कार, स्वदेशी-प्रचार-राष्ट्रीय-शिक्षा आदि योजनाओं पर ज़ोर दे रहे थे। प्राचीन विचार के नेताओं में सर सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, माननीय गोखले और सर फ़ीरोज़शाह मेहता आदि के नाम मुख्य थे, और नवीन विचार वालों के प्रतिनिधि थे लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, श्री अरविन्द घोष आदि।

सन् १९०६ ई० के कलकत्ते के अधिवेशन में इन दोनों दलों का मतभेद बहुत कुछ स्पष्ट हो चुका था और संभव था कि कांग्रेस में फूट उसी समय पड़ जाती। परंतु उस अधिवेशन के सभापति थे दादा भाई नौरोज़ी। अतएव उनके व्यक्तित्व ने परिस्थिति को उस समय के लिए बचा दिया। दादाभाई ने इसी समय कांग्रेस में 'स्वराज्य' शब्द का पहिली बार व्यवहार किया और कांग्रेस का ध्येय औपनिवेशिक स्वराज्य बतलाया।



(श्री दादाभाई नौरोज़ी)

सन् १९०७ ई० में दशा बहुत ज़्यादा बिगड़ गयी, और जिस फूट का भय बहुत दिनों से किया जा रहा था, वह

आगे आ गयी। सूरत के अधिवेशन में सभापति का पद गरम दल के लोग लोकमान्य तिलक को देना चाहते थे; किंतु नरम दल वालों ने सर रासबिहारी घोष को सभापति बनाया। गरम दल वालों ने लाला लाजपतराय का नाम भी चुना था, परंतु लाला जी ने अपना नाम तुरंत वापस ले लिया। इसके बाद लोकमान्य तिलक कांग्रेसी प्रतिनिधियों के सामने कुछ बोलना चाहते थे, किंतु उन्हें रोका गया। इस पर कोलाहल मचा और किसी ने सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की तरफ़ एक जूता फेंका जो उन्हें छूता हुआ सर फ़ीरोज़शाह मेहता को जा लगा। बस, फिर क्या था। कुर्सी, स्टूल, छड़ी, छाते आपस में चलने लगे। अंत में कांग्रेस स्थगित हो गयी और केवल नरम दल-वालों को बुला कर मद्रास में फिर से उसका अधिवेशन किया गया। इसके बाद सन् १९१५ ई० तक कांग्रेस नरम दल वालों के ही हाथ में बराबर बनी रही।

बंग-भङ्ग और विदेशी-वहिष्कार के संबंध में कांग्रेस ने जो प्रस्ताव सन् १९०५ ई० में पास किये थे, वे अधिक स्पष्ट न थे; किंतु सन् १९०६ ई० का प्रस्ताव काफ़ी साहस पूर्ण था और उसके द्वारा बंग-भंग का विरोध और वहिष्कार का समर्थन खुले शब्दों में किया गया। लेकिन सन् १९०७ ई० से गरम दल के अलग होते ही नरम दल वाली कांग्रेस ने फिर पीछे पैर रखना आरंभ किया और वहिष्कार को छोड़ केवल स्वदेशी का समर्थन करने लगी। स्वराज्य का प्रश्न भी गिरते-गिरते केवल भावी मिंटो-मार्ले सुधारों पर सम्मति प्रकट करने तक सीमित हो गया।

मिंटो-मार्ले सुधार और बंग-भंग रद्द

सन् १९१० में लार्ड हार्डिङ्ग भारत के वाइसराय हुए। बंग-भंग के आन्दोलन ने अंग्रेज़ी हुकूमत को हिला डाला था। अतएव अधि-

कारी गण इसे वापस लेना चाहते थे और इसके लिए किसी उपयुक्त अवसर की खोज में थे। निदान जब १९११ में सम्राट् पंचम जार्ज का यहां राजतिलक मनाया गया और दिल्ली में उसके लिए एक दर्बार हुआ, तो यही अवसर इस काम के लिए भी ठीक समझा गया। अस्तु, सम्राट् को ओर से घोषणा की गयी कि बंगाल प्रांत के टूटे हुए दोनों टुकड़े फिर से जोड़ दिये गये। आसाम एक अलग प्रांत हो गया और बिहार-उड़ीसा का एक नया प्रांत बना दिया गया। राजधानी भी कलकत्ते से हटाकर अब दिल्ली कर दी गयी।

मार्ले-मिंटो सुधार भारतीयों को संतुष्ट करने के लिए सन् १९०९ ई० से ही चालू हो गया था। इसके अनुसार वाइसराय की केंद्रीय धारा-सभा ६० सदस्यों की बनाई गयी थी, जिनमें से केवल २७ सदस्य निर्वाचित थे, २८ सरकारी अफ़सर थे और ५ नामज़द मेम्बर थे। इसके अतिरिक्त वाइसराय और प्रांतीय गवर्नरों की कौंसिलों में भी एक-एक भारतीय को स्थान दे दिया गया। किंतु सब से बुरा ज़हर जो इन सुधारों ने देश में फैलाया, वह था सांप्रदायिक निर्वाचन का तरीक़ा, जिसके बाबत हम आगे ज़िक्र करने जा रहे हैं।

मुसलमानों की सांप्रदायिकता का श्री गणेश

ईस्ट-इंडिया-कंपनी के राज्य-काल से ही देश के हिंदू और मुसलमानों को एक दूसरे से अलग रखकर अपने बढ़ते हुए शासन को सुरक्षित करने की आवश्यकता यहां के हाकिमों को मालूम होने लगी थी; किंतु सन् १८५७ ई० के बलवे ने उनके सामने इस आवश्यकता को और भी अधिक प्रत्यक्ष कर दिया। १४ मई सन् १८५९ ई० को बम्बई के गवर्नर लार्ड एलफ़िन्स्टन अपने एक सरकारी पत्र में लिखते हैं :—("Divide et impera was the old Roman Motto and it should be ours".) अर्थात् "पुराने रोम के शासकों

का सिद्धांत था—"फूट फैलाओ और शासन करो" और यही सिद्धान्त हमारा भी होना चाहिये।"

किन्तु फिर भी उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक यहां के हिंदू और मुसलमानों में किसी प्रकार का भेद-भाव पड़ने नहीं पाया। उधर कांग्रेस के अधिवेशनों की बढ़ती हुई सफलता को देख-देख कर अधिकारियों का भय बढ़ता ही जा रहा था और वे अपने भेद-नीति के कुचक्र को चलाने की आवश्यकता और भी तेज़ी के साथ अनुभव करने लग गये थे। यही नहीं, बल्कि मुसलमानों को कांग्रेस से अलग रखने और उसे कुछ शिक्षित हिंदुओं की एक संस्था सिद्ध करने की भी अधिकारियों ने समय-समय पर कोशिश की। किन्तु बीसवीं सदी के आरंभ में भी हिंदू और मुसलमानों का परस्पर सद्भाव बराबर दिखाई देता था। हां, मुसलमानों ने इस समय देश के राजनैतिक आन्दोलन में अवश्य ही ज़्यादा भाग नहीं लिया और अधिकतर सरकारी पक्ष के ही उपासक बने रहे। सन् १९०५ ई० में लार्ड कर्ज़न ने मुसलमानों को हिन्दू-बंगालियों के सम्पर्क से अलग करने के लिए बंगाल के दो टुकड़े कर दिये और फिर मुसलिम बहुमत पैदा करने के लिए पूर्वीय बंगाल और आसाम को एक कर दिया। इसके बाद लार्ड मिंटो के ज़माने में पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन को जन्म देकर इस भेद नीति की जड़ ख़ूब स्थायी रूप से जमा दी गयी।

हाकिमों की अनुकूलता से लाभ उठाने के लोभ-वश मुसलमानों ने सन् १९०६ ई० में अपनी एक अलग राजनैतिक संस्था क़ायम कर दी थी जो मुस्लिम लीग के नाम से प्रसिद्ध है। इसके बाद ही हाकिमों का इशारा पाकर उन्होंने पृथक् निर्वाचन की माँग आरंभ की और यह माँग झट स्वीकार करके मार्ले-मिंटो सुधार में शामिल कर दी गयी। इस प्रकार हिंदू-मुस्लिम ऐक्य के जिस्म पर एक गहरा घाव पैदा हो गया, जिसमें से मवाद दिन पर दिन ज़्यादा बहता जा रहा है। हिंदू

और मुसलमानों के बीच का यह गड्ढा बढ़ते-बढ़ते ऐसी खाई के रूप में हो गया कि देश की सारी शक्ति भी आज उसे भरने में असमर्थ है।

योरोपीय महायुद्ध

सन् १९११ ई० के बाद देश में राजनैतिक खिँचाव कुछ शांत पड़ने लगा। इतने ही में सन् १९१३ ई० का योरोपीय महायुद्ध भी छिड़ गया। इस महायुद्ध में भारतीय सिपाहियों ने जो काम कर दिखाया उसने सारे संसार की आँख खोल दी। वास्तव में जिस प्रकार कुछ वर्ष पहिले जापान ने रूस पर विजय प्राप्त करके पश्चिम वालों के हृदय में एशियाई श्रेष्ठता का सिक्का जमाया था आज उसी की पुनरावृत्ति हिंदुस्तानी सिपाहियों ने योरोप के समर-क्षेत्र में जाकर की। सारा संसार इनकी प्रशंसा से भर गया। अंग्रेज़ी सरकार ने भी खूब तारीफ़ों के पुल बाँधे और भारतीय सहायता के लिए कृतज्ञता प्रकट करते हुए उसे स्वराज्य देने का वचन दिया। दुनिया में इस समय "स्वभाग्य निर्णय" और छोटे-छोटे राष्ट्रों की स्वाधीनता का सिद्धांत वेग से उद्घोषित किया जा रहा था। निदान भारतीयों को भी आशा होने लगी कि अब गुलामी के दिन बीत गये और स्वराज्य का स्वर्ण-युग शीघ्र ही आने वाला है। अस्तु, देश के भिन्न-भिन्न दलों को मिला कर सुधारों का एक संयुक्त मसविदा बनाने की फ़िक्र होने लगी। श्रीमती एनी बीसेन्ट का आगमन राजनैतिक क्षेत्र में इसी समय हुआ। इन्हीं के अथक परिश्रम से कांग्रेस के दोनों टुकड़े नरम दल और गरम दल सन् १९१६ ई० की लखनऊ कांग्रेस में फिर से एक हो गये। मुस्लिम लीग से भी एक समझौता कर लिया गया और उसकी ऊँची-ऊँची माँगें कांग्रेस ने केवल स्वराज्य-मार्ग की बाधा को हटाने के लिए ही आँख मूँद कर मंज़ूर कर लीं।

१९१६ की लखनऊ कांग्रेस

लखनऊ में जिस समय सब दलों के नेता एक मंच पर एक ही साथ एकत्रित हुए वह शोभा देखते ही बनती थी। लोकमान्य तिलक और खापर्डे, सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और रासबिहारी घोष, महाराज महमूदाबाद, मज़हरुलहक और जिन्ना सब साथ-साथ बैठे थे। इन्हीं के साथ श्रीमती बीसेन्ट, मि० पोलक और महात्मा गाँधी भी सुशोभित थे। भारतीय राजनीति में महात्मा गाँधी का प्रवेश यहीं पहिले-पहल हुआ था।

वास्तव में यह कांग्रेस अपने ढंग की बिल्कुल अद्वितीय थी। सन् १९०६ ई० के बाद कांग्रेस की नरम नीति के कारण भारतीय जनता की श्रद्धा उस पर से उठ चली थी। किंतु आज दस साल के बाद फिर नवजीवन का संचार दिखाई देने लगा। चारों ओर नयी आशा और और नये उत्साह की लहर हिलोरें मार रही थीं। स्वराज्य का शब्द हर एक के मुख पर था। हिंदू मुसलिम ऐक्य और नरम एवं गरम दलों का मेल मुर्दा दिलों में भी ज़िंदादिली पैदा कर रहा था। इस समय जो स्वराज्य संबंधी प्रस्ताव पास किया गया था, उसमें निम्नलिखित बातें थीं:—

(१) सम्राट् को चाहिए कि यह घोषणा कर दें कि ब्रिटिश नीति का लक्ष्य भारत को जल्द स्वराज्य देने का है।

(२) कांग्रेस और मुस्लिम लीग की कमेटियों द्वारा बनाई हुई सुधार-योजना के अनुसार ब्रिटिश सरकार भारत को स्वराज्य की पहिली मात्रा देवे।

(३) साम्राज्य के पुनस्संघटन में भारत को "डिपेन्डेन्सी" की हैसियत से उठा कर अन्य स्वशासित भागों के समान कर दिया जावे।

इसके बाद सन् १९१७ ई० में होमरूल का आन्दोलन देश भर में व्यापक बन गया।

होमरूल युग (१९१७—१९२०)

सन् १९११ ई० के बाद देश में जो राजनैतिक उदासीनता सी आ गयी थी वह १९१६ ई० के लखनऊ कांग्रेस ने दूर कर दी। इस के बाद सन् १९१७ ई० में श्रीमती बिसेन्ट का होमरूल आन्दोलन बड़ी ऊँचाई पर पहुँचा। इसने देश में ऐसी जागृति पैदा कर दी जो सचमुच दर्शनीय थी। लखनऊ कांग्रेस के स्वराज्य-सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुसार श्रीमती बिसेन्ट ने अडयार में जो होमरूल लीग स्थापित की थी उसकी शाखायें देश भर में खुल गयीं। हज़ारों आदमी उसके मेम्बर बन गये और उन्होंने होमरूल के आन्दोलन को ख़ूब फैलाया। स्थान-स्थान पर मीटिंग और व्याख्यान होने लगे। समाचार-पत्रों ने भी इस समय बड़ा ही ज़ोर दिखाया। श्रीमती बीसेन्ट स्वयं मद्रास से 'न्यू-इंडिया' और "कामन-वील" नामक दो पत्रों का सम्पादन कर रही थीं, जो सारे देश में लोकप्रिय बन गये।

अंग्रेज़ी सरकार यह हालत देखकर चौंक उठी। उसके कान तो उसी समय खड़े हो गये थे जब लखनऊ में नरम दल और गरम दल तथा मुसलमानों का एक साथ मिलाप हुआ था। किंतु अब इस ज़बर-दस्त आन्दोलन ने उसे एकदम बेचैन कर दिया। परिणाम स्वरूप फिर दमन का प्रहार शुरू हुआ। श्रीमती बिसेन्ट की पत्रिकाएं ज़ब्त हो गयीं। और स्वयं श्रीमती बिसेन्ट को उनके दो साथियों सहित ऊटकमंड में नज़रबंद कर दिया गया। इसके विरुद्ध देश भर में विरोध-सभाएँ की गयीं, जिससे यह आन्दोलन और भी चमक उठा। जितने दिन ये लोग नज़रबद रहे उतने दिन तक होमरूल का आन्दो-लन विद्युत-गति से दिन-दूना और रात-चौगुना बढ़ता ही रहा। यह

दशा देखकर सरकार ने तीन ही महीने बाद श्रीमती बिसेन्ट और उनके साथियों को स्वतंत्र कर दिया।

देश में इस समय 'होमरूल' की माँग तेज़ी से बढ़ रही थी। किंतु अधिकारी वर्ग इससे चिढ़ रहे थे। इम्पीरियत लेजिस्लेटिव कौंसिल के १९ सदस्यों ने मिलकर राष्ट्रीय माँग का एक मसौदा बिलायत को भेजा था, जिस पर लॉर्ड सिडनहम और भारत के वायसराय लार्ड चेम्सफ़ोर्ड ने बेहद जली कटी सुनायीं। इस प्रकार प्रजापक्ष और सरकार पक्ष के बीच खिँचाव बराबर बढ़ता ही जा रहा था। कांग्रेस अब सत्याग्रह शुरू करने का मंसूबा बाँधने लगी थी। इतने ही में दैवयोग से सारी परिस्थिति बदल गयी।

मांटफ़ोर्ड सुधार की रिपोर्ट

इंगलैंड में भारत मंत्री आस्टिन चेम्बरलेन को अचानक इस्तीफ़ा दे देना पड़ा और उनके स्थान पर मिस्टर मांटेगु भारत-मंत्री नियुक्त हुए। मांटेगु साहब भारत के हितैषियों में समझे जाते थे और वह भारतीय स्थिति को अधिक अच्छी तरह समझते भी थे। निदान पद स्वीकार करने के कुछ ही समय बाद ता० २० अगस्त सन् १९१७ को उन्होंने पार्लियामेंट में नीचे लिखी हुई घोषणा कीः—

"सम्राट् की सरकार की यह नीति है और इससे भारत सरकार भी पूर्णतया सहमत है कि राज्य-प्रबंध के प्रत्येक विभाग में भारतीयों की संख्या बढ़ायी जाय और क्रमशः उत्तरदायी शासन-प्रणाली का विकास हो, जिससे कि ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत भारत में उत्तरदायी शासन स्थापित हो जाय। सम्राट् की सरकार ने यह निश्चय कर लिया है कि यथा-संभव शीघ्र ही इस ओर यथार्थ कार्य किया जायगा।"

मांटेगु साहब ने आगे फिर कहा कि "यह कहना ज़रूरी है कि

इस नीति के अनुसार उन्नति धीरे-धीरे और मंज़िल-दर-मंज़िल ही हो सकती है। ब्रिटिश सरकार और भारत सरकार जिनके ऊपर भारत-वासियों के कल्याण और उत्कर्ष की ज़िम्मेंदारी है, इस उन्नति के क्रम और सीमा का निर्णय करेंगे। वह निर्णय इस बात के आधार पर किया जायगा कि कहाँ तक उन लोगों की सहायता मिल सकती है जिनको सेवा के ये नये अवकाश मिलेंगे, और उनके उत्तरदायित्व के भाव पर कहाँ तक भरोसा किया जा सकता है।"

"हमारे प्रस्तावों पर जनता की ओर से बहस और आलोचना होने का काफ़ी मौक़ा दिया जायगा और ये प्रस्ताव उचित समय पर पार्लिमेंट के सामने पेश किये जायँगे।"

इसके बाद भारतीयों पर अपना विश्वास प्रकट करने के लिए उन्होंने उस जातिगत प्रतिबंध को भी तोड़ दिया जिसके कारण भारतीयों को सेना में ऊँची नौकरी नहीं मिल सकती थी। आगे चलकर उन्होंने यह भी घोषित किया कि वे भारत आवेंगे और वायसराय तथा हर एक दल के राजनैतिक नेताओं से परामर्श करेंगे। इस घोषणा ने स्थिति को बिल्कुल बदल दिया। जहाँ पहिले उत्तेजना की आँधी चल रही थी, वहाँ अब आशा और उत्कंठा की सुनहरी धूप निकल आयी।

अब हर एक दल के लोग अपने-अपने विचार के अनुसार भारत-वर्ष का केस तैयार करने में लग गये। कांग्रेस ने भी अपनी कांग्रेस-लीग योजना पर देशवासियों के हस्ताक्षर कराने शुरू किये। लाखों आदमियों के हस्ताक्षर कराये गये। यह हस्ताक्षर-युक्त पत्र मिस्टर मांटेगु को, जब वे भारत में आये, दे दिया गया। सन् १९१७ के अंतिम महीनों में मांटेगु साहब का इस देश में दौरा हो रहा था। वह सब जगह घूम कर हर एक संस्था के प्रतिनिधियों से मिले और

बाद में एक रिपोर्ट प्रकाशित की जो "मांटेगु-चेम्स फ़ोर्ड रिपोर्ट" के नाम से प्रसिद्ध है।

सन् १९१७ की कांग्रेस

सन् १९१७ के बड़े दिन की छुट्टियों में कांग्रेस का ३२ वां अधिवेशन कलकत्ते में किया गया, जिसमें श्रीमती बीसेन्ट सभापति के आसन पर बैठी। इसमें भी अपूर्व उत्साह दिखाई दिया। प्रतिनिधियों की संख्या ४९६७ थी और लगभग ५००० दर्शक उपस्थित थे। मुख्य कार्य जो इस अधिवेशन में हुआ वह मि० मांटेगु की घोषणा पर विचार था। कांग्रेस ने इस घोषणा पर अपना संतोष प्रकट किया और साथ ही इस बात की आवश्यकता पर भी ज़ोर दिया कि एक निश्चित समय के भीतर यहां स्वशासन स्थापित कर दिया जाय तथा कांग्रेस-लीग योजना के अनुसार सुधारों की पहिली क़िस्त दी जाय।



(श्रीमती एनी बीसेंट)

राष्ट्रीय झंडा

कांग्रेस के इसी अधिवेशन में राष्ट्रीय झंडे का भी प्रश्न उठाया गया। होमरूल लीग की ओर से एक तिरंगा राष्ट्रीय झंडा पहिले ही

से प्रचलित हो चुका था। कांग्रेस ने भी उसी को अपना झंडा स्वीकार कर लिया। बाद में उसमें चरखा और जोड़ दिया गया। १९३१ तक यही झंडा चालू रहा। इसके पश्चात् झंडा कमेटी ने इसके लाल रंग की जगह केसरिया रंग कर दिया।

बम्बई का विशेष अधिवेशन (२९ अगस्त सन १९१८)

मांटफ़ोर्ड रिपोर्ट प्रकाशित होने पर देश के नरम दल के लोग उससे पूर्णतया संतुष्ट हो गए, किन्तु कांग्रेस ने उस पर विचार करने के लिए बम्बई में अपना एक विशेष अधिवेशन किया, जिसके सभापति श्री हसन इमाम हुए। इस समय कांग्रेस में दो पक्ष दिखाई देते थे—एक वह जो इस रिपोर्ट से बिल्कुल असंतुष्ट था और उसे पूर्णतया अस्वीकार करना चाहता था। और दूसरा इसमें सुधार कराना चाहता था। अंत में समझौते के रूप में इस प्रकार फ़ैसला दिया गया कि यद्यपि यह सुधार कुछ हद तक उत्तरदायी शासन की मात्रा है, किन्तु फिर भी यह "नाकाफ़ी, असंतोष जनक और निराशा जनक है।" अतएव नरम दल के लोगों के लिये अब कांग्रेस में स्थान नहीं रह गया और वे उससे अलग हो गये।

रौलट ऐक्ट और पञ्जाब-हत्या कांड

इधर तो शासन-सुधार सबंधी यह चर्चा चल रही थी और उधर सरकार ने एक ऐसा क़ानून बना डाला, जिससे भारतीयों की स्वतंत्रता पर एक नया घाव हो गया। यह क़ानून "रौलट ऐक्ट" या "काला क़ानून" के नाम से प्रसिद्ध है और १८ मार्च सन् १९१९ को पास किया गया था। इसके द्वारा अधिकारियों को अराजकता के संदेह में लोगों की स्वतंत्रता छीनने के लिए नये अधिकार दिये गये थे। इसका परिणाम बड़ा भयंकर हुआ। सारे देश में आग सी लग गयी। असंतोष की सीमा न रही। ज़बर्दस्त आन्दोलन खड़ा होगया।

पंजाब में सर माइकेल ओडवायर की सरकार ने इस आन्दोलन को अत्याचार से दबाया। जलियान वाला बाग़ में बीस हज़ार निर्दोष और निःशस्त्र लोगों की भीड़ पर जनरल डायर ने जी भर कर गोलियां चलवायीं। बाद को मार्शल ला भी जारी कर दिया गया। अमृतसर की गलियों में इज़्ज़तदार आदमियों को पेट के बल रेंगाया गया और उन पर कोड़े लगाये गये। स्त्रियों और बच्चों पर भी घोर अत्याचार किया गया। लाला हरकिशनलाल और डाक्टर किचलू जैसे सज्जनों को कड़ी सज़ाएं दी गए

लाहौर, गुजरानवाला, कसूर, शेखूपुरा आदि में भी अमानुषिक अत्याचार किए गये। कर्नल ओब्रायन ने एक हुक्म जारी किया कि जब कोई हिंदुस्तानी किसी अंग्रेज़ से मिले तो उसे झुक कर सलाम करे, सवारी पर से उतर जाय और अगर छाता लगाये हो तो उसे नीचे कर ले। अनेकों भले आदमियों को जेल में ठूंस दिया गया और छः छः हफ़्ते तक बिना मुक़दमा चलाये उन्हें बंद रखा गया। इतना ही नहीं, उसने बहुत से इज़्ज़तदार लोगों को एकबारगी पकड़ कर मीलों कड़ी धूप में पैदल चलाया और फिर उन्हें उसी दशा में एक मालगाड़ी के डिब्बे में एक के ऊपर एक लाद कर लाहौर भेज दिया। कितने ही लोगों के बदन पर तो पूरे कपड़े भी न थे। इसी अवस्था में वे लोग पूरे ४४ घंटे तक उस डिब्बे में बंद रहे और उन्हें पाखाना, पेशाब तक न करने दिया गया। इसी प्रकार से अनेकों स्थान पर अनेकों प्रकार के अमानुषिक अत्याचार किये गये।

इन दिनों पंजाब में एक सेंसर बैठा दिया गया था, जिसके कारण वहां की पूरी ख़बरें देशवासियों को नहीं मिल सकती थीं। फिर भी जितनी ख़बरें मिलीं उन्हीं के बल पर चारों ओर से इन अत्याचारों के संबंध में जांच कराने के लिए पुकार मच गयी। अंत में सरकार की ओर

से इस जांच के लिए एक कमीशन नियुक्त हुआ जो 'हंटर कमीशन' के नाम से प्रसिद्ध है। इस कमीशन ने पंजाब के उपर्युक्त हत्याकांड के लिए अधिकारियों को बिल्कुल निर्दोष ठहराया। इधर कांग्रेस ने भी अपनी ओर से इस जांच के लिए एक सब कमेटी नियुक्त कर दी थी, जिसने अनेकों विश्वसनीय गवाहियों से यह सिद्ध कर दिया कि जनता पर बड़े राक्षसी अत्याचार किये गये थे। कांग्रेस ने हंटर कमेटी के सामने गवाही देने से इनकार कर दिया। हंटर कमेटी के तीन हिंदुस्तानी सदस्यों ने अपनी राय अलग लिखी थी, किंतु उसे भी सरकार ने नहीं माना। केवल पांच अंग्रेज़ सदस्यो की ही राय मानी गयी।

सरकारी घोषणा

२४ दिसम्बर सन् १९१९ को एक सरकारी घोषणा प्रकाशित हुई, जिसमें कहा गया कि सम्राट् ने पार्लियामेंट द्वारा पास हुए भारत-सुधार ऐक्ट पर अपनी मंज़ूरी दे दी है। साथ ही पंजाब के सब ऐसे अभियुक्तों को आम माफ़ी भी दे दी है, जो वास्तव में हिंसात्मक जुर्मों के अपराधी न थे। दूसरे राजनैतिक क़ैदी भी रिहा कर दिये गये। इसके कारण देश में फिर शांति के चिह्न दिखाई देने लगे। २६ दिसम्बर को अमृतसर में कांग्रेस का ३४ वाँ अधिवेशन आरंभ हुआ, जिसमें लाला हरकिशन लाल, डा० किचलू और मौलाना मुहम्मद अली आदि भी क़ैद से छूट कर शामिल हो सके।

अमृतसर का कांग्रेस अधिवेशन

इस अधिवेशन के सभापति पं० मोतीलाल नेहरू थे, जिन्होंने पंजाब हत्याकांड की कांग्रेसी जांच में विशेष रूप से भाग लिया था। देशबंधु चित्तरंजन दास भी इसी समय राजनैतिक क्षेत्र में विशेष रूप से

आये। इस अधिवेशन में जो मुख्य प्रस्ताव पास हुए, वे निम्नलिखित विषयों पर थेः—

(१) पंजाब के अत्याचारों पर असंतोष।

(२) १९१९ के नये सुधार के ऐक्ट के विषय में कहा गया कि वे नाकाफ़ी, असंतोष कारक और निराशा जनक हैं, किंतु कांग्रेस उसे मंज़ूर करने को तैयार है; और जो कुछ लाभ हो सकता है, उठायेगी।

ऊपर का दूसरा प्रस्ताव महात्मा गांधी के अनुरोध पर पास किया गया था, जो रौलेट ऐक्ट के समय से ही भारतीय आन्दोलन का नेतृत्व करने लग गये थे। इसी अवसर पर लो० तिलक ने नये सुधारों के संबंध में कहा था कि भारतीय "केवल रिस्पान्सिव कोआपरेशन" (प्रतियोगी सहकारिता) करेंगे। आगे चल कर उक्त दोनों नेताओं के ये दोनों विचार राजनैतिक क्षेत्र में ऐतिहासिक महत्व के हो गये।

असहयोग का जन्म

सन् १९१९ की कांग्रेस के बाद लोगों में यह आशा उत्पन्न हो गयी थी कि भारत के साथ अब कुछ न्याय किया जायगा और स्थिति में अवश्य सुधार होगा। किंतु शीघ्र ही यह पता चला कि इंगलैंड के प्रधानमंत्री मिस्टर लायडजार्ज के दिये हुए वचन हवा में ही रह जायँगे। खिलाफ़त और मुसलमानों के पवित्र स्थानों के प्रश्न पर भी यह प्रकट हो गया कि अंग्रेज़ी सरकार मुसलमानों का पक्ष न लेगी। साथ ही पंजाब के अत्याचारों के संबंध में भी सरकार की ओर से कोई इन्साफ़ नहीं किया गया। न तो अपराधी अफ़सरों को निकाला गया, न उन्हें सज़ाएँ दी गयीं और न उनकी पेन्शिनें ही ज़ब्त हुईं। प्रत्युत कुछ अफ़सरों को इनाम तक दिया गया। इन बातों से शीघ्र ही असंतोष फैलने लगा। निदान ९ अप्रैल सन् १९२० को महात्मा गाँधी ने असहयोग का कार्य-क्रम पहिले-पहल जनता के सामने रक्खा।

सबसे पहिले मुसलमानों ने इस कार्य-क्रम को अपने ख़िलाफ़त के प्रश्न को सुलझाने के लिए अपनाया। मौलाना शौकतअली और मौलाना मुहम्मद अली के नेतृत्व में ख़िलाफ़त सभा की स्थापना हुई और ख़िलाफ़त कमेटी से उन्होंने इस असहयोग या "तर्के मवालात" के कार्य क्रम को स्वीकार कराया और तत्पश्चात् वाइसराय को एक चेतावनी या "अल्टीमेटम" दिया गया कि वे ख़िलाफ़त आन्दोलन में भाग लें और विश्वास दिलावें कि



(लोकमान्य श्रीबालगंगाधर तिलक)

यदि ब्रिटिश मंत्री मुसलमानों की इच्छानुसार टर्की-संबंधी शर्तों में परिवर्तन न करेंगे तो वे अपने पद से इस्तीफ़ा दे देंगे; अन्यथा ता० १ अगस्त १९२० को सरकार से देश के मुसलमान अपना संबंध तोड़ देंगे। इसी चेतावनी के अनुसार मीयाद गुज़र जाने पर ख़िलाफ़त सभा की ओर से असहयोग आरम्भ कर दिया गया।

३१ जुलाई सन् १९२० को आधी रात के समय तिलक जी ने अपनी जीवन लीला समाप्त की और देश के नेतृत्व का पूरा भार म०

गाँधी के कंधों पर पड़ा।

कलकत्ते का विशेष अधिवेशन

इसी समय कांग्रेस का ध्यान भी असहयोग-प्रोग्राम की तरफ़ आकर्षित हुआ और उस पर विचार करने के लिए तारीख़ ४ सितम्बर १९२० को कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन कलकत्ते में किया गया। पंजाब केसरी लाला लाजपत राय उसके सभापति चुने गये। पहले प्रस्ताव में लोकमान्य बालगंगाधर तिलक की मृत्यु पर गहरे दुःख के साथ शोक प्रकट किया गया और इसके बाद बहुत वाद-विवाद के पश्चात् असहयोग का निम्नलिखित प्रस्ताव पास कर दिया गयाः—

"चूँकि भारत की सरकार और विलायत की सरकार ने ख़िलाफ़त के प्रश्न को सुलझाने में अपना कर्तव्य पूरा नहीं किया और वज़ीर आज़म ने मुसलमानों से वादा ख़िलाफ़ी की है और अब प्रत्येक ग़ैर-मुस्लिम (हिंदू इत्यादि) का कर्तव्य है कि अपने मुसलमान भाई की मदद करे।



(श्री लाला लाजपत राय)

"चूँकि भारतीय और विलायती सरकार ने पंजाब में बेगुनाहों की रक्षा करने में कोताही की और अपराधियों को सज़ा नहीं दी"।

"इन कारणों से भारत वर्ष में संतोष तब तक नहीं हो सकता जब तक

इन दोनों शिकायतों को दूर न कर दिया जाय, और न ऐसे दुःखों के दुहराये जाने की संभावना मिट सकती है जब तक हिंन्दुस्तान में स्वराज्य न प्राप्त हो। ऐसे समय में भारतवर्ष को सिवाय असहयोग के जो प्रतिदिन बढ़ता जावे और कोई मार्ग नहीं है।"

"आरंभ में निम्न लिखित बातें करनी चाहिएँ:—

(१) सरकारी ओहदे, मेम्बरी और ख़िताब छोड़ना।

(२) सरकारी दरबार व जलसे में न जाना।

(३) क्रमशः सरकारी या सरकारी सहायता प्राप्त शिक्षालयों से लड़कों को हटा लेना और उनके लिए राष्ट्रीय स्कूल और कालेज स्थापित करना।

(४) वकालत छोड़ना और अदालतों का बायकाट करके पंचायतों द्वारा झगड़े तय करना।

(५) मेसोपोटामियां में फ़ौज़ी क्लार्क या मज़दूर बन कर न जाना।

(६) कौंसिल की मेम्बरी के उम्मेदवार न होना और न किसी को वोट देना।

(७) विदेशी माल का वहिष्कार।

(८) स्वदेशी माल का बड़े परिमाण पर प्रचार और घरों में सूत कातने तथा जुलाहों को कपड़े बुनने में उत्तेजना देना।

स्वराज्य युग (१६२१-१६२८)

देश व्यापी असहयोग आन्दोलन

इसके बाद असहयोग के आन्दोलन ने बड़ा ज़ोर पकड़ा। आरंभ में पं० मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु सी० आर० दास की श्रद्धा इस आन्दोलन पर अधिक न थी। परंतु इसकी देश व्यापी सफलता ने उन्हें शीघ्र ही क़ायल कर दिया और उन्होंने अपनी वकालत

छोड़ दी। और भी सैकड़ों वकीलों ने हर जगह वकालतें छोड़ीं। स्कूल और कालेजों के वहिष्कार में विद्यार्थियों ने भी बड़ा ज़ोर दिखाया। कितने ही स्कूल और कालेज लड़कों से ख़ाली हो गये। विलायती कपड़ों की जगह-जगह होलियाँ जलायी गयीं। कौंसिल की मेम्बरी और ख़िताब सब त्याग दिये गये। राष्ट्रीय कोष के लिए तिलक स्वराज्य फ़ंड खोलकर देश से एक करोड़ रुपये की मांग पेश की गयी, जिसके उत्तर में लाखों रुपये तत्काल इकट्ठे हो गये। विलायती कपड़े और शराब की दूकानों पर धरना दिया जाने लगा, जिससे हज़ारों मनुष्य जेल में पहुँच गये।

अखिल-भारतीय-कांग्रेस-कमेटी ने प्रांतीय कमेटियों को सविनय आज्ञा भंग का अधिकार दे दिया था। और गुजरात की कमेटी ने बारडोली और आनंद के ताल्लुक़ों को इसके लिए तैयार भी कर लिया था। २३ नवम्बर सन् १९१९ को सत्याग्रह आरंभ होने वाला था, किंतु इतने ही में १७ तारीख़ को जिस दिन युवराज भारत में आये, बम्बई में दंगा हो गया। निदान कुछ रोज़ के लिये सत्याग्रह का आन्दोलन स्थगित कर दिया गया।

यू० पी० और बंगाल सरकार ने कांग्रेस और खिलाफ़त के वालंटियरों को ग़ैर क़ानूनी क़रार दिया, जिससे सहस्रों आदमी जेल पहुँच गये। इनमें पं० मोतीलाल नेहरू, पं० जवाहरलाल नेहरू, श्रीयुत सी० आर० दास तथा यू० पी० प्रांतीय कमेटी के ५५ सदस्य भी शामिल थे। सरकार ने १४४ धारा ज़ाब्ता फ़ौजदारी का भी अत्यधिक उपयोग किया। कहा जाता है कि इस धारा का प्रयोग सरकार को सर तेजबहादुर सप्रू ने सुझाया था, जो उस समय भारतीय सरकार के ला मेम्बर थे।

सन् १९२१ में अहमदाबाद में कांग्रेस का ३६ वां अधिवेशन

हुआ। इसके सभापति देशबंधुदास जेल में थे। अतएव उनका स्थान हकीम अजमल खां ने लिया। इस अधिवेशन में महात्मा गांधी आन्दोलन का कार्य संचालन करने के लिए डिक्टेटर बना दिये गये और सत्याग्रह के लिये वालंटियरों की सेना तैयार करने की तजवीज़ हुई।



(श्री सी० आर० दास)

चौरी चौरा कांड

"सन् १९२२ के आरंभ में बारडोली ताल्लुके में पूर्ण रूप से सविनय आज्ञा भंग करने की तैयारी की जाने लगी और वाइसराय को चेतावनी का पत्र भी गांधी जी ने भेज दिया। किंतु ५ फ़रवरी को गोरखपुर के पास चौरीचौरा में एक विघ्नकारी घटना हो गयी।

जिस समय कांग्रेस का जुलूस वहां निकल रहा था, भीड़ के कुछ लोगों ने पुलीस वालों पर आक्रमण कर दिया और उन्हें खदेड़ कर थाने के भीतर भगा दिया। इसके पश्चात् थाने में आग लगा दी गयी, जिससे २१ सिपाही और एक थानेदार आग में जल मरे। इसी समय मद्रास में भी उपद्रव हुआ, जिसमें ५३ आदमी मर गये और ४०० घायल हुए। इस अवसर पर युवराज मद्रास में ही थे। इन दुर्घटनाओं के कारण बारडोली का सत्याग्रह स्थगित होगया, और कुछ समय के लिये केवल रचनात्मक कार्य-क्रम पर ध्यान दिया जाने लगा। इसके अनुसार अब वर्किंग कमेटी ने निम्न लिखित बातों पर ज़ोर दिया:—

(१) कांग्रेस में एक करोड़ सदस्य बना लिये जायं।

(२) चरखा चलाने और सूत कातने का भरसक प्रचार किया जाय।

(३) राष्ट्रीय पाठशालाओं का संगठन।

(४) अछूतोद्धार।

(५) ग्राम पंचायतों की स्थापना।

२४ और २५ फ़रवरी को दिल्ली की बैठक में आल इंडिया कांग्रेस कमेटी ने भी वर्किंग कमेटी के उपर्युक्त कार्य-क्रम को स्वीकार किया। साथ ही उसने व्यक्तिगत रूप से सविनय आज्ञा भंग करने और शराब की दूकानों पर धरना देने की भी इजाजत दे दी।

१० मार्च सन् १९२२ को सरकार ने महात्मा गांधी पर ताज़ीरात हिंद की दफ़ा १२४ ए० के अनुसार राजद्रोह का मुक़दमा चला कर उन्हें छः साल के लिए सादी क़ैद की सज़ा दे दी।

महात्मा गांधी के क़ैद हो जाने से असहयोग-आन्दोलन को बड़ा धक्का पहुँचा। राजनैतिक नेताओं में अब मत भेद होने लगा, जिससे असहयोग के प्रोग्राम को बदलने का विचार हुआ। कुछ लोगों की राय कौंसिलों में प्रवेश करने के पक्ष में हो गयी। अस्तु, आल इंडिया

कांग्रेस-कमेटी की ओर से एक कमेटी नियुक्त की गयी, जिसे इस बात की जांच करने का काम सौंपा गया कि देश सविनय आज्ञा भंग के लिये कहाँ तक तैयार है। इस कमेटी ने छः सप्ताह तक दौरा किया और ४५९ गवाहों के बयान लिये। अंत में कमेटी के मेम्बरों ने दो भिन्न-भिन्न प्रकार की रिपोर्टें प्रकाशित कीं :—(१) हकीम अजमल खां, पं० मोतीलाल नेहरू तथा वी० जी० पटेल ने कौंसिल प्रवेश की राय दी, किंतु (२) डाक्टर अंसारी, सी० राजगोपालाचार्य और एस० कस्तूरी रङ्गा आयंगर ने कौंसिल प्रवेश के विरुद्ध राय लिखी। इस प्रकार देश में दो दल पैदा हो गये :—(१) कौंसिल-पक्ष (Pro-changers) और कौंसिल बहिष्कार पक्ष (No changers)।

दिसम्बर १९२२ में गया कांग्रेस में कौंसिल के प्रश्न पर पूर्ण रूप से विचार किया गया। देशबंधु सी० आर० दास इस समय सभापति थे। कौंसिल पक्ष वाले दल की ओर से कांग्रेस के कार्यक्रम में आवश्यक परिवर्तन कराने की पूरी कोशिश की गयी, किंतु उन्हें सफलता नहीं मिली। कांग्रेस का पहिला ही प्रोग्राम ज्यों का त्यों क़ायम रखा गया।

स्वराज्य-पार्टी

जिस समय देशबंधु दास ने गया-कांग्रेस का सभापतित्व ग्रहण किया था उस समय उनके जेब में दो महत्वपूर्ण काग़ज़ थे। एक था सभापति का भाषण और दूसरा था सभापति-पद से त्याग पत्र, जिसके साथ स्वराज्य पार्टी के निमय-उपनियम भी थे। यह बात पहिले से जानी हुई थी कि दास और नेहरू जैसे व्यक्तित्व के मनुष्य बहुमत के आगे अपनी राय का बलिदान करने वाले नहीं हैं। निदान कांग्रेस में जब वह अपने पक्ष का कार्यक्रम पास न करा सके तो एक अलग पार्टी स्थापित की गयी जो "स्वराज्य पार्टी" के नाम से प्रसिद्ध हुई। साथ ही उसका कार्यक्रम भी तैयार कर लिया गया। देशबंधु दास के ज़िम्में अगले चुनाव में बंगाल की प्रांतीय कौंसिल पर क़ब्ज़ा करने का काम सुपुर्द

हुआ और नेहरू जी को देहली और शिमला पर धावा करने का काम दिया गया।

इस पार्टी का ज़ोर ख़ूब तेज़ी के साथ बढ़ा और मई १९२३ में आल-इंडिया-कांग्रेस-कमेटी की बैठक बम्बई में हुई। उसमें यह दल जीत गया। कमेटी ने बहुमत से यह पास किया कि वोटरों में कौंसिल बायकाट का प्रचार न किया जावे। इस प्रकार स्वराज्य-पार्टी उत्तरोत्तर मज़बूत होती गयी और कांग्रेस को अब विशेष अधिवेशन करने की आवश्यता पड़ी।

दिल्ली का विशेष अधिवेशन (१९२३)

यह अधिवेशन कौंसिल प्रवेश के प्रश्न को सुलझाने के लिए मौ० अबुल कलाम आज़ाद के सभापतित्व में किया गया था। इसने कौंसिल प्रवेश के बायकाट को उठा लिया और ऐसा प्रस्ताव पास किया कि कांग्रेस के सदस्य अपनी व्यक्तिगत हैसियत से कौंसिल के चुनाव के लिए खड़े हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त हिंदू-मुसलिम एकता स्थापित करने के लिए भी एक कमेटी बनायी गयी, जिसके सुपुर्द राष्ट्रीय समझौता तैयार करने का काम किया गया।

खिलाफ़त का अंत और हिंदू मुसलिम दंगे

खिलाफ़त के आन्दोलन में मुसलमानों को कांग्रेस और महात्मागाँधी की सहायता की बेहद ज़रूरत थी; इसलिए मुसलमानों ने अपना मेल-जोल हिंदुओं के साथ बनाये रखा। मौलाना शौकतअली और मुहम्मद अली महात्मा गाँधी के अनन्य भक्त बने हुए थे। किंतु सन् १९२२ में यकायक खिलाफ़त के सवाल का अंत हो गया। अंगोरा की शासनडोर वहीं के प्रतिनिधि दल के हाथ में आ गयी और तुरकी के सुल्तान को एक अंग्रेज़ी जहाज़ में छिप कर प्राण बचाने के लिए माल्टा भागना पड़ा। उसके विदा होते ही वह सुल्तान और खलीफ़ा दोनों पदों से

च्युत कर दिया गया, और उसका भतीजा अब्दुल मजीद एफ़ेन्डी नया ख़लीफ़ा चुना गया। सुल्तान का अस्तित्व समाप्त हो गया और तुर्की में प्रजातंत्र स्थापित हो गया। इस प्रकार खिलाफ़त अब सिर्फ़ मज़हबी बातों तक ही सीमित रह गयी; निदान भारतीय मुसलमानों को भी अब हिंदुओं या कांग्रेस वालों की सहायता की कोई आवश्यकता न रह गयी। अतएव उनकी देशभक्ति और स्वराज्य के प्रति प्रेम का भी अब खात्मा हो गया और उन्होंने अब दूसरा रुख़ अख़्तियार करना शुरू किया।

सन् १९२२ में मुल्तान में हिंदू-मुसलिम दंगे की पहिली खबर आई। इसके बाद सन् १९२३ के मुहर्रम में बंगाल और पंजाब में जगह-जगह पर भयंकर दंगे किये गये। इसके पश्चात् फिर दंगों का देश भर में तांता सा बँध गया जिससे हिंदू मुसलमानों में पूर्ण ऐक्य आज तक स्थापित न हो सका; बल्कि उनके बीच का गड्ढा बराबर बढ़ता ही जा रहा है। जो मौलाना शौकतअली किसी दिन महात्मा गांधी के बग़लगीर बनने में अपना गौरव समझते थे; आगे चल कर उन्हें खुले मुंह गालियां देने लग गये। मिस्टर जिन्ना जो किसी दिन पक्के राष्ट्रवादी और कांग्रेसमैन बनने का दावा करते थे, आज हिंदुस्तान के अंदर पाकिस्तान का स्वप्न देख रहे हैं; और देश में हिंदू-मुस्लिम भेद की एक स्थायी दीवार बनाने की तरकीब रच रहे हैं।

बंगाल पैक्ट

देशबंधु दास ने बंगाल में हिंदू-मुस्लिम एकता स्थापित करने के लिए एक 'पैक्ट' (समझौता) तैयार किया जिसके अनुसार मुसलमानो को मुख्यतः नीचे लिखे हक़ूक़ दिये गये।

(१) ५५ फ़ी सैदी सरकारी नौकरियां मुसलमानों को दी जावें।

(२) स्थानीय संस्थाओं में ६० फ़ी सदी सदस्यों की संख्या मुसलमानों को निश्चित हो।

परंतु कोकोनडा कांग्रेस में यह पैक्ट स्वीकृत न हो सका। सन् १९२३ में हिंदू मुसलिम वैमनस्य अत्यधिक बढ़ गया। दोनों के आक्रमण एक दूसरे पर होने लगे। शुद्धि, संघटन, तबलीग़ तंजीम आदि के काम बड़ी तत्परता के साथ चलाये गये और सारा वायुमंडल ज़हरीली भावनाओं से भर उठा।

इस स्थान पर यह कहना अनुचित न होगा कि नरम दल वाले सन् १९१८ से ही कांग्रेस से अलग हो गये थे और उन्होंने अपनी एक अलग संस्था 'लिबरल फ़ेडरेशन' स्थापित कर ली थी, जिसका वर्णन अलग दिया गया है। 'असहयोग आंदोलन' के समय यह दल नाम मात्र के लिए जीवित रहा।

महात्मा गांधी का छुटकारा और सन् १९२४ में राजनैतिक परिस्थिति

५ फ़रवरी सन् १९२४ को महात्मा गांधी बीमारी के कारण जेल से छोड़ दिये गये। २७ जून को आलइंडिया-कांग्रेस-कमेटी की बैठक अहमदाबाद में हुई। उसमें महात्मा जी ने नीचे लिखे मतलब के प्रस्ताव पेश किये थे:—

(१) कांग्रेस के हर एक सदस्य को प्रतिमास २००० गज़ सूत कातने होंगे।

(२) प्रांतीय कमेटियाँ अपने अधिकारियों की जाँच करें।

(३) विदेशी कपड़े, अदालतों, स्कूल कालेजों, उपाधियों और कौंसिलों के पाँच प्रकार के वहिष्कार पर ज़ोर दिया गया और यह हिदायत की गयी कि उन लोगों को कांग्रेस की किसी मातहत संस्था में न चुना जाय जो इन सिद्धांतों पर अमल न करते हों।

(४) बंगाल प्रांतीय कमेटी ने जो प्रस्ताव अर्नेस्ट डे की हत्या करने

वाले श्रीयुत गोपीनाथ साहा के सम्बन्ध में पास किया था उस नीति की अस्वीकृति।

कुछ स्वराजिस्ट इन प्रस्तावों पर रुष्ट होकर बाहर निकल गये थे; अतः उनकी अनुपस्थिति में प्रस्ताव बहुमत से पास हो गया। किंतु महात्मा जी ने यह ठीक नहीं समझा; अतएव उन्होंने स्वराजियों से तुरन्त समझौता कर लिया और कौंसिल प्रोग्राम की पूर्ति में उन्हें पूरी स्वतंत्रता दे दी।

महात्मा गांधी का २१ दिन का उपवास और एकता कान्फ्रेन्स

हिन्दू-मुस्लिम परिस्थिति ख़राब ही होती गयी। जुलाई सन् १९२४ में दिल्ली और नागपुर में दंगे हुए। अगस्त में लखनऊ, मुरादाबाद, लाहौर, भागलपुर, नागपुर और हैदराबाद (दक्खिन) में भी हुए। कोहाट में सब से भयंकर दंगा हुआ; उसे तो क़त्लेआम ही कहना ठीक होगा। इसमें सैकड़ों हिन्दुओं के घर जला दिये गये, अगणित मनुष्यों की हत्याएँ की गयीं और स्त्री और बच्चों पर अनेकों प्रकार के ऐसे-ऐसे अत्याचार हुए कि सुनकर रोमांच हो आता है। परिणाम स्वरूप क़रीब ४००० हिंदू एक स्पेशल ट्रेन में लदकर पंजाब में भाग आये और महीनों तक यहीं सार्वजनिक दान पर अपना जीवन बिताते रहे।)

महात्मा गाँधी और मौ० शौकतअली की एक कमेटी नियुक्त हुई, जिसे इस दंगे की जाँच का काम दिया गया। दोनों ने जाँच कर के अपनी रिपोर्टें पेश कीं, परंतु मौलाना शौकतअली ने अपनी रिपोर्ट में, जैसा कि उनसे उम्मीद की जा सकती थी, मुसलमानों को इसकी ज़िम्मेदारी से बरी करने की पूरी-पूरी कोशिश की थी, अतएव महात्मा गाँधी जैसे उदार चेता से भी उनका मतभेद हो गया।

इन दंगों की रोमांचकारी घटनाओं से महात्मा जी के हृदय को मार्मिक चोट पहुँची और उन्होंने इसका ज़िम्मेदार अपने ही को समझा। निदान उन्होंने प्रायश्चित्त के तौर पर १२१ दिन का उपवास करने का निश्चय कर लिया। यह उपवास ता० १८ सितम्बर १९२४ से शुरू हुआ था। इसकी घोषणा ज्यों ही प्रकाशित हुई, सारे देश में कुहराम मच गया।

२६ सितम्बर को 'एकता कान्फ़रेन्स' की गयी, जिसकी बैठक २ अक्टूबर तक होती रही। इस कान्फ़रेन्स में हिन्दू, मुसलमान, पारसी, सिख, ईसाई सब शामिल हुए। कलकत्ते के बड़े पादरी भी इसमें शामिल हुए। इस कान्फ़रेन्स ने बहुत सोच-विचार के बाद कई प्रस्ताव पास किये, जिनका आशय इस प्रकार है:—

(१) कोई मनुष्य धर्म-सम्बन्धी पीड़ा होने पर क़ानून को अपने हाथ में न ले, अर्थात् मारपीट न करे।

(२) धर्म संबन्धी तमाम झगड़े पंचायत से तय किये जावें। अगर वहाँ तय न हों, तो अदालत से तय करावें।

(३) सब धर्म पवित्र हैं और सब को चाहिए कि अपनी धार्मिक रीतियाँ दूसरे के धार्मिक विचारों का ख़्याल कर के बरतें।

(४) गो-हत्या हिंदू लोग ज़बर्दस्ती बंद नहीं कर सकते। मुसलमानों को चाहिए कि इस मामले में जहाँ तक बने, हिंदुओं के दिल न दुखावें।

(५) मस्जिद के सामने बाजा बजाने, अज़ान देने आदि बातों में दूसरों के विचार तथा सुविधा का ख़याल रखा जाय।

(६) १५ मनुष्यों की एक केन्द्रीय राष्ट्रीय पंचायत स्थापित की गयी जिसके अध्यक्ष म० गांधी जी चुने गये, और सदस्य सब जाति के लोग थे।

सर्व दल सम्मेलन

बंगाल में सरकारी दमन ज़ोर पकड़ता जा रहा था। यह दमन-नीति स्वराज्य पार्टी और तारकेश्वर में सत्याग्रह करने वाले कार्य-कर्त्ताओं के विरुद्ध आरंभ की गयी थी। २५ अक्टूबर सन् १९२४ को लार्ड रीडिंग ने क्रिमिनल ला अमेन्डमेंट आर्डिनेन्स जारी किया, जिसके द्वारा राजनैतिक अपराधियों की सरसरी गिरफ़ारी व ख़ास कमिश्नरों के सामने तहक़ीक़ात की जा सकती थी। इस आर्डिनेन्स के अनुसार श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस तथा अन्य कई स्वराजिस्ट गिरफ़ार कर लिये गये थे।

महात्मा गाँधी ने इस आर्डिनेन्स की कड़ी आलोचना की और नवम्बर ११२४ में एक बयान गाँधी-दास-नेहरू के हस्ताक्षरों सहित प्रकाशित किया गया, जिसमें नीचे लिखी बातों की ज़रूरत बतलायी गयी:—

(१) अब समय आ गया है, जब देश के तमाम राजनैतिक दल एक हो जावें।

(२) बेलगाँव में होने वाली आगामी कांग्रेस से सिफ़ारिश की गयी कि विदेशी कपड़ों के बहिष्कार को छोड़ कर बाक़ी सब प्रकार के बहिष्कार बंद कर दिये जायँ।

(३) स्वराज्य पार्टी कौंसिलों में कांग्रेस के नाम पर काम करे।

(४) कांग्रेस और सब दल रचनात्मक कार्य क्रम मानें।

(५) कांग्रेस का चंदा ।) साल के बजाय २००० गज़ हाथ का कता सूत रखा जावे, जो ख़रीद कर भी दिया जा सकता है।

सब राजनैतिक दलों के नेताओं को निमंत्रण भी दिया गया कि वे बम्बई में होने वाले सर्वदल सम्मेलन में शामिल हों। यह सम्मेलन ता० २१ और २२ नवम्बर को हुआ। इसमें योरोपियन एसोसियेशन को छोड़ कर बाक़ी सभी राजनैतिक दलों के नेतागण उपस्थित थे। इस सम्मेलन ने एक स्वर से सरकारी आर्डिनेन्स की नीति को निन्दित

बताया तथा इस काम के लिए एक कमेटी नियत की कि वह ऐसे उपाय तजवीज़ करे, जिनसे कांग्रेस में सब दल शामिल किये जा सकें; साथ ही एक स्वराज्य का मसविदा तैयार करे व साम्प्रदायिक प्रश्नों को सुलझाने का उपाय बताये। कमेटी को अपनी रिपोर्ट देने के लिए ३१ मार्च सन् १९२५ तक का समय दिया गया।

इस कमेटी की बैठक सन् १९२५ के जनवरी और फ़रवरी महीने में हुई; उसमें एक उपसमिति हिंदू-मुसलिम झगड़ों के निबटारे के लिए बनायी गयी। परंतु इस उपसमिति ने कोई भी काम नहीं किया और अंत में टूट गयी। दूसरी उपसमिति शासन के मसविदे के लिए बनायी गयी थी। उसने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की।

बेलगांव में ३९वीं कांग्रेस (१९२४)

यह अधिवेशन महात्मा गांधी के सभापतित्व में हुआ था। इसके पहले देश के तमाम राजनैतिक दलों को कांग्रेस में शामिल करने की बहुत चेष्टा की गयी, किंतु कुछ फल न निकला।

इस अधिवेशन में असहयोग आन्दोलन बिल्कुल बंद कर दिया गया। तथा जो समझौता महात्मा गांधी ने स्वराज्य पार्टी के साथ किया था उसका समर्थन किया गया। बंगाल आर्डिनेन्स पर असंतोष भी प्रकट किया गया।

स्वराज्य पार्टी ने क्या किया?

सन १९२३ में दिल्ली के विशेष कांग्रेस अधिवेशन के बाद ही स्वराज्य पार्टी ने अपना संघटन-कार्य आरंभ कर दिया। पार्टी की सफलता के लिए फ़ंड इकट्ठा किया, समाचार पत्र चलाये और कार्यकर्ताओं को भी नियुक्त किया गया। कौंसिल चुनाव के समय तक वह खूब शक्तिशाली बन गयी।

इस पार्टी की तरफ़ से एक मेनीफ़ेस्टो भी प्रकाशित किया गया, जिसमें उसका उद्देश्य इस प्रकार बतलाया गया :—

(१) कौंसिलों को सरकार राष्ट्रीय आन्दोलन के विरुद्ध इस्तेमाल न कर सकेगी।

(२) सरकार को राष्ट्रीय मांग द्वारा अल्टिमेटम दिया जायगा कि अगर मांग स्वीकृत न हुई तो स्वराज्य पार्टी की ओर से 'सतत लगातार और एक सी' अड़ंगा नीति का उपयोग किया जावेगा और कौंसिलों को तोड़ दिया जावेगा।

चुनाव में स्वराज्य पार्टी के आदमी हर प्रांत में अधिक संख्या में चुने गये और विशेष कर बंगाल तथा मध्यप्रदेश में उनका बहुमत बड़ा ज़बर्दस्त हो गया। सन् १९२४ के प्रारंभ में स्वराज्य पार्टी का संघटन ख़ूब ज़ोरदार हो गया। उसकी जनरल कौंसिल ने सदस्यों के लिए नियम बनाए और यह तय किया कि सरकार के सामने जो मांगें पेश की जावेंगी, उनमें मुख्य मुख्य बातें ये होंगी।—

(१) सब राजनैतिक क़ैदी छोड़ दिये जावें।

(२) कुल दमनकारी क़ानून रद्द कर दिये जायँ।

(३) एक नैशनल कन्वेंशन बुलाई जाय।

यदि सरकार न माने तो अड़ंगा नीति चलाई जायगी, ऐसा निश्चय हो गया। यह भी निश्चय किया गया कि स्वराज्य-पार्टी का कोई सदस्य न तो कोई सरकारी पद ग्रहण करेगा और न किसी सिलेक्ट कमेटी में ही भाग लेगा और न उसमें अपना नाम ही देगा। केवल कौंसिलों के साधारण काम में ही भाग ले सकेगा।

इस निश्चय के अनुसार बंगाल व सी० पी० में जहाँ स्वराज्य पार्टी के सदस्य बहुमत में थे, उनके सदस्यों ने मिनिस्टर होने से इन्कार कर दिया। केन्द्रीय एसेम्बली की बैठक आरंभ होते ही स्वराज्य पार्टी

के नेता पं० मोतीलाल नेहरू ने सरकार से यह माँग पेश की कि भारतीय शासन के लिए नया विधान बनाने के हेतु "राउंड टेबुल कानफ़रेन्स" बुलायी जावे। सरकार ने इसे अस्वीकार कर दिया। तब स्वराज्यपार्टी ने भी "फ़ाइनेन्स बिल" (अर्थात् सरकारी आय-व्यय का बजट) बहुमत से असेम्बली में अस्वीकृत करवा दिया। लार्ड रीडिंग ने फिर उसे अपने "सार्टीफ़िकेट" से क़ायम किया।

एसेम्बली में स्वराज्यपार्टी के केवल पचास ही मेम्बर थे। शेष सब दूसरे दलों के मेम्बर थे। किंतु पं० मोतीलाल नेहरू ने—जो वहाँ स्वराज्य दल के लीडर या अगुआ थे—इस समय अपने पार्लि-मेन्टरी युद्ध कौशल का अपूर्व परिचय दिया, और स्वतंत्र-दल के सदस्यों से मेल करके एसेम्बली में एक नैशनलिस्ट पार्टी तैयार कर ली, जिसके द्वारा सरकार को बारबार हार खानी पड़ी।

सन् १९२५ में देश का राजनैतिक आन्दोलन बिल्कुल गिर गया था; परंतु धारा-सभाओं में स्वराज्य पार्टी ने अपना ख़ूब ज़ोर दिखाया। केन्द्रीय एसेम्बली में मि० डोराय स्वामी आयंगर का बंगाल आर्डिनेन्स रद्द करने का प्रस्ताव सरकार के यथाशक्ति विरोध करने पर भी पास कर दिया गया। इसी प्रकार मि० बी० जे० पटेल का यह प्रस्ताव कि बंगाल, बम्बई, मद्रास स्टेट प्रिज़नर्स ऐक्ट सन् १८५० प्रिवेन्शन आफ़ सडीशस मीटिंग ऐक्ट सन् १९२१ (Prevention of Seditions meetings Act 1921) और पंजाब फ्रान्टियर औटरेजस और ऐक्ट (Punjab Frontier Outrageous Act 1867) हर प्रकार के प्रस्तावित संशोधनों को गिरा कर पास कर दिया गया। केवल पंजाब फ्रान्टियर औटरेजस ऐक्ट वापस ले लिया, गया क्योंकि वह उपयोगी जान पड़ा। मि० के० सी० नियोगी का रेलवे ऐक्ट-संशोधन बिल भी पास हुआ। मि० व्यंकटपति राजू का भारत में सैनिक कालेज खोलने का बिल सरकार के घोर विरोध करने पर भी पास कर दिया गया। सर

एलेक्ज़ेन्डर मुडीमैन ने एसेम्बली में सरकार की तरफ़ से घोषणा की कि क्रिमिनल लॉ अमेन्डमेंट ऐक्ट (Criminal Law Amendment Act) पर सम्राट् की मंज़ूरी मिल गयी है और फिर एक बिल उसी की पुष्टि के लिए पेश किया। स्वराजी और इन्डिपेन्डेन्ट मेम्बरों ने उसमें से कुछ भाग निकाल देना चाहा; किंतु लार्ड रीडिंग ने सिफ़ारिश की कि बिल अपने असली रूप में ही पास किया जावे। फिर भी बहुमत से लार्ड रीडिंग की राय के विरुद्ध प्रस्ताव पास हुआ। निदान वाइसराय को कौंसिल आफ़ स्टेट से बिल पास हो जाने पर अपने सर्टिफ़िकेट से उसे क़ानून बनाना पड़ा।

बंगाल की कौंसिल में भी लार्ड लिटन ने ७ जनवरी सन् १९२५ को 'आर्डिनेंस' विषयक क़ानून पेश किया, किंतु स्वराज्य पार्टी ने उसे बहुमत से गिरा दिया। लाचार उन्हें अपने सर्टीफ़िकेट से उसको पास करना पड़ा। कुछ दिनों के बाद स्वराज्य पार्टी के मेम्बरों की यह राय होने लगी कि "मिनिस्टर" का पद स्वीकार कर लेना चाहिए। संयुक्त प्रांत में यह सवाल उठा भी—किंतु स्वराजिस्ट कौंसिल ने उसे नामंज़ूर कर दिया। १७ फ़रवरी १९२५ को बंगाल लेजिस्लेटिव कौंसिल से मिनिस्टरों के वेतन बजट में रखे जाने का प्रस्ताव पास हुआ; लेकिन २३ मार्च १९२५ को जब वह वेतन बजट में शामिल करके कौंसिल के सामने रखा गया तो नामंज़ूर कर दिया गया। इस प्रकार एसेम्बली और कौंसिलों में बारबार सरकारी प्रस्तावों को गिरा कर और उसे सर्टीफ़िकेट (अर्थात् विशेषाधिकार) के द्वारा पुनर्जीवित करने के लिये लाचार करके स्वराज्य पार्टी ने संसार के सामने भारतीय शासन की निरंकुशता और ग़ैर ज़िम्मेदारी भली-भांति खोल कर रख दी।

स्वराज्य पार्टी में फूट

तारीख़ १६ जून सन् १९२५ को देश-बंधु सी० आर० दास का

दार्जिलिंग स्वर्गवास में हो गया, जिससे स्वराज्य पार्टी को बड़ी गहरी हानि पहुँची। वास्तव में देश-बंधु दास और पं० मोतीलाल नेहरू—ये दो ही स्वराज्य पार्टी के आधारस्तंभ थे। दास महोदय की मृत्यु के बाद पं० मोतीलाल ने अकेले काम सम्हाला; किंतु अब इस पार्टी में फूट के चिह्न दिखाई देने लगे। सी० पी० और महाराष्ट्र प्रांत के स्वराजी सदस्यों ने बग़ावत का झंडा खड़ा कर दिया। मध्य प्रांतीय कौंसिल के अध्यक्ष श्रीयुत बलवंत ताम्बे ने मध्य प्रांत की सरकारी कार्य-कारिणी कौंसिल में पद स्वीकार कर लिया। श्रीयुत जयकर, केलकर तथा डाक्टर मुंजे ने उनका समर्थन किया और प्रतियोगी सहयोग (Responsive Co-operation) की आवाज़ उठा कर स्वराज्य पार्टी से इस्तीफ़ा दे दिया तथा अपना एक दल अलग से तैयार किया।

सितम्बर सन् १९२५ में आल इंडिया कांग्रेस कमेटी की बैठक पटना में हुई, जिसमें कांग्रेस का कुल कार्य क्रम स्वराजियों की इच्छानुसार बना दिया गया जिससे स्वराजी और अन्य कांग्रेसी लोगों में कोई अंतर नहीं रह गया। निदान यह निश्चय हुआ कि भविष्य में स्वराजिस्ट नाम अलग रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। निदान इसके बाद कौंसिलों में वे कांग्रेसी सदस्य कहलाने लगे। आगे चलकर कानपूर की चालीसवीं कांग्रेस (१९२५) में भी स्वराजियों के कार्यक्रम को पूर्ण रूप से अपना लिया। इस कांग्रेस में श्रीमती सरोजनी नायडू ने अध्यक्ष की हैसियत से अपने भाषण में कहा कि यदि सरकार ने तीन चार महीने में हमारी "राष्ट्रीय माँग" (National Demand जो स्वराज्यपार्टी की तरफ़ से एसेम्बली में पेश की गयी थी, न पूरी की तो केन्द्रीय और प्रान्तीय कौंसिलों के कुल सदस्य अपनी मेम्बरी से इस्तीफ़ा दे देवें और सब मिल कर उस ध्येय की प्राप्ति के लिए स्वार्थ त्याग के लिए तैयार हो जावें।

प्रतियोगी सहयोगी दल (Responsivists Party)

कानपुर कांग्रेस के अवसर पर ही श्रीयुत केलकर, जयकर और मुंजे ने स्वराज्यपार्टी से अलग होकर एसेम्बली से इस्तीफ़ा दे दिया।



(श्रीमती सरोजनी नायडू)

इसके बाद वे अपनी नयी पार्टी बनाने में जुट गये। तारीख़ १४ फ़रवरी १९-२६ को अकोला में एक कान्फ़रेन्स की गयी, जिसमें सभापति श्री एम० आर० जयकर हुए। श्रीयुत जय-कर ने अपनी नयी पार्टी की नीति इस प्रकार बत-लायी। वर्तमान परिस्थिति में केवल एक ही नीति है, और वह है प्रतियोगी सहयोग (Responsive Co-opration) जिसका अर्थ है कि यद्यपि हम मांटफ़ोर्ड सुधार को ना-काफ़ी असंतोष - जनक और निराशा - जनक मानते हैं; फिर भी हमें उन सुधारों को अपने उपयोग में उस हद तक लाना चाहिए, जहाँ तक उनमें कुछ सार है; और उन्हें इस ढंग से उपयोग में लाना चाहिए, जिससे स्वराज्य शीघ्र प्राप्त हो सके। सुधारों का इसलिए भी उपयोग करना ज़रूरी है कि जनता को अपने हितों के साधन के अवसर मिलें, और अन्याय

तथा दुःशासन का मुक़ाबिला करने की शक्ति पैदा हो। श्री० जयकर ने यह भी बतलाया कि इस नीति से न तो वे किसी सिद्धांत को छोड़ते हैं और न पीछे ही हटते हैं। इस दल के अनुसार सुधारों के उपयोग में ऐसी सरकारी नौकरियों को ग्रहण करना उचित समझा गया जो कौंसिल के प्रति उत्तरदायी हों और उनका वेतन भी पार्टी के ही फ़ैसले पर निर्भर कर दिया गया।

इस कान्फ़रेन्स में जो प्रस्ताव पास हुए, वे नीचे लिखे मतलब के थेः—(१) पार्टी के सिद्धान्त ऊपर लिखे अनुसार निश्चित किये गये। (२) स्वराज्यपार्टी व कांग्रेस की वर्तमान नीति की निंदा की गयी। (३) पार्टी का कार्य-क्रम तैयार करने के लिए एक कमेटी बनायी गयी, जिसमें निम्नलिखित सदस्य थेः—श्री जयकर, श्री देश-मुख, डा० मुंजे, श्री० एन० सी० केलकर, श्रीयुत अरो, श्री एस० बी० केलकर और मि० बेपटिस्टा। (४) पार्टी का कार्य-क्रम वही रखा गया जो कांग्रेस डिमाक्रेटिक पार्टी का था (जो सन् १९२० में स्थापित हुई थी)।

मार्च सन् १९२६ में सब कौंसिलों से स्वराजी दल के सदस्य सर-कार के प्रति विरोध प्रकट करने के लिए उठ कर बाहर चले (Walkout) आये; क्योंकि सरकार ने राष्ट्रीय माँग पर ध्यान नहीं दिया था। इसके पश्चात् स्वाराजिस्ट और प्रतियोगी-सहयोगी दलों में परस्पर खूब आलोचना-प्रत्यालोचना होने लगी और उनके बीच विरोधभाव बढ़ने लगा। अंत में महात्मा गाँधी ने मध्यस्थ होकर दोनों दलों में मेल करा दिया। यह संधि "साबरमती पैक्ट" के नाम से प्रसिद्ध है।

इस पैक्ट के अनुसार स्वराजिस्टों को मंत्री पद स्वीकार करने की स्वतंत्रता दे दी गयी; किंतु शर्त यह रखी गयी कि सरकार उन्हें पूरी संचालन-शक्ति—पूरा उत्तरदायित्व देने पर तैयार हो, तभी यह पद

स्वीकार किया जा सकता है। पं० मोतीलाल नेहरू को बम्बई और मद्रास के स्वराजिस्टों ने बहुत बुरा-भला कहा। आल इन्डिया कांग्रेस कमेटी ने भी इस पैक्ट को नामंज़ूर कर दिया, जिससे प्रतियोगी-सहयोगी दल वाले फिर बिगड़ गये।

इसी समय योरोप से लाला लाजपत राय भारत लौटे। उन्हें भी स्वराजिस्टों की नीति पसंद नहीं आई। अतएव उन्होंने पं० मदन मोहन मालवीय की सहायता से एक नया दल खड़ा किया, जो स्वतंत्र दल" (Independent Party) के नाम से प्रसिद्ध हुआ, इस पार्टी ने हिंदू सभा के कार्य-क्रम को अपनाया।

नया कौंसिल चुनाव

अक्टूबर १९२६ में कौंसिलों का नया चुनाव-संबंधी आन्दोलन शुरू हुआ। इस समय देश की विचित्र अवस्था थी। स्वराज्य पार्टी, प्रतियोगी-सहयोगी पार्टी, इंडिपेन्डेन्ट पार्टी, लिबरल पार्टी, हिंदू सभा, मुसलिम लीग, ख़िलाफ़त पार्टी और दक्षिण में अब्राह्मण पार्टी आदि अनेकों दल के उम्मीदवार खड़े किये गये। अतएव आपस में ख़ूब झगड़े चलने लगे। चुनाव का फल बहुत अच्छा न हुआ। स्वराज्य पार्टी के आदमी हर प्रांतीय कौंसिल में तथा एसेम्बली में सबसे ज़्यादा संख्या में पहुँचे, लेकिन सिवाय मद्रास के और कहीं उनका बहुमत नहीं रहा।

गोहाटी की ४१ वीं कांग्रेस (१९२६)

इसके सभापति श्रीयुत श्री निवास आयगंर थे। इस अधिवेशन में लाला लाजपतराय तथा श्री जयकर शामिल नहीं हुए। स्वामी श्रद्धानन्दजी की शुद्धि और संगठन-कार्य से कुढ़ कर एक धर्मान्ध मुसलमान अब्दुल रशीद ने दिल्ली में उनकी हत्या कर दी थी। यह समाचार कांग्रेस में फैलते ही हिंदू-मुसलिम एकता की कोशिशों पर एक नया घाव लग गया।

इस कांग्रेस में जो प्रस्ताव पास हुए उनका मतलब इस प्रकार थाः—

(१) कांग्रेस सरकारी पदों को ग्रहण करना अस्वीकार करती है, और जब तक राष्ट्रीय मांग पूरी न की जाय और बंगाल के नज़रबंद क़ैदी न छोड़े जायँ तब तक सरकारी बजट अस्वीकार किया जाया करे।

(२ राष्ट्रोन्नति के लिए कौंसिल और एसेम्बली में प्रस्ताव पेश करने और समय-समय पर पार्टी की आज्ञानुसार बहस करने की भी अनुमति कांग्रेस ने दे दी।

(३) सर्व-साधारण में राजनैतिक शिक्षा, चरख़ा, और खद्दर का प्रचार।

(४) सब जातियों में ऐक्य पैदा करना और बढ़ाना।

(५) कांग्रेसी रोज़ खद्दर पहने—यह प्रस्ताव दोहराया गया।

कुछ लोगों ने कांग्रेस का ध्येय पूर्ण स्वाधीनता घोषित करने पर भी ज़ोर दिया; किंतु महात्मा गांधी के विरोध करने पर इस साल वह पास न हो सका।

सन १९२७ की राजनैतिक परिस्थिति

स्वामी श्रद्धानंद की हत्या के कारण इस समय राजनैतिक वातावरण बिल्कुल दूषित हो उठा था। हिंदू-मुसलिम वैमनस्य बेहद बढ़ गया, अनेकों स्थानों पर हिंदू-मुसलिम दंगे हुए, जिनमें लाहौर का दंगा सब से भयंकर था। काकोरी-डकैती वाला मामला भी इसी समय चला, जिसमें देश के अनेकों नवयुवक गिरफ़्तार किये गये। इस डकैती को सरकार की ओर से राजनैतिक रूप दिया गया और इसलिए कई अभियुक्तों को अमानुषिक सज़ाएं दी गयीं। मिसमेयो (Miss Mayo) की "मदर इन्डिया" नामक पुस्तक भी इसी समय प्रकाशित हुई, जिससे देश भर में खलबली मच गयी। ऐसी द्वेष-पूर्ण, झूठी, और अपमान जनक पुस्तक भारतीयों के संबंध में पहिले कभी नहीं लिखी गयी थी।

"रंगीला रसूल" नाम की पुस्तक के लिए सरकार ने उसके लेखक पर फ़ौजदारी क़ानून के अनुसार मुक़दमा चलाया और उसे सज़ा दी।

एसेम्बली और कौंसिलों में स्वराजियों का पहिले की तरह ज़ोर नहीं दिखाई देता था। इसी समय श्री हरविलास शारदा ने अपना वह प्रस्ताव एसेम्बली में पेश किया जो बाद में "शारदा ऐक्ट" के नाम से प्रसिद्ध हुआ और जिसके द्वारा विवाह की कम से कम उम्र निश्चित कर दी गयी।

साइमन कमीशन

सन् १९२७ के अक्टूबर महीने में मान्टफ़ोर्ड-सुधार-संबंधी जांच के लिए एक शाही कमीशन नियुक्त किया गया जो साइमन कमीशन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसका उद्देश्य सरकारी शब्दों में यह था कि "वह ब्रिटिश भारत के शासन-कार्य की, शिक्षा वृद्धि की, प्रातिनिधिक संस्थाओं के विकास की एवं तत्संबंधी विषयों की जांच करे और इस बात की रिपोर्ट पेश करे कि उत्तरदायी शासन का सिद्धांत लागू करना ठीक है या नहीं? यदि ठीक है तो किस दरजे तक? और अभी तक उत्तरदायी शासन जिस मात्रा में स्थापित किया गया है उसे बढ़ाया जाय, कम किया जाय या किस प्रकार का हेर-फेर किया जाय। इसके साथ ही इस बात की भी रिपोर्ट पेश करे कि प्रांतों में दो-दो कौंसिलों का स्थापित करना ठीक है या नहीं।"

इस कमीशन में एक भी भारतीय सदस्य नहीं रखा गया। कुल सदस्य अंग्रेज़ थे। इससे देश भर में बड़ा असंतोष फैला। जिस सिद्धांत को लेकर भारतवासी स्वभाग्य निर्णय के लिए आन्दोलन कर रहे थे उसी सिद्धांत पर पार्लियामेंट की तरफ़ से कुठाराघात किया गया। कमीशन में भाग लेने का कुछ भी अधिकार भारतीयों को नहीं मिला, इससे स्पष्ट था कि भारतीयों की मांग का निरादर किया गया। निदान

सब राजनैतिक दलों ने एक स्वर से इस कमीशन का वहिष्कार कर ३ फ़रवरी सन् १९२८ को यह कमीशन विलायत से बम्बई पहुँचा। उस दिन देश भर में हड़ताल मनायी गयी। इसके बाद दिल्ली, लखनऊ, पटना आदि जिन-जिन शहरों में कमीशन का दौरा हुआ, वहाँ-वहाँ उसका बायकाट किया गया और "साइमन! लौट जाओ" आदि के झंडे प्रदर्शित किये गये। सरकार ने इतना सफल वहिष्कार जब देखा तो क्रोध से पागल हो उठी और क़ानूनी दमन तथा पुलीस की लाठियों द्वारा इस आंदोलन को कुचल देना चाहा; किंतु यह आंदोलन गेंद की तरह जितना ही ज़मीन पर पटका गया, उतना ही उछल उछल कर ऊपर को जा पहुँचा। तात्पर्य यह कि सायमन साहब और उनके साथियों को भली भांति दिखला दिया गया कि भारतीय आन्दोलन में कितनी ज़बर्दस्त ताक़त है।

देशी राज्य के साथ अंग्रेज़ी सरकार के सम्बंध पर जांच कर के राय देने के लिए एक बटलर कमेटी भी नियुक्त की गयी। उसके कारण भी बड़ा असंतोष फैला। इस कमेटी का वर्णन आगे "आल इंडिया-स्टेट्स-पीपुल्स कांफ़रेंस" के इतिहास के साथ दिया जायगा।

इस प्रकार के राजनैतिक वातावरण में, जिसमें हिंदू-मुसलिम तनातनी का ज़हर भी चारों ओर छिटका हुआ था, राष्ट्रीय कांग्रेस का ४२ वां अधिवेशन मद्रास शहर में किया गया।

मद्रास-कांग्रेस (१९२७)

मद्रास का अधिवेशन डा० अन्सारी के सभापतित्व में किया गया था। इस अधिवेशन में सायमन कमीशन के प्रस्ताव को छोड़ कोई ख़ास बात नहीं हुई। सायमन कमीशन के बाबत जो प्रस्ताव पास हुआ, उसका मतलब संक्षेप में इस प्रकार था :—

"चूँकि स्वराज्य-निर्णय के तत्व के विरुद्ध यह कमीशन नियत

किया गया है; इसलिए कांग्रेस निश्चित करती है कि स्वाभिमानी भारत के लिये केवल एक ही मार्ग है और वह यह कि कमीशन का बहिष्कार किया जाय। विशेष करके—

(क) कमीशन के भारत में आने के दिन देश भर में जुलूस आदि से विरोध प्रकट किया जावे।

(ख) कमीशन के बायकाट के लिए देश-व्यापी आंदोलन किया जावे।

(ग) कमीशन के सामने राजनैतिक नेता तथा कौंसिल व असेम्बली के गैर सरकारी सदस्य गवाही न दें, न उनसे भेंट करें और न उनके साथ किसी तरह के भोज इत्यादि में शरीक हों।

(घ) कौंसिल व असेम्बली के ग़ैर सरकारी सदस्य कमेटियों में शामिल न हों और न कमीशन के ख़र्च के लिए वोट दें।

(ङ) जब तक कमीशन भारत में रहे, तब तक कांग्रेसी मेम्बर कौंसिलों में और एसेम्बली में हाज़िर न हों, केवल उस समय हाज़िर हो सकते हैं, जब ग़ैर हाज़िरी से उनकी जगह ख़ाली होने की संभावना हो, या वर्किंग कमेटी राष्ट्रीय कार्य के लिये ज़रूरी समझे।

इसके अतिरिक्त पिछले सालों की तरह इस साल भी एक अलग प्रस्ताव द्वारा कहा गया कि "यह कांग्रेस घोषित करती है कि भारतीय जनता का लक्ष्य पूर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता है।"

सन् १९२८ की राजनैतिक घटनाएँ

इस वर्ष सायमन कमीशन के बहिष्कार-आन्दोलन के अतिरिक्त दो और मुख्य घटनाएँ थीं:—(१) बारडोली-सत्याग्रह और (२) सर्वदलसम्मेलन की बैठकें।

(१) बारडोली-सत्याग्रह

यह सत्याग्रह वास्तव में स्वराज्य-आंदोलन के संबंध में नहीं किया

गया था; बल्कि वहां के किसानों पर बढ़ायी जाने वाली सरकारी माल गुज़ारी के विरोध में किया गया था। श्रीयुत वल्लभ भाई पटेल इस आंदोलन के नेता थे। बारडोली में सरकार ने अन्य ताल्लुक़ों के समान जब ज़मीन का नया बन्दोबस्त करके माल गुज़ारी २५ प्रति शत बढ़ायी तो किसानों ने उसका विरोध किया। सब प्रकार के वैध उपायों का पहिले अवलंबन किया गया; किंतु जब उनसे कोई परिणाम न निकला, तब सब किसानों ने मिलकर श्री वल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में करबंदी की घोषणा की और मालगुज़ारी देने से इनकार कर दिया। उत्तर में सरकार ने भी सब प्रकार की दमन नीति से काम लिया और मालगुज़ारी वसूल करने के लिये बाहर के पठानों तक से मदद ली। किन्तु विजय अंत में किसानों के हाथ में रही। मालगुज़ारी नहीं बढ़ायी गयी और जो-जो ज़मीन सरकार ने मालगुज़ारी वसूल करने के लिये छीनकर नीलाम कर दी थी वह सब किसानों को वापस मिल गयी, तथा पटेल और तलाटियों को भी उनके स्थान पर पुनः नियुक्त कर दिया गया। सचमुच यह अहिंसात्मक संग्राम की एक ज़बर्दस्त विजय थी।

सर्वदल सम्मेलन और नेहरू-कमेटी की रिपोर्ट (१९२८)

कांग्रेस के प्रस्तावानुसार सर्वदल-सम्मेलन (All Parties Conference) की बैठक फ़रवरी और मार्च में दिल्ली में की गयी। अन्य प्रश्नों के अतिरिक्त इसमें यह भी तय हुआ कि भारत के वैधानिक प्रश्न पर विचार 'पूर्ण उत्तरदायी शासन' को आधार मान कर किया जावे। १९ मई को डा० अन्सारी के सभापतित्व में फिर सम्मेलन की बैठक की गयी, जिसमें यह निश्चय हुआ कि भारतीय विधान के सिद्धांतों का मसविदा तैयार करने के लिये पं० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की जाय, जो १ जुलाई १९२८ तक अपना रिपोर्ट दे दे।

नेहरू कमेटी ने जो रिपोर्ट तैयार की, उस पर विचार करने के लिए २८, २९ और ३० अगस्त को सर्वदल-सम्मेलन की बैठक लखनऊ में हुई। नेहरू कमेटी को उसके परिश्रम के लिए बधाई दी गयी। सम्मेलन ने अपने आपको औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में घोषित किया। अतएव पूर्ण स्वतंत्रतावादी दलों ने उसके प्रस्ताव के समर्थन में कोई भाग नहीं लिया; यद्यपि उन्होंने कोई बाधा भी नहीं उपस्थित की।

इस रिपोर्ट पर आल इंडिया कांग्रेस कमेटी ने ४ व ५ नवम्बर को अपनी बैठक करके विचार किया और नेहरू कमेटी के साम्प्रदायिक फ़ैसले को स्वीकार कर लिया, तथा यह राय भी प्रकट की कि नेहरू कमेटी के प्रस्ताव राजनैतिक प्रगति की ओर ले जाने में सहायक हैं और उन्हें स्थूल रूप से स्वीकार किया जा सकता है। साथ ही उसने पूर्ण स्वाधीनता का अपना ध्येय दोहराया। इसके बाद राष्ट्र के बड़े नेता पंजाब केसरी ला० लाजपतराय का १७ नवम्बर सन् १९२८ को स्वर्गवास हो गया।

कलकत्ते में कांग्रेस का ४३ वां अधिवेशन

यह अधिवेशन बड़े महत्व का था, कारण कि उसे कांग्रेस का भावी मार्ग निर्दिष्ट करना था। इसी हेतु इसके सभापति पं० मोतीलाल नेहरू चुने गये। इसी के साथ सर्व-दल-सम्मेलन भी लगा हुआ था, जिसका पूरा इजलास कलकत्ते में हुआ। नेहरू जी ने अपने भाषण में इस बात पर ज़ोर दिया कि "सर्वदल-संमेलन जिस स्थान तक पहुँच गया है, वहीं से सरकार को काम शुरू कर देना चाहिए और जहाँ तक हम जा सकें, वहाँ तक उसे हमारा साथ देना चाहिये"।

कलकत्ता-कांग्रेस की एक भारी विशेषता यह थी कि इस साल विदेशों से सैकड़ों व्यक्तियों एवं संस्थाओं ने सहानुभूति-सूचक संदेश भेजे थे, जिनमें से श्रीमती सनयात-सेन, मोशिये रोम्यां रोलां, फ़ारस

के समाजवादी दल तथा न्यूज़ीलैंड के कम्यूनिस्ट दल के संदेशे उल्लेख-योग्य थे। इसी समय से विदेशों में अपना संबंध बढ़ाने के लिये कांग्रेस ने अपना एक वैदेशिक विभाग भी खोलना निश्चित् कर लिया।



(स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू)

इसके अतिरिक्त जो अन्य मुख्य मुख्य प्रस्ताव पास हुए, वे संक्षेप में इस प्रकार थे :—

(१) लाला लाजपत राय, हकीम अजमलख़ाँ तथा लार्ड सिनहा की मृत्यु पर शोक।

(२) लाहौर में सायमन कमीशन का बहिष्कार होने पर पुलीस ने जो अत्याचार किये थे, उनकी निन्दा।

(३) लदंन और न्यूयार्क में जो काँग्रेस कमेटियाँ खुली हैं, उनकी

स्वीकृति तथा इनकी संख्या अमेरिका और इंगलैंड में बढ़ाने की सिफ़ारिश।

(४) वर्किंग कमेटी एक "एशियाईसंघ" क़ायम करने का प्रयत्न करे, और इसके लिए १९३० में एक सम्मेलन बुलावे।

(५) चीन को पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने पर बधाई।

(६) मिश्र, सीरिया, फ़िलस्तीन और ईराक़ से सहानुभूति।

(७) साम्राज्य-विरोधी लीग से सहानुभूति।

(८) वर्तमान सरकार भारतीयों की प्रतिनिधि नहीं है और भावी युद्ध में भारतीय उसका साथ न देंगे।

(९) विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार।

(१०) बारडोली-सत्याग्रहियों की प्रशंसा और बधाई।

(११) सरकारी कामों का बहिष्कार।

(१२) देशी रियासतों में उत्तरदायी राज्य क़ायम हो।

(१३) ५ बंगालियों की जेल में मृत्यु पर समवेदना।

(१४) सर्व-दल सम्मेलन द्वारा स्वीकृत नेहरू-कमेटी की रिपोर्ट को स्वीकार करने के लिये सरकार को एक साल की मुहलत दी गयी। प्रस्ताव संक्षेप में इस प्रकार था—"देश की राजनैतिक स्थिति को देखते हुए यह कांग्रेस नेहरू कमेटी की तैयार की हुई शासन-पद्धति को ३१ दिसम्बर १९२९ तक के लिये स्वीकार करती है। यदि उस समय तक ब्रिटिश पार्लिमेंट ने उसे स्वीकार न किया, अथवा इस तारीख़ के पहिले ही उसे अस्वीकार कर दिया, तो ऐसी दशा में कांग्रेस अहिंसात्मक असहयोग का संगठन शुरू कर देगी और देश को इस बात के लिए तैयार करेगी कि सरकार को न तो टैक्स दिया जाय और न किसी प्रकार की सहायता ही दी जाय।

(१६) कांग्रेस कार्यक्रम ।

सर्वदल-सम्मेलन बुरी तरह से असफल रहा। कुछ मुसलमान पहिले ही से इसके विरुद्ध थे। अब उनके नेता मि० जिन्ना ने भी जो उन्हीं दिनों विलायत से लौटे थे, नेहरू-कमेटी-रिपोर्ट को जी भर कर कोसना शुरू किया पश्चात् महात्मा जी के प्रस्ताव से यह सर्वदल-सम्मेलन अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया।

राजनैतिक वातावरण इस समय बहुत ही अंधकारमय प्रतीत हो रहा था। स्वतंत्रता के हामियों पर मुक़दमे चलने की अफ़वाहें, वाइसराय का उत्तेजना-पूर्ण भाषण, फ़ारवर्ड पत्र के सम्पादक को सज़ा, मद्रास में मुक़दमों का दौर दौरा इत्यादि—ऐसी बातें थी, जो काफ़ी बेचैनी पैदा करने वाली थीं।

पूर्ण-स्वाधीनता युग—१९२९ई०-१९३५ई०

१९२९ में राजनैतिक परिस्थिति

देश के इतिहास में १९२९ का वर्ष बड़ा महत्त्वपूर्ण रहा। साइमन कमीशन ने अपना भारतीय कार्यक्रम १४ अप्रैल सन् १९२९ को समाप्त कर दिया और फिर वह विलायत को लौट गया। मई में विलायत के अनुदार-दल (Conservative Party) की सरकार साधारण चुनाव में हार गयी और मज़दूर दल का मंत्रि-मंडल क़ायम हुआ। मेकडानल्ड साहब प्रधान मंत्री हुए और श्रीयुत वेजउड बेन भारत-मंत्री। जून में भारत के वाइसराय लार्ड अरविन चार मास की छुट्टी लेकर विलायत गये, जिसका मुख्य उद्देश यह था कि "साइमन कमीशन के परिणाम-स्वरूप भारत के लिए जो सुधार-योजना पार्लिमेंट के सन्मुख रक्खी जाय उससे पहिले ऐसा उपाय किया जाय जिससे विधान-संबंधी स्थिति स्पष्ट हो जाय, और भारत के भिन्न-भिन्न राजनैतिक दलों को अधिक सहयोग प्राप्त किया जा सके।

इधर कांग्रेस ने जो अपने कलकत्ता-अधिवेशन में औपनिवेशिक स्वराज्य के लिए सरकार को एक साल की मुहलत दी थी, उसी के अनुसार तैयारी करने का आन्दोलन आरम्भ हुआ। महात्मा गांधी ने रचनात्मक कार्य-क्रम को सफल बनाने के लिए भारतवर्ष का दौरा शुरू किया। पहिले मद्रास प्रांत में दौरा किया, जिसमें खद्दर-प्रचार के लिए उन्हें बहुत से रुपये भेंट किये गये। इसके बाद बंगाल के दौरे में एक घटना हो गयी। कलकत्ते के एक पार्क में व्याख्यान के समय उन्होंने विदेशी वस्त्रों की एक होली जलाई, जिसपर उनकी गिरफ़्तारी हुई। ज़मानत पर छूटने पर वे रंगून चले गये। वहाँ से लौटने पर उन पर एक रुपया जुर्माना किया गया, जिससे देश भर में हलचल मच गयी।

इसी समय पंजाब में नौजवान सभा के कुछ सदस्य भी पकड़े गये। २० मार्च को देश भर में मज़दूर दल के कितने ही नेता गिरफ़्तार हुए। इनकी गिरफ़ारी मेरठ-षड्यंत्र केस के संबंध में हुई। श्रीयुत भगतसिंह और श्री० बी० के० दत्त ने एसेम्बली में बाम्ब फेंका, जिसके कारण उन पर भी मुक़दमा चला और उन्होंने एक सनसनीदार बयान अदालत में पेश किया। देश भर में क्रांति-पूर्ण भावों की एक लहर सी फैल गयीं। साउंडर-हत्या केस में भी अनेकों नवयुवक पकड़े गये। इसी समय श्री० भगतसिंह, श्रीदत्त, श्रीयतीन्द्रनाथदास तथा कुछ अन्य अभियुक्तों ने जेल में इस उद्देश्य के अनशन आरंभ किया कि क़ैदियों के साथ अच्छा बर्ताव किया जाय। अदालत में अभियुक्तों की अनुपस्थिति के कारण मुक़दमा चालू रखने में कठिनाई प्रतीत हुई; तब सरकार ने ज़ाब्ता फ़ौजदारी में कुछ संशोधन कराना चाहा, किंतु वह पास न हो सका।

श्रीयुत यतीन्द्रनाथ दास भूख से बहुत कमज़ोरी पड़ गये थे, किंतु सरकार ने उन्हें जेल से न छोड़ा। अंत में उनकी मृत्यु हो गयी और उनकी लाश लाहौर से कलकत्ते लायी गयी। लाहौर षड्यंत्र केस और मेरट-षड्यंत्र केस के कारण देश के राजनैतिक वातावरण में बड़ी तीव्रता

आ गयी। देश भर में युवक-संघों का ज़ोर ख़ूब ढ़ा। इसी समय झांसी के दो युवक सदाशिव और भगवानदास भुसावल के पास बम्ब रखने के अपराध में पकड़े गये और उन पर जलागाँव में मुक़दमा चला। अदालत के बाहर आते ही भगवानदास ने फणीन्द्रनाथ और जयगोपाल नामक दो मुख़बरों पर गोली चला दी. जिससे जयगोपाल घायल हो गया। इस प्रकार प्रत्यक्ष है कि देश के नवयुवक गण इस समय स्वतंत्रता के लिए अत्यंत अधीर हो रहे थे और उन्होंने अब हिंसा का अवलंबन भी लेना शुरू कर दिया था।

लार्ड अरविन की घोषणा

लार्ड अरविन २५ अक्टूबर को विलायत से लौट आये और ३१ अक्टूबर को यह घोषणा प्रकाशित की कि ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य स्थापित करना है। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि इस संबंध में विचार करने के लिए विलायत में एक "राउंड टेबुल कान्फ़रेंस" भी की जायगी, जिसमें हर एक राजनैतिक दल के प्रतिनिधि भाग ले सकेंगे। लेकिन इस घोषणा में यह नहीं प्रकट किया गया कि औपनिवेशिक स्वराज्य कब स्थापित होगा।

इस घोषणा के बाद शीघ्र ही दिल्ली में सब दलों के भारतीय नेताओं की एक सभा की गयी, जिसने गोलमेज़ कान्फ़रेंस में शामिल होने के लिए चार शर्त्तें रखीं:—

(१) कान्फ़रेंस में औपनिवेशिक स्वराज्य का विधान ही निश्चित किया जाय। उसकी अवधि के लिए कोई चर्चा न की जाय।

(२) सब राजनैतिक क़ैदी छोड़ दिये जायँ।

(३) काँग्रेस को सबसे अधिक प्रतिनिधित्व दिया जाय।

(४) कान्फ़रेंस जल्दी से जल्दी बुलायी जाय।

सरकार ने इन शर्तों का कोई उत्तर नहीं दिया, बल्कि विलायत के कुछ जिम्मेंदार अधिकारियों के भाषण से यह भी प्रकट हुआ कि सर-

कार की मन्शा भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य तुरन्त ही दे देने की नहीं है। इस पर महात्मा गान्धी और अन्य कांग्रेसी नेताओं के वक्तव्य प्रकाशित हुए कि बिना ऊपर की शर्तें पूरी हुए वे गोलमेज़ कान्फ़रेंस में शरीक न होंगे।

२३ दिसम्बर सन् १९२९ को लार्ड अरविन ने महात्मा गाँधी और पं० मोतीलाल नेहरू को दिल्ली में बुलाया और बातचीत की। किंतु कोई संतोष जनक फल न निकला। इसी दिन लार्ड अरविन की रेल के नीचे किसी ने बिजली से बम का धड़ाका किया, जिससे केवल लार्ड अरविन के नौकर को थोड़ी सी चोट आई और कोई विशेष क्षति नहीं हुई।

लाहौर में ४४वीं कांग्रेस और पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा

२५ दिसम्बर सन् १९२९ को लाहौर में काँग्रेस का ४४ वाँ अधिवेशन शुरू हुआ। इसके सभापति पं० जवाहर लाल नेहरू थे। इसका मुख्य प्रस्ताव, जो ३१ दिसम्बर के १२ बजे रात को पास किया गया, भारत की पूर्ण स्वाधीनता के संबंध में था। चूँकि २३ दिसम्बर की गाँधी-अर्विन भेंट से कोई फल नहीं निकला और यह विदित होगा कि सरकार की मन्शा औपनिवेशिक स्वराज्य तुरन्त देने की नहीं है; अतएव कलकत्ता काँग्रेस के प्रस्तावानुसार एक साल की मीयाद बीत जाने पर ३१ वीं दिसम्बर को ठीक बारह बजे रात के समय पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास कर दिया गया। इसके अनुसार सरकारी एसेम्बली और कौंसिलों के मेम्बरों को इस्तीफा दे देने के लिए कहा गया तथा आल-इन्डिया-काँग्रेस-कमेटी को अधिकार दिया गया कि वह पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए आवश्यक आन्दोलन शुरू कर दे और जब और जहाँ वह चाहे, आवश्यक प्रतिबन्धों के साथ सत्याग्रह तथा करबंदी तक का आन्दोलन जारी कर सकती है।

दूसरी बात जो इस काँग्रेस ने की वह यह थी कि अब आगे से काँग्रेस

का वार्षिक अधिवेशन दिसम्बर के बजाय फ़रवरी या मार्च में हुआ करेगा।

पूर्ण स्वाधीनता संबंधी प्रस्ताव के द्वारा नेहरू कमेटी की योजना रद्द हो गयी, इसलिए अब साम्प्रदायिक प्रश्नों के निबटारे के लिये कांग्रेस ने यह घोषित किया—"किसी भी भावी विधान में कांग्रेस ऐसा कोई साम्प्रदायिक निर्णय स्वीकार नहीं करेगी, जिससे सब पक्षों को पूर्ण संतोष न हो।" श्री सुभाषचंद्र बोस और श्री निवास आयंगर ने इसी समय अपना एक नया दल "कांग्रेस डिमाक्रेटिक पार्टी" के नाम से तैयार किया।

स्वाधीनता-दिवस

कांग्रेस की कार्य-कारिणी समिति ने अब यह निश्चय किया कि ता० २६ जनवरी १९३० को देश भर में स्वाधीनता-दिवस मनाया जावे और एक ऐसा वक्तव्य भी प्रकाशित किया, जिसे उस दिन देश के हर एक भाग में पढ़कर दोहराने की आज्ञा दी। निदान ता० २६ जनवरी को हर जगह जुलूस निकाले गये और सभाएं की गयीं तथा राष्ट्रीय झंडा फहरा कर स्वाधीनता-संबंधी उक्त वक्तव्य को भी दोहराया गया। उस दिन से आज तक हर साल २६ जनवरी को यह स्वाधीनता दिवस इसी प्रकार बराबर मनाया जाता रहा है।

महात्मा जी की ११ माँगें

ता० २५ जनवरी सन् १९३० को वाइसराय लार्ड अरविन ने एसेम्बली में एक भाषण दिया, जिस में यह साफ़ तौर पर कहा कि "गोलमेज़ कांफ़रेंस वास्तव में वह चीज़ न होगी, जैसा भारतवासी सोच रहे हैं। उसका निर्णय बहुमत से न किया जायगा। वह तो पार्लिमेंट को भारतीय सुधार के लिये केवल रास्ता मात्र दिखायेगी।" इसके उत्तर में गांधी जी ने अपने 'यंग इंडिया' नामक साप्ताहिक पत्र में एक लेख प्रकाशित किया, जिसमें वाइसराय के सामने उन्होंने ११

माँगें रखी थीं। ये माँगें, जो बहुत प्रसिद्ध हो चुकी हैं, इस प्रकार थीं :—

(१) सम्पूर्ण मदिरा-निषेध।

(२) एक्सचेंज की दर घटा कर १ शिलिंग ४ पेंस कर दी जाय।

(३) ज़मीन का लगान आधा कर दिया जाय और उस पर कौंसिलों का नियंत्रण रहे।

(४) नमक कर उठा लिया जाय।

(५) सैनिक-व्यय में आरंभ में ही ५० फ़ीसदी कमी कर दी जाय।

(६) लगान की कमी को देखते हुए बड़ी-बड़ी नौकरियों के वेतन कम से कम आधे कर दिये जायँ।

(७) विदेशी कपड़ों के आयात पर निषेध-कर लगाया जाय।

(८) भारतीय समुद्र तट केवल भारतीय जहाज़ों के लिए सुरक्षित रखने का क़ानून (Coastal Traffic Reservation Bill) पास कर दिया जाय।

(९) सब राजनैतिक क़ैदियों की रिहाई। धारा १२४ ए० व रेग्यूलेशन ३ सन् १८१८ रद्द किये जावें और सब निर्वासित भारतीयों को देश में वापस आने की आज्ञा दी जाय।

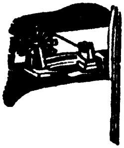
(१०) ख़ुफ़िया पुलीस का मुहकमा तोड़ दिया जाय अथवा वह जनता के अधिकार में रखा जाय।

(११) आत्म-रक्षार्थ हथियार रखने के परवाने सब को दिये जायँ, और उस पर जनता का नियंत्रण रहे।

सत्याग्रह का श्रीगणेश

फ़रवरी सन् १९३० तक कांग्रेस के आदेश पर १७२ सदस्यों ने

एसेम्बली और कौसिलों की मेम्बरी से इस्तीफ़े दे दिये। ता० १४,



१५ और १६ फ़रवरी को कार्य कारिणी समिति की बैठक साबरमती में हुई, जिसमें एक प्रस्ताव द्वारा सत्याग्रह की लड़ाई सरकार के विरुद्ध छेड़ने का निश्चय किया गया, और साथ ही महात्मा गांधी को डिक्टेटर नियत कर के युद्ध संचालन का पूर्ण अधिकार दे दिया गया।

वाइसराय को चेतावनी और नमक-सत्याग्रह

२ मार्च १९३० को महात्मा गांधी ने लार्ड अरविन के पास अंतिम चेतावनी का पत्र भेजा। इस पत्र को ले जाने वाले एक अंग्रेज़ युवक थे, जिनका नाम था रेजिनाल्ड रेनाल्ड; और जो महात्मा गाँधी के भक्तों में से थे तथा साबरमती आश्रम में कुछ दिन तक रह भी चुके थे। वाइसराय ने इस पत्र का उत्तर कड़ाई के साथ दिया, जिस पर गांधी जी ने लिखा है कि "मैंने दस्तबस्ता रोटी का सवाल किया था और मुझे मिला पत्थर।"

दाँडी-कूच

तारीख़ १२ मार्च १९३० को महात्मा जी की नमक-क़ानून तोड़ने के उद्देश्य से वह ऐतिहासिक यात्रा शुरू हुई जो 'दांडी-कूच' के नाम से प्रसिद्ध है। यह यात्रा अहमदाबाद के साबरमती आश्रम से शुरू होकर पश्चिमी समुद्र-तट स्थित दांडी नामक गांव में ख़त्म हुई थी। कुल २०० मील का फ़ासला तय करना पड़ा। गांधी जी के साथ इस यात्रा में ७९ व्यक्ति और थे, जो साबरमती आश्रम के निवासियों में से चुने गये थे।

गांधी जी अपनी लकड़ी के सहारे आगे-आगे चलते थे और उनकी सेना उनके पीछे-पीछे एक क़तार में चल रही थी। रास्ते के दोनों ओर

दर्शकों की लम्बी भीड़ थी। इस प्रकार रास्ते में डेरा डालते हुए और ग्राम निवासियों का आतिथ्य स्वीकार करते हुए वह ५ अप्रेल को प्रातः-काल दांडी गांव में पहुंच गये। ईश्वर-प्रार्थना के बाद फिर महात्मा जी अपने साथियों समेत समुद्र तट पर गये और नमकवीन नमक का क़ानून तोड़ दिया। इसके बाद उन्होंने हर एक देशवासी को नमक-क़ानून तोड़ने की आज्ञा दे दी।

फिर क्या था। देश में इस छोर से उस छोर तक आग सी लग गयी। तमाम बड़े-बड़े शहरों में लाखों की उपस्थिति में विराट् सभाएँ हुइ। कलकत्ता, मद्रास, पूना, करांची, पटना, पेशावर तथा शोलापुर में सरकारी दमन का तांडव-नृत्य होने लगा। पेशावर में फ़ौज ने गोली चलाई, जिससे कई आदमी मारे गये। करांची और मद्रास में भी गोलियां चलीं। गुजरात में गांधी जी का नवजीवन प्रेस ज़ब्त कर लिया गया। इसके पश्चात् गांधी जी ने गांवों की जनता को ताड़ी के तमाम पेड़ काट डालने की आज्ञा दी और उसका श्रीगणेश अपने हाथों से किया। खेड़ा ज़िला इस समय गुजरात का रणांगण बना।

धारासना पर धावा और गांधी जी की गिरफ़्तारी

अब गांधी जी ने सूरत ज़िले के धारासना और छरसाड़ा के नमक के कारख़ानों पर धावा बोलने का निश्चय किया। और इसके लिए भी एक चेतावनी का पत्र वायसराय के नाम भेजा। अभी तक सरकार गांधी जी को गिरफ़्तार करने में हिचक रही थी। श्रीवल्लभभाई पटेल तथा पं० जवाहरलाल जी को तो उसने पहले ही गिरफ़्तार कर लिया था। अन्य नेताओं की भी वह गिरफ़्तारी तेज़ी के साथ कर रही थी, किंतु गांधी जी की गिरफ़्तारी से वह जानती थी कि आन्दोलन में सौगुना ज़ोर आ जायगा। इस लिए वह उन्हें नहीं छूना चाहती थी। किंतु अब उसे गांधी जी को भी गिरफ़्तार करना ज़रूरी हो

गया। निदान ५ मई सन् १९३० की रात को १ बज कर १० मिनट पर वह गिरफ़्तार करके यरवदा जेल भेज दिये गये।

सवेरे ही यह ख़बर चारों ओर फैल गयी। देश भर में एक ज़बर्दस्त हड़ताल मनायी गयी। बम्बई की ८० मिलों में से ४० मिलें बंद रहीं। क़रीब ५०,००० मज़दूर काम छोड़ कर बाहर निकल आये। देश के बाहर दक्षिणी अफ्रीका, सुमात्रा तथा पनामा के भारतीयों ने भी उस दिन हड़तालें मनाईं। शाम को जुलूस निकाले गये और सभाएं हुईं। दो एक जगह झगड़े भी हो गए। शोलापुर में गोलियां चलायी गयीं, जिससे २५ आदमी मरे और १००० घायल हुए। इसी बीच अमरीका के क़रीब १०२ बड़े-बड़े पादरियों ने हस्ताक्षर कर के इंगलैंड के प्रधान मंत्री मेकडानल्ड साहब के पास एक प्रार्थना-पत्र भेजा, जिसमें गान्धी जी की रिहाई के लिए प्रार्थना की गयी थी।



(महात्मा गांधी)

इधर कांग्रेस की कार्यकारिणी-समिति ने लगातार कई बैठकें कर के कार्यक्रम को बढ़ाने का निश्चय किया। गांधी जी कैद होने के पूर्व श्रीयुत तैयब जी को अपना स्थानापन्न डिक्टेटर नियुक्त कर गये थे।

निदान उन्हीं की अध्यक्षता में २५०० स्वयं-सेवकों ने धारासना के कारखाने पर धावा किया। इसके बाद बड़ाला तथा अन्य कितने ही नमक के कारख़ानों पर धावे हुए और हज़ारों की संख्या में लोग नित्य क़ैद होने लगे तथा मार खाने लगे। नमक बनाने का काम अब घर-घर में शुरू हो गया।

शीघ्र ही कांग्रेस के अन्य हर्बे भी प्रयोग में आने लगे। शराब और विलायती कपड़ों की दूकान पर धरना, कर-बंदी, जंगल के क़ानून तोड़ना आदि सभी ने अपना-अपना रंग एक साथ दिखाना आरंभ कर दिया। सरकारी अफ़सरों के होश हवास गुम थे। जितनी वे सख़्ती करते, उतना ही आन्दोलन विकराल होता जाता था। सब से अधिक उल्लेखनीय बात तो यह हुई कि इस आन्दोलन में बड़े-बड़े घराने की महिलाएँ तक पर्दे से बाहर निकल आयीं और हज़ारों की संख्या में जेल जाने और पुलीस की लाठियां खाने के लिये तैयार हो गयीं। शराब और विलायती कपड़े की दूकानों पर धरना देने में इन महिलाओं का भाग विशेष रूप से रहा। राष्ट्रीय झंडे पर पुलीस और जनता में अनेकों मुठभेड़ हुईं।

दमन का नंगा नाच

आरंभ में सरकार ने केवल धर-पकड़ की नीति अख़्तियार की। किंतु जब यह उपाय कारगर न जान पड़ा; तब उसने सज़ाओं की मीयाद लम्बी करना और साथ में जुरमाने भी ठोंकना आरंभ किया। जब इससे भी काम न चला और यह देखा कि इस प्रकार तो सारे देश को एक विशाल जेलख़ाना बना देना पड़ेगा, तब उसने पुलीस की लाठियों का सहारा पकड़ा और फिर शीघ्र ही गोलियों की भी नौबत आगयी। स्थान-स्थान पर पुलीस के ज़ुल्म बर्बरता के साथ किये गये। बूढ़े, जवान, स्त्री और बच्चे कोई भी इस ज़ुल्म से नहीं बच सके। किंतु फिर भी 'मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।' उस समय सारा ही देश भयंकर रूप

से उफ़ना उठा था। अद्भुत दृश्य था। इस स्थान पर उसका पूरा वर्णन देना असंभव है। सचमुच वह यरवदा का क़ैदी एक जादूगर था। ऐसा मंत्र फूँका कि देश भर में प्रलयकारी तूफ़ान उमड़ पड़ा। स्त्री, पुरुष, बूढ़े, बच्चे रोगी निरोगी सब एकबारगी पागल बन गये। अधिकारी भौंचक्के थे। दुनिया चकित थी। और दुनिया की दबी हुई जातियाँ इस अलौकिक दृश्य को उत्सुक और जाग्रत नेत्रों से देख रही थीं। संसार भर के इतिहास में ऐसा दृश्य कभी नहीं देखा गया। योरोप और अमेरिका के तमाम बड़े-बड़े पत्रों के संवाददाता इस दृश्य को देखने के लिए यहां ख़ास तौर पर भेजे गये थे। उन सबों ने अपनी आँखों देखा हाल वर्णन किया है, जो पढ़ने लायक़ है।

किसानों की हिजरत

गुजरात के बारदोली और बोरसद ताल्लुक़ों में करबंदी का आंदोलन जैसी सफलता के साथ चलाया गया, वह सत्याग्रह के इतिहास में एक गौरव की चीज़ है। किंतु सरकार की ओर से उसे दबाने के लिए ज़ुल्म भी उतनी ही पाशविकता के साथ किये गये थे। इन ज़ुल्मों से किसानों का अपने गांवों में रहना असंभव बन गया था। निदान क़रीब ८०,००० आदमी अपना घर छोड़ कर अंग्रेज़ी सीमा से बाहर बड़ौदा रियासत के गावों में जा बसे।

समझौते की चेष्टा

लार्ड अरविन ने इन दिनों लगभग एक दर्जन आर्डिनेन्स (असाधारण क़ानून) निकाल कर इस देशव्यापी आन्दोलन को कुचलने की चेष्टा की। किंतु परिणाम सदैव उल्टा ही दिखाई दिया। अंत में श्रीयुत जयकर और सप्रू के बीच में पड़ने से कुछ समझौते की बात शुरू हुई। लेकिन अंग्रेज़ी सरकार अभी ज़्यादा झुकने को तैयार न थी। इसलिए समझौते की यह चेष्टा विफल हुई।

पहली गोलमेज़ कान्फ़रेन्स

गोलमेज़ कान्फ़रेन्स का प्रथम अधिवेशन लंदन में १२ नवम्बर १९३० से आरंभ हुआ। हाउस आफ़ लार्ड्स की शाही गैलरी में उस का उद्घाटन बड़ी धूमधाम के साथ किया गया। कुल ८६ प्रतिनिधि शामिल थे, जिनमें से १३ इंगलैंड के भिन्न भिन्न दलों के नेता थे, ५७ ब्रिटिश भारत से लिये गये थे, और १६ यहां की देशी रियासतों से गये थे। कांग्रेस इससे बिल्कुल अलग रही। गोलमेज़ कान्फ़रेन्स की बैठक बीच-बीच में सेंट जेम्स पैलेस में भी हुई थी।

आरंभ में प्रायः सभी सदस्यों ने अपने-अपने भाषण में औपनिवेशिक स्वराज्य की चर्चा की। पटियाला, बीकानेर, अलवर और भूपाल के राजागण फ़ेडरल शासन (Federal Government) अर्थात् प्रतिनिधि-संघ शासन) के पक्ष में थे। श्री० श्रीनिवास शास्त्री, पहिले तो फ़ेडरेशन से कुछ झिझक रहे थे, किंतु बाद में उसके पक्ष में हो गये। मि० जिन्ना ने अपनी १४ माँगें पेश कीं।* प्रधान मंत्री श्रीयुत मेकडानल्ड साहब ने शासन-विधान की सफलता के लिए दो बातें ज़रूरी बतलायीं—एक तो यह कि शासन-विधान पर अमल किया जाय और दूसरी यह कि उसका विकास होता रहे। उन्होंने इस पिछली बात की ख़ूबियां दिखलाईं और कहा कि जो शासन-व्यवस्था विकासशील होगी उसे अगली पीढ़ी पवित्र विरासत समझेगी।

इसके बाद भिन्न-भिन्न उपसमितियां बनायी गयीं, जिन्होंने रक्षा के अधिकार, सीमा, अल्पसंख्यक जातियों के प्रश्न, ब्रह्मा के अलग या शामिल रखने के सवाल, सरकारी नौकरियों, और प्रांतीय तथा संघ शासन के ढांचों के बाबत बाक़ायदा रिपोर्टें दीं। कान्फ़रेंस इस अधिवेशन को जल्दी समाप्त करना चाहती थी, इसलिए १९ जनवरी को खुला अधिवेशन हुआ। उसमें यह निश्चय किया गया कि उपसमितियों

---

* मि० जिन्ना की १४ मांगें मुसलिम लीग के परिच्छेद में दी गयी हैं।

की रिपोर्टों और नोटों में भारतीय विधान तैयार करने के लिए मूल्य-वान् सामिग्री मिलती है। और यह भी निश्चय हुआ कि काम आगे जारी रखा जाय।

प्रधानमंत्री ने इसी समय यह बात भी साफ़ कर दी कि संघ-शासन के आधार पर जो धारा-सभा भारतीय प्रांतों और देशी रियासतों के प्रतिनिधियों को मिलाकर बनायी जायगी, उसमें सरकार उत्तरदायित्व के शासन को मनाने के लिए तैयार है। केवल वैदेशिक मामले और सैनिक रक्षा के प्रश्न अवश्य अलग रखे जायंगे। तथा राज्य की शांति और आर्थिक स्थिति की मज़बूती के लिए गवर्नर जनरल की जो ख़ास ज़िम्मेदारियाँ हैं, उन्हें पूरा करने के लिए गवर्नर जनरल को विशेषाधिकार भी दिये जायँगे। अन्य विषयों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार के ब्यौरे बतलाये गये थे। अंत में प्रधानमंत्री ने भारतीय स्वतंत्रता के ध्येय से सहानुभूति दिखाते हुए यह भी कहा कि वे इस बात का प्रयत्न करेंगे, जिसमें महात्मा गाँधी और कांग्रेस के नेतागण उनके वक्तव्य पर तथा इस कान्फ़रेन्स की कार्रवाही पर स्वतंत्रता-पूर्वक विचार कर सकें।

वायसराय की घोषणा और कांग्रेस कार्य-समिति के सदस्यों की रिहाई

ता० २५ जनवरी को वायसराय ने एक वक्तव्य प्रकाशित करते हुए कांग्रेस कार्य-कारिणी के सदस्यों को जेल से मुक्त कर दिया। इसका उद्देश्य उन्होंने यह बतलाया कि सरकार चाहती है, कि प्रधान मंत्री के वक्तव्य पर कांग्रेसी नेता स्वतंत्रता-पूर्वक परस्पर विचार कर सकें। साथ ही उन्होंने प्रांतीय सरकारों को भी यह हिदायत कर दी कि ऐसी सब आज्ञाएँ वापस ले लेवें जिनसे कांग्रेस की कार्य-समिति ग़ैर-क़ानूनी ठहराई गयी थी। उन्होंने कहा कि सरकार की इच्छा है

कि देश में ऐसा शांतिपूर्ण वातावरण उत्पन्न कर दिया जावे जिससे यह सुधार-चर्चा पूर्ण स्वतंत्रता के साथ हो सके।

अस्तु, महात्मा गाँधी तथा कार्य-समिति के अन्य सब सदस्य बिना किसी शर्त के छोड़ दिये गये। इसके पश्चात् तुरंत ही कार्य-समिति की बैठक इलाहाबाद में हुई, किंतु उसका निर्णय प्रकाशित नहीं किया गया। इसी समय डाक्टर सप्रू और मिस्टर जयकर का भी विलायत से एक तार मिला, जिसमें उन्होंने यह प्रार्थना की थी—कि उनके भारत में लौटने और मुलाक़ात करने से पहिले कोई निर्णय न किया जाय। अतएव फ़ैसला उक्त दोनों सज्जनों के लौटने तक स्थगित कर दिया गया। उनके लौटने पर गाँधी जी तथा अन्य सदस्यों से उनकी बातें हुईं और फिर उनकी सलाह के अनुसार वायसराय को श्रीयुत रफ़ी अहमद किदवई के हाथ एक पत्र भेजा गया, जिसमें महात्मा जी ने वायसराय से मुलाक़ात करनी चाही।

गांधी अरविन संधि (१९३१)

तारीख़ १७ फ़रवरी को दिल्ली में मुलाक़ात हुई और लगभग १५ रोज़ तक परस्पर बातचीत होती रही। अंत में ५ मार्च को एक समझौता हो गया, जो गाँधी-अरविन संधि के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी शर्तें संक्षेप में इस प्रकार थीं:—

(१) महात्मा गाँधी और वायसराय के बीच बातचीत होकर एक अस्थायी संधि हुई है; इसलिए सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया और सरकार की ओर से भी तदनुकूल कार्रवाही की जाय।

(२) शासन-विधान के प्रश्नों पर आगे विचार होगा, किंतु उसके सम्बन्ध में मुख्य बातें इस प्रकार तय हो गयीं:—(क) शासन का स्वरूप फ़ेडरेशन होगा। (ख) केन्द्र में उत्तरदायित्व रहेगा। (ग) विदेशी नीति, रक्षा आदि भारत के हित की दृष्टि से रखे जायेंगे।

(३) कान्फ़रेन्स में कांग्रेस के प्रतिनिधि लिए जायँगे।

(४) संधि का संबंध सत्याग्रह आन्दोलन से है।

(५) सत्याग्रह आन्दोलन असली रूप में बंद कर दिया जायगा।

(६) विदेशी कपड़ों के वहिष्कार का राजनैतिक रूप हटा लिया जायगा। और ऐसा वहिष्कार केवल आर्थिक उन्नति के लिए किया जायगा।

(७) शराब और विलायती कपड़ों पर धरना क़ानूनी हद के भीतर रहेगा।

(८) पुलीस के अत्याचारों की जांच के लिये महात्मा गांधी ने अपना आग्रह वापस ले लिया। केवल सरकार का ध्यान उस ओर आकर्षित कर दिया।

(९) दमन बन्द किया जायगा।

(१०) आर्डिनेन्स वापस ले लिये जायँगे, सिवाय आर्डिनेन्स नं० १ सन् १९३१ के जो कि आंतकवादी आंदोलन के विरुद्ध है और इसलिये रद्द न किया जायगा।

(११) सत्याग्रह आंदोलन के सिलसिले में जो हुक्म संस्थाओं को ग़ैरक़ानूनी क़रार देने के लिये जारी किये गये हैं, वापस ले लिये जायँगे।

(१२) मुक़दमें उठा लिये जायँगे।

(१३) सत्याग्रह आंदोलन के क़ैदी छोड़ दिये जायँगे, किंतु हिंसात्मक अपराधों के क़ैदी न छोड़े जायँगे।

(१४) जुर्माने माफ़ होंगे, किंतु वसूल शुदा जुर्माने लौटाये न जायँगे।

(१५) अतिरिक्त पुलीस के लिये लगाया हुआ टैक्स बंद होगा।

(१६) ज़ब्त की हुई जायदाद वापस होगी।

(१७) १९३० के ९ वें आर्डिनेन्स के मुताबिक़ क़ब्ज़ा की हुई जायदाद वापस कर दी जायगी।

(१८) सरकार ज़िला अफ़सरों को हिदायत कर देगी कि अगर किसी जगह लगान ग़ैर क़ानूनी तौर पर वसूल हुआ है तो उसकी जांच करे।

(१९) जो नौकरियां स्थायी रूप से भर गयी हैं, वे न मिल सकेंगी शेष सब फिर से मिल जायँगी।

(२०) जहां नमक बन सकता है, वहां अपने लिए या गांव में ही बेचने के लिये बनाया जा सकेगा।

(२१) यदि कांग्रेस शर्तों का यथोचित पालन न करेगी तो सरकार मुनासिब कार्यवाही करेगी।

इस संधि के बाद ही सत्याग्रह-संबंधी तमाम क़ैदी छोड़ दिये गये। साथ ही कांग्रेस कमेटियों तथा अन्य राष्ट्रीय संस्थाओं पर से भी रोक उठा ली गयी, जिससे वे पुनः जीवित हो उठीं।

भगतसिंह और उनके साथियों को फांसी

सर्दार भगतसिंह का नाम उन दिनों देश भर में बड़ा लोकप्रिय बन रहा था। शायद गांधी जी को छोड़ कर इतनी लोकप्रियता इस देश में किसी व्यक्ति को नहीं मिली। यह नवयुवक असेम्बली बम केस में आजीवन काले पानी की सज़ा पा चुका था। इसमें उसने अपना बयान अदालत के सामने देते हुए कहा था कि वह बम तो केवल प्रदर्शन के लिए फेंका गया था, किसी की जान लेने के लिये नहीं। इसके बाद उसे लाहौर षड्यंत्र केस में भी अभियुक्त बनना पड़ा। यह केस लाहौर पुलीस के एक अफ़सर मिस्टर सांडर्स की हत्या के कारण चलाया गया था, जो तारीख़ १७ सितम्बर १९२८ को दिन में ४ बजे हुई थी। इस मुक़दमें में सरदार भगतसिंह तथा उनके साथी राजगुरु और सुखदेव को फांसी का हुक्म सुनाया गया।

भगतसिंह ने इन मुक़दमों के दौरान में अपने चरित्र एवं भावों को इतना ऊँचे दर्जे का सिद्ध किया था कि सारे देश की सहानुभूति

उनकी तरफ़ होगयी और उनको छोड़ाने की पुकार देश के हर एक कोने से आने लगी। महात्मा गांधी ने भी गांधी-अर्विन समझौते के समय उन्हें माफ़ी दिलाने के लिए भर सक चेष्टा की थी किंतु कोई फल न निकला और तारीख़ २३ मार्च सन् १९३१ को वह और उनके दोनों नौजवान साथी फांसी के तख़्ते पर लटका दिये गये।

कानपुर का दङ्गा और विद्यार्थी जी का बलिदान

जिस दिन भगतसिंह को फांसी दी गयी, उसी रात को कानपुर में भयानक हिंदू-मुसलिम दंगा शुरू हो गया। यह दंगा कई दिनों तक जारी रहा। पुलिस ने कुछ भी न किया। कितने ही हिंदुओं की इसमें दूकानें लूट ली गयीं, तथा मकान और मंदिरों में आग लगा दी गयी। डाक्टर रामचंद्र का कुल परिवार मय उनकी स्त्री व बूढ़े माता-पिता के मुसलमानों के हाथों से क़त्ल कर दिया गया। उनकी लाशें नालियों में ठूँस दी गयीं। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार इस दंगे में १६६ आदमी मरे और ४८० घायल हुये।



(श्री गणेश शंकर विद्यार्थी)

इसी दंगे में २५ तारीख़ को 'प्रताप' के सम्पादक स्वनामधन्य श्री गणेश शंकर विद्यार्थी भी कुछ विश्वासघाती मुसलमानों के हाथ पड़ कर मारे गये। उन्होंने अनेकों मुसलमान परिवार की जान बचाई थी और अपने प्राणों की भी परवाह न करके दोनों पक्ष के

लोगों को दौड़-दौड़ कर समझाते फिरते थे। इसी समय कुछ धोखेबाज़ मुसलमान उन्हें फँसा कर अलग लिवा ले गये और उन्हें बड़ी क्रूरता के साथ मार डाला। उनकी लाश का पता २९ तारीख को मिला। सारे देश में उनकी इस कमीनी हत्या से मातम छा गया।

करौंची कांग्रेस

कानपुर में जिस समय हिंदू और मुसलमान एक दूसरे का सिर फोड़ रहे थे, उसी समय करांची में श्री वल्लभ भाई पटेल के सभापतित्व में कांग्रेस का ४५वां अधिवेशन हो रहा था। भगतसिंह की फांसी के कारण यहां का वातावरण पहिले ही से उदास दिखाई पड़ता था। इतने ही में विद्यार्थी जी की हत्या का भी समाचार मिला जिससे लोगों का दुःख दूना बढ़ गया। दोनों के संबंध में आवश्यक प्रस्ताव पास किये गये। इसके पश्चात् अन्य महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए तथा गांधी अर्विन समझौते का समर्थन किया गया। गोलमेज़ कान्फ़रेन्स में शरीक होने के लिए कांग्रेस ने बहुत से प्रतिनिधियों को भेजने के बजाय केवल एक ही प्रतिनिधि भेजना निश्चित किया और इसके लिए उसने महात्मा गांधी को चुना। यह निश्चय, जैसा कि बाद में दिखाई पड़ा, देश के हक़ में बहुत अच्छा सिद्ध नहीं हुआ।

नौकरशाही की करतूत

गांधी-अर्विन समझौते के कारण सरकारी अफ़सरों को प्रसन्नता नहीं हुई। उनके आत्म सम्मान को ठेस लगी। कल वे जिन्हें गिरफ़ार कर रहे थे, उन्हीं को आज अपनी आंखों के सामने नमक बनाते और दूकानों पर धरना देते देखते थे; किंतु बोल न सकते थे। यह दृश्य उन्हें अच्छा न लगा। उन्हें ऐसा जान पड़ा कि जनता की दृष्टि में उनकी प्रतिष्ठा नीचे गिर गयी, और कांग्रेस की इज़्ज़त ऊँची हो गयी है। अतएव उन्होंने हर जगह तरह-तरह के बहाने ले कर गांधी-अर्विन समझौते की शर्तों को तोड़ना, मनमानी हरकतें करना शुरू कर दिया।

लार्ड अरविन की मीयाद अब ख़तम हो चुकी थी। इसलिए अब उनकी जगह पर दूसरे वाइसराय लार्ड विलिंग्टन आये। इनसे जब गाँधी जी ने शिकायत की और जाँच के लिए कहा तो उन्होंने सरकारी अफ़सरों का ही पक्ष लिया और कांग्रेस वालों को दोष देना आरंभ किया। निदान ऐसा जान पड़ा कि समझौता अब भंग हो जायगा और गाँधी जी गोल मेज़ कान्फ्रेंस में न शरीक होंगे। हर्फ़ों की लिखी पढ़ी के पश्चात् गांधी जी ने अंत में वाइसराय से स्वयं तथा श्रीपटेल व जवाहरलाल नेहरू ने भेंट की, जिसके परिणाम में एक फिर समझौता हुआ और गांधी जी विलायत जाने के लिए तैयार हो गये।

गांधी जी की विलायत यात्रा

२९ अगस्त को उनका जहाज़ बम्बई बंदर से विलायत को रवाना हुआ। गांधी जी के साथ में श्रीदेवदास गांधी, मीराबेन, महादेव देसाई, प्यारेलाल और और श्रीमती-सरोजनी नाइडू भी थीं। रास्ते में अदन, कैरो, और मार्सेलीज़ में गाँधी जी का ख़ूब स्वागत किया गया। श्रीमती ज़गलुल पाशा, तथा नहासपाशा ने भी बधाई के संदेश भेजे तथा मार्सेलीज़ में श्रीरोम्यां रोलां की बहन मैडलीन रोलां ने उनसे भेंट की। श्री रोम्यां रोलां स्वयं बीमार थे, इसी लिए नहीं आ सके।

लंदन पहुंच कर गांधी जी ने सरकारी आतिथ्य स्वीकार न करके वहां के ईस्ट एन्ड (East End) में, जो ग़रीबों का मुहल्ला है, मिस म्यूरेल लिस्टर के यहां किंसले हाल में ठहरना पसंद किया।

दूसरी गोलमेज़ कान्फ्रेंस और गांधी जी

अक्टूबर और नवम्बर में गोलमेज़ कान्फ़रेंस की बैठकें हुईं। यहां सरकार ने भारत के तमाम छोटे-मोटे दलों की पल्टन इकट्ठी करके और उन्हें अपनी-अपनी डफ़ली और अपना राग अलापने के लिए उत्साहित कर दुनिया के सामने भारतीय सांप्रदायिकता और फूट का नंगा नाच दिखाने की एक ज़बर्दस्त चाल खेली। गांधी जी बेचारे यहां बिल्कुल

अकेले और बेबस दिखाई दिये। नक्कारख़ाने में तूती की आवाज़ की तरह यहां उनका अकेला प्रतिनिधित्व दलबंदियों की भीड़ के अंदर बिल्कुल छिप सा गया। सचमुच कांग्रेस ने यहाँ केवल एक प्रतिनिधि भेजने का निश्चय करके बड़ी ग़लती की थी। जहां शक्ति का प्रदर्शन केवल संख्या पर निर्भर हो, वहां केवल एक प्रतिनिधि भेजना—चाहे वह प्रतिनिधि कितने ही बड़े व्यक्तित्व का क्यों न हो—आत्महत्या के बराबर है। यदि इस समय कांग्रेसी हिंदू और मुसलमान नेताओं का एक ज़बर्दस्त प्रतिनिधि-मंडल गांधी जी के साथ गया होता तो ब्रिटिश सरकार के लिए दुनिया की आँखो में धूल झोंकना उतना आसान न हुआ होता।

ख़ैर, गांधी जी अपना कर्तव्य बड़े धैर्य और गंभीरता के साथ निबाहते रहे। उन्होंने कांग्रेस का सच्चा वर्णन और उसका उद्देश्य सभा के सामने अपनी नपी और तुली हुई भाषा में बड़ी ख़ूबी के साथ रखा, और लोगों को यह बतलाया कि कांग्रेस की गिनती अन्य भारतीय दलों के समान न की जानी चाहिए। वास्तव में कांग्रेस ८५ फ़ी सदी भारतीयों की प्रतिनिधि है, और इसने देश को स्वतंत्रत करने का जो संकल्प कर लिया है उसे पूरा किये बिना चैन न लेगी। किंतु यहां तर्क का सवाल न था। यहाँ तो कूटनीति की चालें खेली जा रही थीं। मियाँ शफ़ी, जिन्ना, शौकतअली शफ़ात ख़ाँ तथा डा० अम्बेडकर इस कूटनीति के हाथों कठपुतले बन कर अपनी-अपनी सांप्रदायिकता का नंगा नाच दिखा रहे थे और अपने ऊधम से दुनिया की आँखों में स्वराज्य के लिए भारत की अयोग्यता सिद्ध कर रहे थे। ब्रिटिश पालिसी ने अपना काम ख़ूबी के साथ किया और उसका मतलब पूरा हो गया। यह कान्फ़रेंस भारत को स्वाधीनता देने के लिए नहीं, बल्कि उसकी अयोग्यता सिद्ध करने के लिए की गयी थी; और इसमें उसे सफलता मिली।

दिसम्बर की पहिली तारीख़ को कान्फ़रेंस विसर्जित हो गयी। गाँधी जी व्यथित और निराश हृदय से स्वदेश को लौट पड़े। इधर भारत से जो समाचार मिले उनसे भी उनके हृदय का बोझ बढ़ गया।

सरकार का दमनचक्र

जिस समय गांधी जी विलायत की कान्फ़रेंस में बैठ कर सरकारी कूटनीति के दांव पेंच देख रहे थे, उसी समय हिंदुस्तान में भी कांग्रेस और सरकार के बीच समझौते की शर्तें पूरी कराने के लिए खींचा तानी चल रही थी। इन में से एक ख़ास शर्त यह थी कि बारदोली में लगान वसूली के सिलसिले में जो पुलीस के अत्याचार हुए हैं उनकी जांच की जाय। सरकार ने मिस्टर गार्डन को इस जांच के लिए एक ख़ास अफ़-सर नियुक्त किया, किंतु जांच के बीच ही में कुछ सरकारी काग़ज़ तलब करने के बाबत कांग्रेस और सरकार में झगड़ा पैदा हो गया, जिससे यह जाँच अधूरी ही रह गयी।

इधर संयुक्त प्रांत में, विशेष कर अवध में, किसानों की दशा अनाज की सस्ती के कारण बड़ी ख़राब हो रही थी और उनके लिए लगान अदा करना प्रायः असंभव हो गया था। बड़ी कोशिशों के बाद जो थोड़ी-बहुत छूट सरकार ने दी थी, वह नकाफ़ी थी। सरकार से जांच करने के लिये कहा गया और वह बड़ी मुश्किल से इसके लिए कुछ तैयार भी हुई; किंतु इसी समय नये लगान की अदायगी सिर पर आ पहुंची जिससे किसानों का कष्ट और भी बढ़ गया। निदान प्रांतीय कांग्रेस कमेटी ने किसानों को यह सलाह दी कि जब तक जांच ख़तम न हो जाय, तब तक लगान की अदायगी मुल्तवी रखें। इस पर सर-कार बेतरह बिगड़ उठी और अपने दमन का प्रहार शुरू कर दिया। देखते ही देखते उसने सैकड़ों कांग्रेसी नेताओं को जेल में ठेल दिया। गांधी जी के बम्बई पहुंचने से ५ दिन पहिले ही पं० जवाहरलाल नेहरू,

श्री पुरुषोत्तमदास टंडन, मिस्टर शेरवानी आदि तमाम प्रमुख नेता गिरफ़ार कर लिये गये।

इसी प्रकार सीमा प्रांत में भी ख़ाँ अब्दुलग़फ़्फ़ार ख़ाँ, डाक्टर ख़ान साहब आदि बड़े-बड़े नेता अपने अनेकों ख़ुदाई ख़िदमतगारों के साथ गिरफ़ार हो गये। उधर बंगाल में भी सरकारी दमन का राज्य शुरू हो गया। गाँधी जी २८ दिसम्बर को बम्बई में उतरे थे। हर एक प्रांत के लोगों ने आ-आकर उन्हें अपने यहाँ के सरकारी दमन की कहानियाँ सुनायीं। कुल हाल सुनकर गाँधी जी ने तार द्वारा लार्ड विलिंग्टन से सब मामलों की जाँच के लिए बातचीत की और उनसे भेंट करने की भी इच्छा प्रकट की। किंतु वाइसराय इस समय काँग्रेस को नीचा दिखाने का निश्चय किये बैठे थे। अतएव उन्होंने कोई सीधा जवाब न दिया। अंत में काँग्रेस की कार्य समिति ने एक लम्बा प्रस्ताव पास किया, जिसमें गोलमेज़ कान्फ़रेन्स के परिणामों पर असंतोष प्रकट करते हुए, भारत सरकार से अन्यायों की जाँच के लिए माँग की गयी और अगर सरकार न सुने तो लोगों से फिर सत्याग्रह युद्ध के लिए तैयार होने को कहा गया। सरकार पहिले ही से तैयार बैठी थी; अतएव उसने काँग्रेस को तैयार होने का मौक़ा न दिया और अपनी भरपूर शक्ति से उस पर चढ़ बैठी।

लाठी और आर्डिनेन्सों का राज्य तथा गांधी जी की गिरफ़ारी

सरकारी दमन चक्र तारीख़ ४ जनवरी सन् १९३२ से अपनी पूरी ताक़त पर आ गया। इसी दिन बड़े तड़के महात्मा गाँधी और सरदार पटेल भी गिरफ़ार कर लिए गये। तमाम काँग्रेस कमेटियाँ तथा उनसे संबंध रखने वाली दूसरी संस्थाओं को ग़ैर क़ानूनी क़रार दिया गया। एक के बाद एक कठोरतर आर्डिनेन्स तेज़ी से निकाले जाने लगे और उनका व्यवहार पाशविकता के साथ आरंभ हो गया। जब इन

आर्डिनेन्सों की अवधि समाप्त हुई तो उन्हें अगली अवधि के लिए नये सिरे से एक इकट्ठे आर्डिनेन्स के रूप में जारी किया गया और नवम्बर १९३२ में उन्हें बाक़ायदा क़ानून का रूप दे दिया गया।

१९३२–३३ की घटनाएँ भी प्रायः वही हुईं, जो सन् १९३०–३१ में हुई थीं। किंतु लड़ाई इस बार ज़्यादा ज़ोरदार और निश्चयात्मक थी और दमन भी पहिले से कहीं ज़्यादा ज़बर्दस्त था जिससे लोगों को पहिले की अपेक्षा बहुत अधिक कष्ट सहना पड़ा। सज़ा पाने वालों की संख्या क़रीब एक लाख से कम न थी और लाठियां खाने वालों की संख्या तो लाखों थी। जेल में भी लोगों के साथ पाशविक अत्याचार किये गये

कांग्रेस का कुल सामान, मकान, फ़र्नीचर रुपये-पैसे आदि सब ज़ब्त कर लिये गये। यहां तक कि उनके लिए प्रेस और पोस्ट आफ़िस भी बंद कर दिये। किंतु कांग्रेस का काम इस पर भी चलता ही रहा। डाक ले जाने, ले आने का काम वालंटियरों द्वारा होने लगा और पत्र साइक्लोस्टाइल पर छपने लगे।

सरकारी दमन इस समय अपने पूर्ण राक्षसी बल से हर जगह और हर शकल में कांग्रेसी आंदोलन को कुचलने पर तुल गया था। यहां हमें उन सब का अलग-अलग वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। केवल इतना ही समझ लेना चाहिये कि मनुष्य की बुद्धि में जितने प्रकार के उचित और अनुचित साधन इस आंदोलन को कुचलने के लिये आ सकते थे, सब का उपयोग किया गया था।

दिल्ली कांग्रेस और मालवीय जी की गिरफ़्तारी

इसी सत्याग्रह युद्ध के बीच अप्रैल सन् १९३२ में कांग्रेस का ४६ वां अधिवेशन मनाया गया। इस समय कांग्रेस के पास न तो कोई



ज़मीन थी और न सामान था। पुलीस भी पीछे पड़ी थी। ऐसी परिस्थिति में यह अधिवेशन दिल्ली के चांदनी चौक में घंटा घर के पास ५०० प्रतिनिधियों के बीच सफलता के साथ किया गया और पुलीस के आने के पहिले ही सारी कार्यवाही समाप्त कर ली गयी। इस अधिवेशन के सभापति पं० मदन मोहन मालवीय चुने गये थे, किंतु वह रास्ते में ही गिरफ़्तार कर लिये गये। अस्तु, उनकी जगह पर अहमदाबाद के सेठ रणछोड़ दास अमृतलाल ने सभापति का आसन ग्रहण किया था।

गांधी जी का आमरण उपवास और "पूना पैक्ट"

विलायत की गोल मेज़ कांफ़्रेंस में बोलते हुये गांधी जी ने कहा था कि यदि अछूत जातियों के लिये पृथक् निर्वाचन दिया गया तो मैं इसका विरोध अपने प्राण तक देकर करूँगा।

(महामना पं मदन मोहन मालवीय) बम्बई पहुँचने पर उन्होंने इसी

प्रतिज्ञा को एक सभा में पुनः दोहराया था। किंतु उस समय इसकी गंभीरता किसी को नहीं समझ पड़ी थी। वास्तव में गांधी जी अपने हर एक शब्द को तौल कर ही बोला करते हैं। निदान अब उस प्रतिज्ञा को पूरा करने का समय उपस्थित हो गया।

१७ अगस्त सन् १९३२ को विलायत के प्रधान मंत्री मेकडानल्ड साहब ने अपना निश्चय प्रकाशित किया कि दलित जातियों को पृथक् निर्वाचन दिया जायगा और साथ में उन्हें आम निर्वाचन में भी भाग लेने का हक़ रहेगा। गांधी जी ने प्रधानमंत्री और भारतमंत्री से लिखा-पढ़ी करके उन्हें चेतावनी दी, परंतु जब कुछ सुनवाई न हुई, तब उन्होंने २० सितम्बर से आमरण उपवास करना आरंभ कर दिया।

इस उपवास ने न केवल इस देश में और विलायत में ही, बल्कि सारे संसार में एक गंभीर हलचल पैदा कर दी। शीघ्र ही देश के तमाम हिंदू नेताओं की एक सभा की गयी जो पहिले बम्बई में हुई, किंतु बाद में पूना में हुई, जहां गांधी जी कैद थे। दलित जातियों की ओर से श्रीअम्बेडकर और राव बहादुर एम० सी० राजा भी वहां उपस्थित थे। सबों ने मिल कर एक समझौता किया, जिसे गांधी जी ने भी मंज़ूर किया। फिर इसकी सूचना इंगलैंड में प्रधान मंत्री को दी गयी। उन्होंने भी इसे चटपट स्वीकार करने में ही भलाई समझी। निदान २६ सितम्बर १९३२ को इंगलैंड और भारत में एक साथ इस समझौते की स्वीकृति की सरकारी घोषणा कर दी गयी। उसी दिन शाम को सवा पांच बजे गांधी जी ने भी अपना यह ऐतिहासिक उपवास छोड़ दिया। इसके बाद अस्पृश्यता-निवारण की ओर कांग्रेस का ध्यान विशेष रूप से झुक गया।

सत्याग्रह स्थगित

मार्च सन् १९३३ में कलकत्ते में कांग्रेस का ४७ वां अधिवेशन पुलीस की लाठी-वर्षा के बीच में किया गया, किंतु फिर धीरे-धीरे

यह आंदोलन शिथिल पड़ गया। अंत में १२ जुलाई १९३३ को पूना में सभा कर के गाँधी जी की राय से सत्याग्रह का आंदोलन स्थगित कर दिया गया। केवल व्यक्तिगत रूप से सत्याग्रह करने के लिए आज़ादी दी गयी। आगे चल कर ता० १८ और १९ मई को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की जो बैठक पटने में हुई, उसने सत्याग्रह को संपूर्ण रूप से स्थगित कर दिया इसके पहिले ही तमाम कांग्रेस कमेटियां उठा दी गयी थीं; अतएव अब उनका पुनः संघटन किया गया और आगे केवल रचनात्मक कार्यों पर ही ध्यान दिया जाने लगा।

स्वराज्य पार्टी का पुनर्जन्म

इसी समय बहुत से कांग्रेसी आगामी कौंसिल चुनाव में भाग लेने के पक्ष में हो गये और पुरानी स्वराज्य पार्टी को फिर से उन्होंने जीवित किया। सन् १९३४ के अंत में चुचाव शुरू हुआ और देश भर में इसकी खूब चहल-पहच रही। स्वराजियों को सिवाय पंजाब प्रांत के हर जगह आशातीत सफलता मिली। मालवीय जी तथा श्रीयुत अणे, जो इस समय सांप्रदायिक निर्णय के प्रश्न पर कांग्रेस से अलग हो गये थे, स्वतंत्र रूप से असेम्बली में चुने गये और उन्होंने वहां अपना एक नया 'नैशनलिस्ट दल' क़ायम किया।

गांधी जी कांग्रेस से अगल हुए

अक्टूबर सन् १९३४ में बम्बई में कांग्रेस का ४८ वाँ अधिवेशन हुआ। इसके बाद ही गाँधी जी कांग्रेस से अलग हो गए। इधर कुछ समय से उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था कि कांग्रेस में ऐसे लोगों की संख्या बढ़ रही है, जो उनके सिद्धांतों पर पूरा विश्वास नहीं रखते; लेकिन फिर भी वे केवल भक्ति के कारण उनके आदेशों को मानते जाते हैं। यह गाँधी जी जैसे व्यक्ति को भला कब पसन्द पड़ सकता था। निदान उन्होंने अब अपना बोझ कांग्रेस पर से हटा लेने का निश्चय कर लिया और बम्बई कांग्रेस के बाद उसे पूरा भी किया।

अब वे कांग्रेस के साधारण सदस्य भी न रहे; तथापि कांग्रेस हर मामले में अभी तक बिना उनकी सलाह के कोई काम नहीं करती।

कांग्रेस की स्वर्ण-जयन्ती (१९३५)

सन् १९३५ में कांग्रेस की अवस्था ५० वर्ष की हो चुकी थी। अतएव इस साल कांग्रेस की स्वर्ण-जयंती मनाने का निश्चय किया गया। सम्पूर्ण देश ने इस कार्य में बड़ा उत्सव दिखाया। राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू उन दिनों बम्बई में ही थे जहाँ कांग्रेस का जन्म हुआ था। गोकुलदास तेजपाल-पाठशाला, जिसमें कांग्रेस का पहिला अधिवेशन किया गया था; इस समारोह का केन्द्र बन गया। राष्ट्रपति ने २७ दिसम्बर को कांग्रेस के सब से अधिक वयोवृद्ध कांग्रेसी सर दनिशा वाचा के घर जाकर उनके दर्शन किये और उन्हें प्रणाम किया। २८ दिसम्बर को सारे देश ने इस त्यौहार को मनाया। दूकानों में, घरों में, ताँगों, इक्कों, साइकिलों और मोटरों पर राष्ट्रीय झंडे फहराये गये और देश भर से, तथा विदेशों से भी राष्ट्रपति के पास संदेशे आये।

लखनऊ कांग्रेस और सोशलिस्ट पार्टी

इधर कुछ समय से कांग्रेस के अन्दर नयी-नयी विचार-धाराओं का जन्म भी होने लगा, जो वास्तव में कांग्रेस जैसी एक सजीव संस्था के लिए स्वाभाविक ही था। इनमें से समाजवादी विचार ने विशेष रूप से तेज़ी पकड़ी। जिस समय लखनऊ में कांग्रेस का ४९ वां अधिवेशन (अप्रेल १९३६) किया गया, उस समय समाजवादियों का काफ़ी ज़ोर दिखाई देता था और यह भय हो रहा था कि कहीं कांग्रेस में फूट न पड़ जाय। किंतु इस अधिवेशन के राष्ट्रपति पं० जवाहर लाल नेहरू थे, जिन पर नवीन और प्राचीन सभी विचार वालों की श्रद्धा थी। अतएव उनकी उपस्थिति से विरोध ज़्यादा बढ़ने नहीं पाया।

इस अधिवेशन में कुल १५ प्रस्ताव पास हुए, जिनमें से १९३५ के नये शासन-विधान तथा पदग्रहण के विषय पर जो प्रस्ताव हुए

वे सब से अधिक महत्वपूर्ण थे। इस पर अनेकों संशोधन हुए और बड़ी बहस हुई। अंत में मूल प्रस्ताव ही पास कर दिये गये। इनके अनुसार नया शासन-विधान अस्वीकृत किया गया, कांस्टिट्युएन्ट एसेम्बली की माँग की गयी, पार्लिमेन्टरी बोर्ड तोड़ कर सब अधिकार कार्य-समिति को दे दिये गये। नये विधान के अनु-सार कौंसिलों का चुनाव लड़ने का निश्चय किया गया और पदग्रहण का विवाद-पूर्ण विषय समय आने पर अ० भा० कांग्रेस कमेटी के निर्णय पर छोड़ दिया गया। किसान और मज़दूरों के सम्बन्ध में एक अखिल-भारतीय कार्य-क्रम बनाने एवं जनता से अधिक सम्पर्क बढ़ाने के प्रश्नों पर भी विचार किया गया।


(पं० जवाहर लाल नेहरू)

वैदेशिक और आर्थिक विभाग

पं० जवाहर लाल नेहरू भारतीय प्रश्नों को अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि कोण से देखने के लिए अधिक ज़ोर देने लगे, और इसी कारण अब कांग्रेस की ओर से डा० राममनोहर लोहिया के चार्ज में एक वैदेशिक विभाग खोल दिया गया, जिसका उद्देश्य देश के स्वातन्त्र्य-आन्दोलन का पूरा परिचय दूसरे देशों को, और दूसरे देशों के आन्दोलन का परिचय अपने देशवासियों को देना है। इसके अतिरिक्त डा० अशरफ़ के चार्ज में एक राजनैतिक व आर्थिक विभाग भी खोला गया, जिसका काम भारत की राजनैतिक व आर्थिक समस्याओं का अध्ययन, आँकड़ों का संग्रह और लेखों, पुस्तकों और पैम्फ़लेटों का प्रकाशन है।

इसके अतिरिक्त पं० जवाहर लाल नेहरू के सभापतित्व में कांग्रेस का संगठन अधिक मज़बूत किया गया और उनके देश-व्यापी दौरों ने कांग्रेस का संदेश गाँव-गाँव में पहुँचाया। जो सदस्य या पदाधिकारी कांग्रेस के आदेशों के विरुद्ध आचरण करते थे उन पर अनुशासन के नियम भी इस समय अधिक कड़े किये गये।

१९३५ का नया विधान और कांग्रेस की नीति

गोलमेज़ कान्फ़रेंस के निश्चयों को एक "ह्वाइट पेपर" के रूप में पार्लिमेंट के सामने रक्खा गया था। इस पर रिपोर्ट देने के लिए एक "ज्वाइन्ट पार्लिमेन्टरी कमेटी" नियुक्त हुई, जिसके निर्णयों पर एक क़ानून का मसविदा तैयार किया और वह मसविदा पार्लिमेंट की दोनों सभाओं से पास हो चुकने के बाद सम्राट् के पास स्वीकृति के लिए भेजा गया। सम्राट् ने २ जुलाई सन् १९३५ को अपनी स्वीकृति दे दी। उस समय से वह क़ानून के रूप में हो गया। इस क़ानून का जो अंश प्रांतीय-शासन से संबंध रखता था, वह शीघ्र ही चालू

कर दिया गया; किंतु केन्द्रीय-शासन-संबंधी-सुधार अभी तक अमल में नहीं आया है।

इस सुधार-क़ानून के विरुद्ध कांग्रेस ने अपनी आवाज़ उसी समय उठाई थी जब वह 'व्हाइट पेपर' के रूप में प्रकाशित किया गया था। इसके बाद ज्वाइंट पार्लिमेंटरी कमेटी की रिपोर्ट जब छपी उस समय भी कांग्रेस ने उसका कड़े शब्दों में विरोध किया। किंतु अंग्रेज़ी हुकूमत ने एक न सुनी और क़ानून पास कर दिया गया। अस्तु, अब कांग्रेस के सामने सवाल पैदा हुआ कि क्या किया जाय। बहुत वाद-विवाद के बाद लखनऊ कांग्रेस में यह निश्चय हुआ कि सुधारों को अस्वीकार करते हुए भी चुनाव लड़ा जाय। परंतु पदग्रहण करने अर्थात् मंत्रिमंडल बनाने के विषय पर कोई निर्णय न हो सका; इसलिए वह आगे के लिए टाल दिया गया। सन् १९३७ के फ़ैज़पुर के वार्षिक अधिवेशन में भी पुराना निश्चय फिर से दोहराया गया और पदग्रहण की समस्या को फिर आगे के लिए टाल दिया गया। इसके अतिरिक्त इस कांग्रेस में सुधार-क़ानून का विरोध प्रदर्शित करने के लिए यह भी निश्चय किया गया कि १ अप्रैल १९३७ को जिस दिन यह क़ानून शुरू होने वाला था, एक देशव्यापी हड़ताल मनायी जाय।

चुनाव संग्राम

फ़ैज़पुर का अधिवेशन समाप्त होते ही कांग्रेस का सारा ध्यान नये विधान के अनुसार प्रांतीय धारा-सभाओं के चुनाव की तरफ़ खिंच गया। खूब ज़बर्दस्त तैयारी की गई। चारों ओर प्रचार-कार्य की धूम मचा दी गयी। सन् १९३०-३२ में लाटियों की मार और गोलियों की बौछार ने कांग्रेस के नाम को पहिले ही से घर-घर में लोकप्रिय बना रखा था। अब इस प्रचार-कार्य ने उसे और भी पुष्ट कर दिया। निदान जब चुनाव का परिणाम प्रकाशित हुआ तो सारी दुनिया देख कर

दंग हो गयी। अधिकारी वर्ग भी दाँतों में अँगुली दबाने लगे। अब उन्हें मालूम हुआ कि लार्ड विलिंग्टन की दमन-नीति ने कांग्रेस को नष्ट नहीं किया, बल्कि पुष्ट किया है।

कुल ११ प्रांतों में चुनाव हुआ था। इनमें से बम्बई, मद्रास, युक्तप्रांत, मध्यप्रांत, उड़ीसा और बिहार में कांग्रेस का स्थायी बहुमत स्थापित हो गया और सीमा प्रांत, आसाम तथा बंगाल में उसकी सब से बड़ी पार्टी हुई। केवल पंजाब तथा सिंध में ही उसका अल्प मत रहा।

पद-ग्रहण समस्या

चुनाव का उपर्युक्त परिणाम प्रकट होते ही अब मंत्री पदग्रहण करने का सवाल सामने आया। अभी तक तो यह प्रश्न टलता आ रहा था, किंतु अब आगे इसका टलना असंभव हो गया। कांग्रेस में इस समय दो मत फैल रहे थे। एक पद-ग्रहण के विरुद्ध था, और दूसरा उसके पक्ष में। तमाम समाजवादी दल के लोग तथा स्वयं राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू पद-ग्रहण करने के विरोधी थे। उनका कहना था कि मंत्री बनने और शासन-कार्य में फँस जाने से हमारी क्रांतिकारी मनोवृत्ति बिल्कुल बदल जायगी। किंतु पद-ग्रहण के समर्थक दल के नेता श्री सत्यमूर्ति का का कहना था कि हमें सरकार से लड़ाई करने के लिए सभी मोर्चों पर क़ब्ज़ा करना चाहिए। निदान गाँधी जी से सलाह ली गयी। उन्होंने दोनों दलों के बीच का एक नया रास्ता निकाल दिया। इसके अनुसार मंत्री पद केवल उन्हीं प्रांतों में स्वीकार किया जा सकता था, जहाँ काँग्रेस का बहुमत हो और केवल उसी समय स्वीकार किया जा सकता था, जब प्रांतीय गवर्नर इस बात का विश्वास दिलावें कि विधान के अंदर काम करते हुए मंत्रियों के कार्यों में गवर्नर अपने विशेषाधिकारों के द्वारा दस्त-

न्दाज़ी न करेंगे। यही प्रस्ताव कांग्रेस की कार्य-समिति ने तथा अ० भा० कांग्रेस-कमेटी ने भी बहुमत से मंज़ूर कर लिया।

निदान छः प्रांतों में जहाँ काँग्रेस का बहुमत था, जब गवर्नरों ने काँग्रेसी सदस्यों को मंत्रिमंडल बनाने के लिए निमंत्रित किया तो उन्होंने उपर्युक्त निर्णय के अनुसार ही आश्वासन माँगा। किंतु गवर्नरों ने इन्कार कर दिया और अल्पमत के लोगों के मंत्रि-मंडल से काम चलाने लगे। इन छः प्रांतों में एसेम्बली की बैठक इस भय से नहीं की गयी कि मंत्रिमंडल पर अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दिया जायगा। किंतु छः मास बाद एसेम्बली को बुलाना क़ानूनन् लाज़िमी था। अतएव अब भारत मंत्री और वाइसराय की तरफ़ से मेल मिलाप की बातें होने लगीं और छिपे-मुँदे शब्दों में एक प्रकार का आश्वासन भी दे दिया गया। तब काँग्रेस ने वर्धा में कार्य-समिति की मीटिंग करके मंत्रीमंडल बनाना स्वीकार कर लिया।

काँग्रेसी सरकारें और उनका शासन

यह समाचार पाते ही अल्पमत के मंत्रिमंडलों ने स्वयं इस्तीफ़ा दे दिया और काँग्रेस के लिए जगह ख़ाली कर दी। अब काँग्रेस की ओर से बम्बई में श्री० बी० जी० खरे, मद्रास में श्री राजगोपालाचारी, मध्य प्रांत में डा० खरे, संयुक्त प्रांत में पं० गोविंदबल्लभ पंत, विहार में श्री श्रीकृष्ण सिंह और उड़ीसा में श्री विश्वनाथ दास ने प्रधान मंत्री का पद सम्हाला। इसके बाद शीघ्र ही सीमा प्रांत में भी ८ ग़ैर-काँग्रेसी सदस्यों से समझौता करके काँग्रेस वालों ने एसेम्बली में अपना बहुमत पैदा कर लिया, जिससे सर अब्दुल क़यूम का मंत्रिमंडल गिर गया और उसकी जगह काँग्रेसी मंत्रिमंडल डा० ख़ाँ साहब की अध्यक्षता में स्थापित हो गया। इसी प्रकार सितम्बर १९३८ में आसाम में भी काँग्रेसी नेता श्री बारडोलाई के नेतृत्व में एक संयुक्त मंत्रिमंडल बन गया।

इस तरह ११ प्रांतों में से ८ प्रांतों की सरकार कांग्रेसी अधीनता में आ गयी सिंध के मंत्रिमंडल पर भी कांग्रेस का प्रभाव था और अभी हाल में उसको असहयोग करते ही यह मंत्रि-मंडल गिर गया। केवल पंजाब और बंगाल में ही अभी तक साम्प्रदायिक मुसलमानों के शासन में बने हुए हैं।

कांग्रेसी सरकारों ने शासन सूत्र हाथ में लेते ही बड़े उत्साह के साथ सुधार के काम शुरू कर दिये। मंत्रियों ने कांग्रेस के निश्चयानुसार अपना वेतन केवल ५००) रु० और भत्ता केवल २५०) रु० ही लेना स्वीकार किया। सब से पहिले उनका ध्यान राजनैतिक क़ैदियों की रिहाई, और राजनैतिक कार्य-कर्त्ताओं एवं संस्थाओं पर लगे हुए प्रतिबंधों की तरफ़ गया। राजनैतिक क़ैदी रिहा होने लगे, प्रतिबंध उठा दिये गये, ज़ब्तियां हटा ली गयीं और कितने ही पत्रों की ज़मानतें भी वापस कर दी गयीं। इसके बाद रचनात्मक कार्यों की ओर ध्यान दिया गया। ग्राम-सुधार, सहयोग समितियां, शिक्षा सुधार, शराब-बंदी आदि के आवश्यक कार्य हाथ में ले लिये गये। रिश्वत ख़ोरी बंद करने, जेल के क़ैदियों के प्रति व्यवहार में सुधार करने, तथा स्वदेशी-व्यवसाय एवं कला कौशल की उन्नति की तरफ़ भी विशेष रूप से ध्यान दिया जाने लगा। और सब से अधिक ध्यान तो किसानों की दशा सुधारने की ओर दिया गया, जो इन दिनों बहुत ही बुरी अवस्था में हो गये थे। लगभग सभी प्रांतों में किसानों के अधिकारों के नये क्रांतिकारी क़ानून बना दिये गये या बनाये जाने लगे। बक़ाया लगान में माफ़ी दी गयी और कुर्क़ी तथा बेदख़ली की नालिशें रोक दी गयीं। इस प्रकार प्रायः हर एक दिशा में सुधार का काफ़ी आयोजन किया गया। कांग्रेसी सरकारों का इस प्रकार मुस्तैदी के साथ शासन देख कर वाइसराय तथा विलायती अधिकारियों तक ने उनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

यू० पी० और विहार में वैधानिक संकट और हरिपुरा कांग्रेस

इसी समय अंडमन के राजनैतिक क़ैदियों की भूख-हड़ताल के कारण देश भर में तमाम राजनैतिक क़ैदियों की रिहाई का आंदोलन ज़ोर पकड़ रहा था और हर एक प्रांत में तमाम राजनैतिक क़ैदियों की रिहाई की कोशिश हो रही थी। महात्मा गांधी के प्रयत्नों से अंडमन के कैदी भारत में बुला लिये गये थे। और फिर उन्हें तथा बंगाल के नज़रबंदों को धीरे-धीरे करके छोड़ा जाने लगा। यू० पी० तथा बिहार की कांग्रेसी सरकारों ने भी अपने यहां के राजनैतिक कैदियों को छोड़ना आरंभ किया, किंतु कुछ कैदियों के बारे में वहां के गवर्नरों ने रुकावट डाली। मंत्रियों ने गवर्नर के इस हस्तक्षेप पर आपत्ति की; परंतु गवर्नरों ने एक न सुनी। तब दोनों प्रांतों के मंत्रि-मंडलों ने इस्तीफ़ा दे दिया।

इस समय हरिपुरा में कांग्रेस का अधिवेशन आरंभ हो रहा था। फ़ैज़पुर के अधिवेशन से अब कांग्रेस के सभी वार्षिक अधिवेशन देहातों में ही होने लगे। हरिपुरा कांग्रेस के सभापति श्री सुभाषचन्द्र बोस थे। बहुत से प्रस्ताव इस कांग्रेस में पास हुए, किंतु लोगों की सब से अधिक दिलचस्पी यू० पी० और बिहार के सामयिक इस्तीफ़ों के प्रश्न पर थी। समाजवादी दल के लोग इस बात पर ज़ोर दे रहे थे कि सभी प्रांतों की कांग्रेसी सरकारें इस्तीफ़ा दे दें। बड़ी गरमा-गरम बहस हुई। किन्तु बहुमत ने उनकी राय मंज़ूर नहीं की। केवल वाइसराय से इस प्रश्न पर फिर विचार करने के लिये प्रस्ताव में कहा गया। कांग्रेस समाप्त होते ही गवर्नरों ने मंत्रियों को फिर बुलाया और कुछ समय की बात चीत के बाद यह समझौता हुआ कि राजनैतिक कैदियों के मामलों पर व्यक्तिगत रूप से विचार कर

के तब उन्हें रिहा किया जाय। निदान मंत्रियों ने इस्तीफ़े वापस ले लिये।

इसके बाद मध्यप्रांत में भी कुछ गड़बड़ हुई। वहाँ के प्रधान मंत्री डा० खरे ने कांग्रेस पार्लिमेंटरी कमेटी से बिना पूँछे अपने पुराने मंत्रीमंडल का इस्तीफ़ा दाख़िल कर नया मंत्रिमंडल बना डाला, जिसके लिए उन पर अनुशासन की कार्रवाई की गयी और उनसे इस्तीफ़ा दिला कर श्रीरविशंकर शुक्ल को प्रधानमंत्री बनाया गया।

मुस्लिमलीग से समझौते के निष्फल प्रयत्न

मुस्लिमलीग के प्रधान मिस्टर जिन्ना कांग्रेस को एक हिंदू संस्था कह कर और कांग्रेसी सरकारों पर तरह तरह के दोषारोपण करके ख़ूब गालियां देने लगे। उनकी देखा-देखी बंगाल के प्रधान मंत्री मियाँ अब्दुलहक़ भी कांग्रेसी सरकारों को बदनाम करने पर तुल गये। महात्मा गांधी और जवाहर लाल नेहरू ने उनसे जब आक्षेपों को साबित करने के लिए कहा तब वह कन्नी काट गये। फिर भी उनका ज़हर उगलना दिन पर दिन बढ़ता ही गया, जिससे मुसलिम सांप्रदायिकता देश में दिन पर दिन भड़कने लगी। इधर कांग्रेसी नेताओं की लगातार ख़ुशामद-दरामद और लल्लो-चप्पो की नीति ने उन्हें और भी प्रोत्साहित किया। महात्मा गांधी स्वयं कई बार मिस्टर जिन्ना के घर पर जाकर मिले, जिससे उनका दिमाग़ आसमान पर चढ़ गया। अब उन्होंने कांग्रेस को 'ग़रज़मंदा बावला' समझ अपना रुख़ और भी कड़ा कर लिया और उसे उल्टी-सीधी सुनाकर लगे दुलत्तियाँ झाड़ने। फिर भी महात्मा गांधी ने समझौते के लिए उनकी तमाम अनुचित शर्तें स्वीकार कर लीं। केवल एक शर्त असंभव थी; इसलिए नहीं स्वीकार की जा सकी कि जिन्ना मियाँ चाहते थे कि कांग्रेस, मुस्लिम लीग को हिंदुस्तान के तमाम मुसलमानों की एक मात्र प्रतिनिधि-संस्था मान ले और कांग्रेस के साथ काम करने वाली तमाम मुसलमानी

संस्थाओं की दोस्ती पर पानी फेर दे। यह करना कांग्रेस के लिए असंभव हो गया। इसलिए समझौते की बातचीत आगे न बढ़ सकी।

राजकोट की समस्या और महात्मा गांधी का आमरण अनशन

देश की जागृति के साथ ही रियासतों की प्रजा में भी अब बड़ी तेज़ी के साथ जागृति फैलने लगी। तमाम देशी रियासतों में ज़िम्मेंदार सरकार क़ायम करने के लिए आन्दोलन शुरू हो गया था। राजकोट नामक काठियावाड़ की एक छोटी सी रियासत में इसी समय सुधारों के प्रश्न पर एक जटिल समस्या उठ खड़ी हुई। श्री वल्लभ भाई पटेल के प्रति वहां के ठाकुर साहब ने जो सुधार के वादे किये थे, उन्हें तोड़ दिया। महात्मा गांधी ने इसी प्रश्न को लेकर राजकोट में आमरण अनशन व्रत ले लिया, जिससे बड़ी भयानक परिस्थिति पैदा हो गयी। अंत में वाइसराय के बीच में पड़ने से प्रतिज्ञा-भंग का प्रश्न फ़ेडरल कोर्ट के प्रधान जज के फ़ैसले पर छोड़ दिया गया, जिसे गांधी जी ने मंज़ूर कर लिया और अपना अनशन तोड़ दिया। फ़ैसला गांधी जी के पक्ष में हुआ। किंतु बाद में गांधी जी ने वहां की उलझनों को देखकर अपने को उन से अलग कर लिया।

त्रिपुरी कांग्रेस

सभापति के चुनाव पर बहस

त्रिपुरी कांग्रेस के सभापति के लिए तीन नाम पेश किये गये थे श्री सुभाषचन्द्र बोस (जो पिछली कांग्रेस में भी सभापति बन चुके थे।), श्री पट्टाभि सीतारामैया और मौलाना अबुलकलाम आज़ाद। इनमें से मौलाना साहब ने तो तुरंत अपना नाम वापस ले लिया। शेष दोनों नामों पर वोट लेनी पड़ी। सुभाष बाबू को

२०० वोट ज़्यादा मिले, इसलिए वही सभापति चुने गये। महात्मा गांधी स्वयं श्री सीतारामैया के पक्ष में थे। निदान सुभाष बाबू की जीत को महात्मा गांधी ने अपनी हार कहकर घोषित किया। सुभाष बाबू और उनके साथियों को यह बहुत बुरा लगा। इसके बाद वर्धा में कार्य-समिति की बैठक की गयी, जिसके १२ मेम्बरों ने गांधी जी की सलाह से अपनी मेम्बरी से इस्तीफ़ा दे दिया। उनका इस्तीफ़ा सुभाष बाबू ने स्वीकार कर लिया। इन १२ मेम्बरों में पं० जवाहर लाल नेहरू भी थे।

त्रिपुरी अधिवेशन के समय

त्रिपुरी में काँग्रेस का अधिवेशन उस समय हुआ, जब गाँधी जी राजकोट में अनशन कर रहे थे। उनके अनशन छोड़ने का समाचार भी इसी अधिवेशन के समय पहुँचा। गाँधी जी स्वयं कमज़ोरी के कारण अधिवेशन में नहीं आ सके। राष्ट्रपति सुभाष बाबू भी अर्से से बीमार थे; किंतु कर्तव्य के लिए उन्होंने बीमारी की परवाह न की और ६ मार्च को त्रिपुरी जा पहुँचे। इस समय उन्हें १०१ डिग्री का बुख़ार था। जबलपुर से स्ट्रेचर के द्वारा एम्बुलेंस कार पर बैठा कर वे अपने डेरे पर लाये गये। ५१ हाथियों के रथ पर राष्ट्रपति का जुलूस निकालने की योजना वैसे ही रह गयी और उनके फ़ोटो के साथ जुलूस की यह रस्म अदा की गयी।

७ मार्च को अ० भा० काँग्रेस कमेटी की बैठक १५ मिनट के लिए हुई, जिसमें दलबन्दियों का वातावरण स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ा। सुभाषबाबू इस बैठक में उपस्थित न हो सके, और उनकी जगह मौलाना अबुलकलाम आजाद ने सभापति का काम सम्हाला। इस समय तमाम उपस्थित प्रतिनिधियों में मुख्यतः तीन प्रकार के दल दिखाई पड़ते थे। पहिला दल गांधीवाद का अचल भक्त था और पुरानी कार्य समिति के विचारों का समर्थक था। दूसरा सोशलिस्टों का दल था,

जो कांग्रेस के कार्य-क्रम में उग्रता लाना चाहता था और महत्मा गांधी तथा सुभाष बाबू दोनों को नहीं छोड़ना चाहता था। तीसरा दल सुभाष बाबू के समर्थकों का था, जिसमें रायवादी शामिल थे; कम्यूनिस्ट थे; तमाम बंगाल के प्रतिनिधि थे तथा श्रीयुत नरीमेन, अणे और श्रीनिवास आयंगर भी थे।

सुभाष बाबू का दल सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह की लड़ाई छेड़ने के पक्ष में था और सरकार को केवल छः मास की नोटिस देना चाहता था। किंतु गांधीवादी दल शांतिपत्त का पोषक था। दोनों दलों में समझौते के लिए सुभाष बाबू के साथ गांधीवादी नेताओं की घंटों बातचीत होती रही; किंतु फल कुछ न निकला। अंत में जब कांग्रेस का खुला अधिवेशन आरंभ हुआ तो गांधीवादी दल की ओर से पं० गोविन्द वल्लभ पंत ने एक प्रस्ताव उपस्थित किया, जिसमें महात्मा गांधी तथा पिछली कार्यसमिति पर विश्वास प्रकट किया गया, तथा उन पर लगाये गये लांछनों पर खेद ज़ाहिर किया गया। साथ ही राष्ट्रपति से इस बात का भी अनुरोध किया गया कि वह आगामी वर्ष की कार्यसमिति महात्मागांधी की इच्छानुसार नियुक्त करें। सुभाष बाबू इस समय वहां नहीं उपस्थित थे और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद सभापति का काम सम्हाल रहे थे।

उक्त प्रस्ताव से सुभाष बाबू के दल वाले बेतरह बिगड़ उठे और इससे एक दुःखद दृश्य उपस्थित हो गया। श्रीयुत अणे ने परिस्थिति को देखा तो यह प्रस्ताव किया कि पंत जी का प्रस्ताव किसी दूसरे मौक़े पर अ० भा० कांग्रेस कमेटी में रखा जाय। पंत जी ने भी इसका अनुमोदन किया। अंत में मौलाना आज़ाद ने दो बार गणना करके इस प्रस्ताव के पास होने की घोषणा की। इस घोषणा के होते ही बड़ी गड़बड़ी मच गयी और क़रीब ५०० प्रतिनिधियों व दर्शकों ने मंच पर जाने का रास्ता घेर लिया। इनमें से अधिकतर बंगाली ही थे।

कुछ लोगों ने घूँसे भी दिखाये। अंत में श्री शरत्चन्द्र बोस के समझाने पर शांति हुई; किंतु जवाहरलाल जी के खड़े होते ही फिर गड़बड़ी मची और लगभग १॥ घंटे तक यही हालत रही। इस समय मिश्र देश से आए हुए कुछ प्रतिनिधि भी मंच पर बैठे थे। पं० जवाहर लाल ने अंत में एक बड़ा हृदयस्पर्शी भाषण दिया और श्री अणे ने अपना प्रस्ताव वापस ले लिया। दूसरे दिन पंत जी का प्रस्ताव फिर पेश हुआ और बहुमत से पास कर दिया गया। इसके पश्चात् अन्य प्रस्ताव पास किये गये और फिर अधिवेशन समाप्त हुआ।

सुभाष बाबू का इस्तीफ़ा

सुभाष बाबू ने पंत जी के प्रस्ताव के विषय में गाँधी जी से लिखा-पढ़ी की और अपनी स्थिति को समझना चाहा। कुछ रोज़ तक इसी प्रकार पत्र-व्यवहार होता रहा किंतु कुछ फल न निकला। जब गांधी जी की कमज़ोरी मिटी तो वह सीधे कलकत्ते जाकर सुभाष बाबू से मिले। किंतु समझौते की कोई सूरत न निकल सकी। सुभाष बाबू पिछली कार्य समिति के साथ काम चलाना असंभव समझते थे। साथ ही वह पंत जी के प्रस्तावानुसार गांधी जी की इच्छा के बिना कोई कार्य-समिति बना भी नहीं सकते थे। निदान उन्हें कलकत्ता अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अवसर पर अप्रैल में इस्तीफ़ा दे देना पड़ा, और उनकी जगह बाबू राजेन्द्र प्रसाद राष्ट्रपति बनाये गये; जिन्होंने पुरानी कार्यसमिति को फिर से क़ायम कर दिया। इस अवसर पर भी कुछ लोगों ने बड़ी धींगाधींगी की। राष्ट्रपति से अलग होने के बाद सुभाष बाबू ने फ़ारवर्ड ब्लाक नाम से एक वाम दल का संगठन किया।

९ जुलाई

जून के अन्त में अखिल-भारतीय-कांग्रेस-कमेटी की बैठक में दो प्रस्ताव पास हुए, जिन पर केवल सुभाष बाबू को ही नहीं, तमाम

वामपक्षियों को आपत्ति थी। एक प्रस्ताव में किसी भी कांग्रेस जन को बिना प्रांतीय कांग्रेस कमेटी की अनुमति के किसी प्रकार सत्याग्रह करने या चलाने की मनाही की गयी थी; साफ़ साफ़ यह प्रस्ताव वाम-पक्षियों द्वारा चलाए हुए किसान तथा मज़दूर आंदोलन के विरुद्ध था; दूसरे प्रस्ताव में मंत्रि मंडलों को प्रांतीय-कांग्रेस-कमेटी के अधीन न रखकर सीधा सर्दार पटेल की पार्लामेंटरी कमेटी के अधीन कर दिया गया था—यह भी वाम-पक्षियों को नापसंद था। सुभाष बाबू के नेतृत्व में इस पर तमाम वामपक्षियों की एक सभा हुई। जिसमें तय हुआ कि ९ जुलाई को सारे देश में इन प्रस्तावों के विरुद्ध प्रदर्शन किया जाय। राजेन्द्र बाबू के मना करने पर भी यह प्रदर्शन सफलता पूर्वक हुआ और इसी तारीख़ के प्रदर्शन के नेता होने के कारण बाद को वर्किंग कमेटी ने सुभाष बाबू को सब निर्वाचित पदों से निकाल कर कांग्रेस के चार आने का सदस्य मात्र रक्खा। नरीमैन आदि बहुत से अन्य नेताओं को भी अनुशासन भंग करने के उपलक्ष्य में यही सज़ा दी गयी।

बङ्गाल कांग्रेस का झगड़ा

सुभाष बाबू को वर्किंग कमेटी ने तो बात की बात में बंगाल-प्रांतीय-कांग्रेस-कमेटी के सभापति पद से खड़े खड़े निकाल दिया, किंतु बङ्गाल के कांग्रेसजनों के हृदय में वे बसे हुए थे। उनके त्याग, तपस्या तथा सेवा ने उनको हर एक के निकट प्यारा कर रक्खा था। बङ्गाल की आंखों के वे तारा हैं। इस प्रश्न को प्रांतीयता के प्रश्न से गड़बड़ करना ग़लत होगा; क्योंकि कलकत्ता में सुभाष तथा शरत् बाबू के निकाल दिये जाने पर उनकी गद्दी जिन्हें दी गयी वे सर्व श्री विधान राय और श्री प्रफुल्ल घोष भी बंगाली ही थे। प्रश्न कुछ दूसरा ही था। सुभाष बाबू को नीचा दिखाने के लिए जो लोग नाहक़ इस प्रश्न में प्रांतीयता को लाते हैं वे देश का अपकार ही नहीं करते, बल्कि ऐतिहासिक रूप से भी सत्य से कोसों दूर हैं। जो कुछ भी हो, वर्किंग

कमेटी ने तो सुभाष बाबू को निकाल ही दिया, किंतु बंगाल-प्रांतीय-कांग्रेस-कमेटी ने दूसरा सभापति चुनने से इनकार कर दिया। इस पर भी जब उस पर, वर्किंग कमेटी की ओर से विपत्ति आने को हुई, तो सुभाष बाबू बीच में पड़े, और श्री राजेन्द्रचंद्र देव सभापति चुन गये; किंतु बंगाल-प्रांतीय-कांग्रेस-कमेटी ने राजेंद्रचंद्र देव को यह हिदायत दी कि वे जो कुछ करें, श्री बोस की सलाह से ही करें। इस प्रकार झगड़ा बढ़ता ही गया। इस संबंध में कांग्रेस ने एक इलेक्शन-ट्रिब्युनल क़ायम किया जिसे कांग्रेस कमेटियों का सहयोग प्राप्त न हो सका। इसलिये उसे इस्तीफ़ा दे देना पड़ा। तब एक एडहाक कमेटी बंगाल पर वर्किंग कमेटी की ओर से फिर लादी गई जो एक तरह से प्रांतीय, कमेटी के सब अधिकार छीन लेती है। यह कमेटी सुभाष बाबू के विरोधियों के दल के नेताओं को लेकर बनी है। बंगाल की प्रांतीय-कमेटी पर हिसाब में गड़बड़ करने का भी अभियोग लगाया गया। उनका मतलब यह था कि बंगाल की प्रांतीय-कमेटी ने कांग्रेस का रुपया फ़ारवर्ड ब्लाक के संगठन में ख़र्च किया है; किंतु यह अभियोग साबित न हो सका। जो कुछ भी हो यह झगड़ा हद दर्जे पर पहुँच गया। यहां तक कि बंगाल का कांग्रेस दफ़्तर महाजाति सदन के लिये कलकत्ता कारपोरेशन ने एक लाख रुपया मंज़ूर किया तो वर्किंग कमेटी के सदस्य श्री विधान राय ने इसके विरुद्ध वोट दिया; यहां तक कि उन्हीं के दल के एक व्यक्ति ने हाईकोर्ट में एक दरख़्वास्त देकर सार्वजनिक धन का दुरुपयोग बतलाकर—अभी रुपये का देना रुकवा दिया है।

झगड़े का परिणाम यह हुआ कि इस बार की पटना की वर्किंग कमेटी में एक तरह से बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी को रद्द क़रार दिया गया। इसका परिणाम बड़ा सुदूरविस्तृत होगा। बंगाल भारत का एक प्रांत है, रहेगा, इसके साथ ही यह भी स्पष्ट है कि एडहाक कमेटी

वहां कुछ कर भी नहीं सकती। जनता उसके साथ नहीं है। ऐसी हालत में वर्किंग कमेटी को अपने फ़ैसले पर पुनर्विचार करना चाहिये।

योरोपीय महायुद्ध और कांग्रेस मंत्रियों का इस्तीफ़ा

योरोप में युद्ध की घटाएँ बहुत दिनों से घिर रही थीं। जब से जर्मनी में हिटलर का उदय हुआ तब से यह आशंका विशेष रूप से आरंभ हो गयी। अतएव काँग्रेस ने कई साल पहिले से इस प्रश्न पर विचार कर के निश्चय किया था कि वह आगामी युद्ध में अंग्रेज़ी सरकार को कोई सहायता न देगी। यह प्रस्ताव बाद में भी कई बार दोहराया गया।

आख़िर सन् १९३९ में योरोप में पोलैंड के मामले पर इंगलैंड और फ्रांस की ओर से जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर ही दी गयी। भारतीय सरकार ने भी स्वभावतः इस युद्ध में इंगलैंड को सहायता देने का निश्चय कर लिया। किंतु ११ में से ८ प्रांतीय सरकारों का शासन कांग्रेस के हाथ में था। जो इस प्रकार सहायता दे कर इंग्लैंड की साम्राज्य-शक्ति को मज़बूत न करने का निर्णय कर चुकी थी। अतएव अब सवाल उठा कि या तो कांग्रेसी सरकारें इस्तीफ़ा दें या युद्ध में अंग्रेज़ों की सहायता करने के लिए भारतीय सरकार का साथ दें। निदान इस प्रश्न पर विचार करने के लिए कार्य समिति की एक बैठक की गयी, जिसने महात्मा गांधी से परामर्श कर के वाइसराय और अंग्रेज़ी सरकार से इस बात का आश्वासन मांगा कि यह युद्ध सच-मुच पराधीन राष्ट्रों को स्वाधीनता दिलाने के लिए है और इसकी मन्शा भारतवर्ष को भी स्वभाग्य निर्णय का अधिकार दे देना है। किंतु सरकार की ओर से इसका कोई साफ़ जवाब नहीं मिला। निदान प्रांतीय मंत्रियों ने इस्तीफ़े दे दिये। दूसरे किसी दल का साहस मंत्रि-मंडल बनाने का नहीं हो सका। इसलिए गवर्नरों को प्रांतों का शासन

स्वयं अपने हाथों में ले लेना पड़ा। इस प्रकार अब तक गवर्नरों का यह अनियंत्रित राज्य कांग्रेसी प्रांतों में क़ायम है।

सरकारी वक्तव्य और गांधी जी

वायसराय, लार्ड स्नेल तथा भारतमंत्री लार्ड ज़ेटलैंड के इस बीच में कई वक्तृतायें तथा वक्तव्य निकले हैं जिनमें सरकार की दृष्टि में स्थिति स्पष्ट की गयी है; किन्तु कांग्रेस को इनसे सन्तोष नहीं हुआ। कई वक्तव्यों में तो साफ़ साफ़ अल्पसंख्यकों के प्रश्न को इतना महत्व दिया गया है, मानों मुस्लिम लीग आदि को मनाना ही सब कुछ है। यह एक तरह से अल्पसंख्यकों या उनमें से कट्टर लोगों के हाथ में भारत के भाग्य को निर्णय करने का भार छोड़ देना है, जो कभी मनाये ही नहीं जा सकते। गांधी जी तक को इस पालिसी का पर्दाफ़ाश करना पड़ा। उन्होंने एक वक्तव्य में भी कहा है—

"जब जब भारत की स्वतंत्रता का प्रश्न सामने लाया गया है, तब तब अल्पसंख्यकों का प्रश्न उठाया गया है। कांग्रेस और उसकी माँग को एक सत्तावादी बतलाना सही बातों को छिपाना है। अनजान में ऐसा किया जाना कम गम्भीर नहीं है। कांग्रेस ने जान बूझ कर बल प्रयोग करने की नीति को छोड़ दिया है। उसके पास कोई फ़ौजी सहायता नहीं है और न वह फ़ौजी परम्परा ही रखती है। शुरू से ही उसका साम्प्रदायिक एकता में विश्वास रहा है। वह हिन्दुओं और अहिन्दुओं दोनों का ही प्रतिनिधित्व करना चाहती है। उसका नेतृत्व पारसियों, मुसलमानों तथा ईसाइयों सभी ने किया है। उसने सभी सम्प्रदायों को साथ लाने का प्रयत्न किया है। जब तक उसने असहयोग और सिविल नाफ़रमानी का आन्दोलन शुरू नहीं किया था; तब तक वह केवल वैध-आंदोलन करती थी। ब्रिटिश सरकार ने साम्प्रदायिक मतभेदों का उपयोग भारत की आकांक्षाओं को रोकने के लिये किया

है। सभी कांग्रेसी मंत्रि-मंडलों के इस्तीफ़ा दे देने से अब यह बिलकुल स्पष्ट हो जाना चाहिये कि कांग्रेस को विलास की सामग्रियों का लोभ नहीं है। साम्प्रदायिक झगड़ों में कांग्रेस कभी नहीं पड़ेगी, बल्कि वह अलग खड़ी रहेगी और अनिश्चित वातावरण में भ्रमण करती रहेगी और अच्छे दिन के आने की इन्तज़ारी करेगी। अभी भी लीग और कांग्रेस को एक दूसरे से भिड़ाये रहने की नीति देखने में आती है। मेरी यह आशा थी कि भारी यूरोपीय संकट उत्पन्न हो जाने पर ब्रिटिश राजनीतिज्ञ चीज़ों को ज़्यादा अच्छी तरह देख सकेंगे। इस सम्बन्ध में देशी नरेशों का ज़िक्र करना विशेष प्रकार से अनुचित है। उनका अस्तित्व ब्रिटिश सरकार से है और उससे अलग उनका कोई दर्जा नहीं है। यह बात आश्चर्य जनक भले ही मालूम हो, किन्तु वे (देशी नरेश) ब्रिटिश सरकार की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रज़ामंदी के बिना कोई भलाई या बड़ा काम नहीं कर सकते। वे अपने को छोड़ कर और किसी का प्रतिनिधित्व नहीं करते। कांग्रेस का देशी नरेशों से समझौता करने के लिये कहना और कांग्रेस से ब्रिटिश सरकार से समझौता करने के लिए कहना एक ही बात है। 'टाइम्स' चाहता है कि कांग्रेस बतलाए कि उस ने गत दो वर्षों के अंदर मुसलमानों तथा दलित जातियों के साथ क्या किया है। इसके उत्तर में मैं केवल यही कह सकता हूँ कि प्रान्तों के गवर्नर यह बात बतलाएं। मुसलिम लीग तथा कुछ दलित जाति के नेता शिकायत करते हैं, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। लोक जनसत्तात्मक राज्य में कुछ न कुछ असंतोष का होना अनिवार्य है। कांग्रेस ने एक सुन्दर प्रस्ताव किया है। उसने कहा है कि चुने हुए प्रतिनिधियों के विधान-सम्मेलन को भारतवर्ष के भावी शासन के लिये विधान बनाने दिया जाय, जिसमें अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा के लिए सन्तोषप्रद संरक्षण रखे जायंगे। क्या ब्रिटिश राजनीतिज्ञ इसे स्वीकार करेंगे।"

लार्ड सैमुएल की समालोचना

महात्मा जी ने जो कहा वह अत्यन्त नरम है; फिर भी भारतीय हैं; उन पर कुछ पक्षपात का दोष लग सकता है; किन्तु लार्ड सैमुअल ने लार्ड सभा में, २ नवम्बर को जो सरकारी वक्तव्य की सुन्दर आलोचना की थी वह द्रष्टव्य है:—

"ब्रिटिश सरकार की ओर से समय-समय पर बराबर यह वचन दिये गए हैं कि उसका उद्देश्य भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देना है। वायसराय ने भी अपने हाल के श्वेतपत्र में इस उद्देश्य को दुहराया है। लार्ड सैमुएल ने आगे कहा कि साल पर साल बीतते जाते हैं; ब्रिटिश सरकार ने जिस नीति की घोषणा की है, उसके उद्देश्य को वस्तुतः अब तक कार्य रूप में परिणत नहीं किया गया है। भारतीय नेतागण यह देखते हैं कि उनके जीवन का सर्वोत्तम काल व्यतीत होता जा रहा है, किन्तु फिर भी वे अब तक इस लड़ाई में पड़े हुए हैं। इस सिलसिले में लार्ड सैमुएल ने एक पर्वतारोही का उदाहरण दिया जो अपने सामने पर्वत को चोटी को देखता है; किन्तु जब वह काफ़ी प्रयत्न करने के उपरान्त वहां तक चढ़ जाता है तो उसे प्रतीत होता है कि अभी चोटी और ऊपर है। और इस प्रकार वह फिर आगे बढ़ता है और फिर भी उसे पर्वत की चोटी दूर ही देख पड़ती है।

आपने कहा:—ब्रिटिश सरकार यह कहती है कि यदि भारतीय लोग केवल अपने यहां के प्रमुख प्रश्नों को, जो सम्प्रदायों के बीच तथा कांग्रेस पार्टी और देशी रियासतों के बीच उत्पन्न हैं, उनको हल कर लें तो भारत में तत्काल ही औपनिवेशिक स्वराज्य के स्थापित किया जा सकता है। किन्तु इसका तात्पर्य यह होता है कि संघ-योजना के कार्यान्वित किए जाने के संबंध में अंतिम निर्णय का अधिकार मुसल-

मानों को ही है। भारत के मुसलमान संघ योजना के लिए उत्सुक नहीं हैं। या यों कहना चाहिए कि मुसलमानों को संघ योजना के सम्भावित परिणामों से आशंका है और वे लोग औपनिवेशिक स्वराज्य के लिए ज़ोर नहीं दे रहे हैं। उनके लिए यह स्वाभाविक ही है कि वे हिन्दुओं से कहें कि जब तक तुम लोग हमारी सभी इच्छाओं और मांगों को पूरा नहीं करते, तब तक हम तुम्हारे साथ समझौता करने से इनकार करते हैं। और यदि हम समझौता करना अस्वीकार करते हैं तो ब्रिटिश सरकार औपनिवेशिक स्वराज्य नहीं देती है।

अंतिम निर्णय मुसलमानों के हाथ में

लार्ड सैमुएल ने आगे कहा:—फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार जिस नीति से काम ले रही है, उससे यह तात्पर्य निकलता है कि औपनिवेशिक स्वराज्य दिए जाने के संबंध में अंतिम निर्णय मुसलमानों के हाथ में है। भारतवर्ष के भविष्य का निर्णय करने का अधिकार वहां की तीन चौथाई जनता को दिए जाने के बजाय वहां की जन संख्या के एक चौथाई भाग को दिया गया है। इस तरह की परिस्थिति इस दिशा में स्थायी रूप से अड़ंगा उत्पन्न कर सकती है। और इसलिए कांग्रेस को ब्रिटेन के इस इरादे के प्रति सन्देह हो तो वह स्वाभाविक ही है।

वायसराय-गांधी मिलन

इन सब वक्तव्यों के बाद वायसराय ने बंबई के एक गोरों के क्लब में भाषण देते हुए स्पष्ट रूप से कहा कि वेस्टमिनिस्टर स्टैच्युट के नमूने का औपनिवेशिक स्वराज्य देना ब्रिटिश सरकार की इच्छा है। इसपर गांधी जी ने कहा कि इसमें सम्मान पूर्ण समझौते का बीज

मौजूद हैं; फल-स्वरूप गान्धी जी और वायसराय की दिल्ली में भेंट हुई, किन्तु उससे कुछ फल न निकला। उसका नतीजा यह हुआ कि पटना में वर्किंग कमेटी ने कांग्रेस के खुले अधिवेशन के लिए एक भयंकर संभावनाओं से पूर्ण ऐतिहासिक प्रस्ताव बनाया। इसके पहिले कि हम पाठकों के सामने वह प्रस्ताव रक्खें, इस बीच में होने वाली अन्य घटनाओं का वर्णन कर देना ज़रूरी है।

२६ जनवरी १९४०

यों तो २६ जनवरी को प्रति वर्ष ही स्वाधीनता दिवस मनाया जाता है और स्वाधीनता की प्रतिज्ञा दुहराई जाती है, किंतु इस वर्ष इसे विशेष महत्व प्राप्त हुआ; अतः इसके सम्बन्ध में विशेष रूप से प्रकाश डाला जाता है:—

पूर्ण स्वाधीनता की प्रतिज्ञा

पूर्ण स्वाधीनता की प्रतिज्ञा लेने की प्रथा १९३० से हुई। बात यह है, कि १९२९ में लाहौर कांग्रेस में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास हुआ; तभी १९३० से इस प्रथा की आवश्यकता प्रतीत हुई। बाद के सत्याग्रह के युग में प्रतिज्ञा के शब्द तथा अनुष्ठान दोनों ग़ैरक़ानूनी क़रार दिये गये। १९३४ में सब आन्दोलन ठंडा हो जाने पर कांग्रेस ने प्रतिज्ञा के वाक्यों को कुछ नरम कर दिया। आम तौर से यह जो धारणा है कि प्रतिज्ञा के वाक्य केवल अबकी बार बदले गए हैं, बाबू संपूर्णानन्द की आपत्ति इसी तर्क पर अवलम्बित थी, किन्तु यह बिल्कुल ग़लत बात है।

१९३४ में जो कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था, उसमें महात्मा जी ने कांग्रेस के मूल आदर्श में Peaceful and legitimate की जगह पर Truthful and non-violent शब्द रखना चाहा। महात्मा जी



(सरदार वल्लभ भाई पटेल)

ने यहां तक कहा कि यदि यह प्रस्ताव न माना गया तो वे कांग्रेस में रहेंगे ही नहीं; किन्तु फिर भी यह प्रस्ताव पास न हो सका और महात्मा जी कांग्रेस के बाहर हो गये।

१९४० और १९३४

१९४० की प्रतिज्ञा के शब्द में चर्खा और खद्दर को प्रविष्ट कराना भी १९३४ की तरह ही चेष्टा है; किन्तु अब की बार महात्मा जी सफल रहे; फिर भी जब फ़ारवर्ड ब्लाक, कांग्रेस समाजवादी दल, रेडिकल लीग सब ने इसका विरोध किया, तब इस चर्खा-सम्बन्धी वाक्य की प्रतिज्ञा करना या न करना; व्यक्ति के ऊपर छोड़ दिया गया।

१९३० की प्रतिज्ञा

"हम विश्वास करते हैं कि आत्म-विकास का पूर्ण अवसर प्राप्त करने के लिये दूसरे देशो के लोगों की तरह भारतीयों को पूर्ण स्वाधीनता पाने का, अपनी कमाई के उपभोग करने का तथा जीने के उपयुक्त उपकरण पाने का अविच्छेद्य अधिकार है। हम यह भी विश्वास करते हैं कि यदि कोई सरकार इस इच्छा में बाधक हो तो उसको ध्वंस करने का अधिकार हमें है"—इत्यादि। अन्तिम पैराग्राफ़ में करबन्दी करने तथा सत्याग्रह की प्रतिज्ञा थी।

१९३५ की प्रतिज्ञा

१९३० की प्रतिज्ञा एक तरह से युद्ध घोषणा थी, किन्तु १९३७ की प्रतिज्ञा बिल्कुल दूसरी हो गयी।

वह यों है:—

"हम चिन्ता, वाक्य तथा कार्य में सत्य और अहिंसा का पालन करेंगे, सत्य और अहिंसा में कार्य रूप में यों चेष्टा करेंगे:—

(१) विभिन्न सम्प्रदायों में एकता तथा धर्म, वर्ण, सम्प्रदाय की परवाह न कर सब में पूर्ण समता की चेष्टा करेंगे।

(२) नशीली चीज़ों का इस्तेमाल न करेंगे।

(३) चर्खे से सूत कातेंगे तथा हर तरह से कुटीर-शिल्प से पैदा चीज़ों का इस्तेमाल करेंगे।

(४) छुआछूत दूर करेंगे।

(५) भूखे नंगे देशवासियों की सब प्रकार से सेवा करेंगे।

(६) सब तरह से रचनात्मक काम करेंगे।

१९३७ की प्रतिज्ञा

१९३७ की प्रतिज्ञा बिल्कुल १९३० की ही तरह है, केवल १९३० का अन्तिम पैराग्राफ़ जिसमें यह था "हम अब एक लमहा भी ऐसी शासन-पद्धति के अधीन रहना पाप समझते हैं; हम कर नहीं देंगे तथा हर प्रकार से अहिंसात्मक सत्याग्रह करेंगे" आदि निकाल दिया गया था। इतना होने पर भी मद्रास, बंगाल, पंजाब आदि कई सरकारों ने इसको ग़ैरक़ानूनी क़रार दिया था।

१९४० की प्रतिज्ञा

१९४० की प्रतिज्ञा जब नई हो गयी ऐसा सुनने में आया, तो लोगों ने यही समझा था कि वह १९३० की ही तरह युद्ध घोषणा के रूप में होगी; किन्तु जब वह सामने आयी तो मालूम हुआ कि उसमें

स्वरचनात्मक कार्यक्रम पर ही ज़्यादा ज़ोर दिया गया है । प्रतिज्ञा यों है:—

"हम विश्वास करते हैं कि भारत को स्वाधीनता का, अपने परिश्रम के फलभोग का और जीवन के लिये आवश्यक सामग्री प्राप्ति का उसी प्रकार पूर्ण अधिकार है, जैसे और देशों को, जिससे उसे विकास का पूर्ण अवसर मिले। हम यह भी विश्वास करते हैं कि यदि कोई सरकार लोगों को इन अधिकारों से वंचित करती है, तो लोगों को उसे बदल देने या तोड़ देने का पूर्ण अधिकार है। ब्रिटिश सरकार ने केवल भारतीयों की स्वधीनता का ही अपहरण नहीं किया है, बल्कि जनता के शोषण पर ही अपना आधार स्थापित किया है, और भारत को उसने आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक सभी दृष्टि से चौपट कर दिया है। अतएव हमारी धारणा है कि इंग्लैंड से सम्बन्ध तोड़कर पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त कर लेनी चाहिये।

हम मानते हैं कि स्वराज्य प्राप्त करने का उत्तम उपाय हिंसा नहीं है। शांतिमय उपायों का अवलम्बन करके ही भारत ने शक्ति और आत्मनिर्भरता प्राप्त की है और स्वराज्य के पथ पर वह इतना अग्रसर हो सका है, तथा इसी मार्ग पर चलकर वह स्वाधीनता प्राप्त कर सकेगा।

आज हम भारत को पूर्ण स्वाधीन करने की प्रतिज्ञा फिर करते हैं, और जब तक प्रतिज्ञा पूरी नहीं होती तब तक शान्तिपूर्वक स्वातंत्र्य-संग्राम चलाते रहने का भी निश्चय करते हैं।

हम प्रतिज्ञा करते हैं कि देश में अहिंसा का भाव उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त करने के लिये खादी के प्रचार, विभिन्न वर्गों में एकता-स्थापन और अस्पृश्यता निवारण की चेष्टा सतत करेंगे। जो लोग अज्ञान और दरिद्रता से ग्रस्त तथा उपेक्षित हैं, और जो दलित माने जाते हैं, उनकी उन्नति का हम दृढ़ता पूर्वक प्रयत्न करेंगे।

यद्यपि हम साम्राज्यवाद का अन्त करने को उद्यत हुए हैं, तथापि अंग्रेज़ों से हमारा कोई द्वेष नहीं—चाहे वह सरकारी हों या अन्य वर्ग के।

हिन्दुओं की अगणित जातियों में तथा हरिजनों में जो अन्तर है उसका अन्त करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं, और हम समझते हैं, कि व्यावहारिक रूप से हिन्दुओं को इन बुराइयों को दूर करना पड़ेगा। ये प्रभेद शान्तिमय व्यवहार में बाधक हैं। हम विभिन्न धर्म को मानने वाले भले ही बने रहें, किन्तु पारस्परिक व्यवहार के समय एक ही भारत मां की सन्तान की तरह कार्य करेंगे, जिनका राष्ट्रीय, राजनैतिक तथा आर्थिक हित एक है। भारत के सात लाख गावों के उद्धार के, और जनसाधारण की घोर दरिद्रता के निवारण के लिए चर्ख़ा और खादी ही हमारे रचनात्मक कार्य-क्रम का अविच्छिन्न अंग है। अतएव हम नियमित रूप से सूत कातेंगे, खादी का, और गावों में बनी हुई वस्तु का व्यवहार करेंगे, और दूसरों से भी ऐसा कराने का प्रयत्न करेंगे। हम प्रतिज्ञा करते हैं कि कांग्रेस के सिद्धांत और नीति का पालन हम निष्ठापूर्वक करेंगे, और भारत के स्वाधीनता संग्राम में कांग्रेस के आवाहन की प्रतीक्षा में सर्वक्षण प्रस्तुत रहेंगे।"

पटना में वर्किंग कमेटी

कांग्रेस की वर्किंग कमेटी की पटना में ता० २८, २९ फ़रवरी तथा १ मार्च को एक बैठक हुई, उसमें एक प्रस्ताव द्वारा तो बंगाल की कांग्रेस रद्द क़रार दे दी गयी; किन्तु अंतिम दिन वर्त्तमान राजनैतिक परिस्थिति पर जो मुख्य प्रस्ताव पास हुआ, बहुत ही महत्वपूर्ण है:—

प्रस्ताव ७०० शब्दों का है और उसमें घोषित किया गया है कि पूर्ण स्वाधीनता से कम की कोई बात स्वीकार नहीं की जायगी।

प्रस्ताव में अन्य बातों के साथ साथ यह कहा गया है कि "ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारतीय-स्वतंत्रता क़ायम नहीं रह सकती, और

साम्राज्यवादी ढांचे के अन्दर औपनिवेशिक पद या कोई अन्य पद भारत के लिये क़तई लागू नहीं है और वह महान् राष्ट्र की मर्यादा के अनुकूल नहीं है तथा भारत को अनेक प्रकार से ब्रिटिश नीति तथा आर्थिक ढांचे के बन्धन में बांधने वाला है। भारत की जनता ही अपना विधान-बालिग़-मताधिकार के आधार पर चुने गए विधान-सम्मेलन द्वारा ठीक ठीक तैयार कर सकती है, और संसार के अन्य देशों से अपने संबंधों का निर्णय कर सकती है।"

आगे प्रस्ताव में कहा गया है कि "कांग्रेस ने कांग्रेसी बहुमत प्रांतों से अपने मंत्रिमंडलों को इसलिए हटा दिया, ताकि भारत को युद्ध से अलग रखा जाय और भारत को विदेशी प्रभुत्व से मुक्त करने के कांग्रेस के निश्चय पर अमल किया जाय। इस आरम्भिक कार्रवाई के बाद यह स्वाभाविक है कि सत्याग्रह किया जाय और इसे कांग्रेस बिना किसी हिचकिचाहट के तुरन्त उसी समय शुरू कर देगी, जिस समय कि काँग्रेस संस्था इस कार्य के लिए पर्याप्त रूप से उपयुक्त समझी जायगी या जब परिस्थितियां ऐसी उपस्थित होंगी कि इसे शुरू करने की आवश्यकता हो, कांग्रेस-काँग्रेसजनों का ध्यान गाँधी जी की इस घोषणा की ओर आकर्षित करना चाहती है कि वे तभी सविनय-अवज्ञा घोषित करने की ज़िम्मेदारी ले सकते हैं, जब कि आपको यह इतमीनान हो जायगा कि कांग्रेसजन पूर्णरूप से अनुशासन का पालन करते हैं और स्वाधीनता के प्रतिज्ञा-पत्र में बतलाये गये रचनात्मक कार्यक्रम का पालन कर रहे हैं।"

प्रस्ताव के अंत में कहा गया है कि कांग्रेस अखिल-भारतीय कांग्रेस-कमेटी को और आवश्यकता पड़ने पर वर्किंग-कमेटी को यह अधिकार देती है कि इस प्रस्ताव को कार्यरूप में परिणत करने के लिए कमेटी जो कार्रवाई आवश्यक समझे, करे।

रामगढ़ में क्या होगा ?

इस प्रस्ताव के बाद रामगढ़ कांग्रेस केवल १५ दिनों के अन्दर ही होगी। अधिवेशन की तारीख़ें १८, १९, २० मार्च हैं। इसके सभापति हैं मौलाना अबुल कलाम आज़ाद।

पटना की वर्किंग कमेटी का प्रस्ताव बहुत स्पष्ट है। मालूम होता है कि यदि इस बीच में सरकार ने कांग्रेस की माँगों को मान कर विधान-सम्मेलन नहीं बुलाया और भारतवर्ष के आत्मनिर्णय के अधिकार को स्वीकार न किया तो उसका अनिवार्य परिणाम सत्याग्रह होगा। वर्किंग कमेटी के इस प्रस्ताव में किसी और अर्थ की गुंजाइश नहीं है स्पष्ट है, हम अपने इतिहास के एक संगमस्थल पर हैं। भविष्य धुँधला है, पता नहीं जब यह कुहरा हटे, तो हमको क्या दिखाई पड़े।



(मौ० अबुलकलाम आज़ाद)

-:o:-

कांग्रेस सोशलिस्ट दल

दल का जन्म

कांग्रेस सोशलिस्ट (समाजवादी) दल का जन्म जेल के अन्दर हुआ था। बात यह है, कि सन् '३० और '३१ के आन्दोलन को महात्मा जी ने जिस ढंग से चलाया, और बंद किया, उससे कुछ लोगों को यह विश्वास हो गया कि राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नई दिशा में ले जाने की ज़रूरत है। अतः उसके लक्ष्य को निश्चित करने की तथा उसके तरीक़ों में कुछ क्रान्तिकारी परिवर्तन करने की ज़रूरत हुई। इस दिशा में वैज्ञानिक रूप से क़दम वे ही लोग बढ़ा सकते थे, जो समाज में मौजूद शक्तियों को भावुकतापूर्ण नारों के द्वारा नहीं, बल्कि वास्तविक रूप से समझते थे। इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य बात यह है कि गान्धीजी के नेतृत्व में अविश्वास के कारण ही समाजवादी दल की उत्पत्ति हुई; क्योंकि यदि गांधीजी के चर्ख़ा, हृदयपरिवर्तन सिद्धान्त तथा नेतृत्व पर विश्वास होता तो समाजवादी दल की आवश्यकता ही न रहती। स्वभावतः यह भावना उन्हीं मँजे हुए कांग्रेसमैनों के मन में आई, जो मार्क्स द्वारा प्रवर्तित समाजवाद के संस्पर्श में आ चुके थे, और समझते थे कि यही एक वैज्ञानिक तरीक़ा है। यह स्वाभाविक था कि इस परिस्थिति में जिस संस्था का जन्म हुआ, वह समाजवादी कहलाये। समाजवादी शब्द के पहिले लगा हुआ कांग्रेस शब्द राष्ट्रीय आन्दोलन के अतीत, वर्तमान

और भविष्य के अविच्छेद्य सम्बन्ध को प्रकट करता है। पटना में ही अखिल-भारतीय-कांग्रेस कमेटी की वह बैठक हुई, जिसमें सत्याग्रह स्थगित करने का प्रस्ताव पास हुआ था और वहीं पर कांग्रेस समाजवादी दल के संगठन का सूत्रपात हुआ।

दल की बुनियाद

कांग्रेस समाजवादी-दल का उद्देश्य यह भी था कि राष्ट्रीय आन्दोलन को असली साम्राज्यवाद-विरोधी आन्दोलन बनाया जाय, जिसका लक्ष्य विदेशी हकूमत और भारतीय शोषणपद्धति से सम्पूर्ण छुटकारा पाना हो। दल के कामों में यह भी था कि देश में जो दूसरी साम्राज्य-विरोधी ताक़तें है उनको एक सूत्र में बाँधा जाय। इसमें सन्देह नहीं कि दल ने शुरू शुरू में इन उद्देश्यों पर काम किया, फिर भी इसकी बुनियाद में ही कई ग़लतियां थीं। उन्हीं के कारण बाद को हम देखते हैं कि कांग्रेस-समाजवादी दल को एक सिलसिलेवार तरीक़े से समझना मुश्किल है। बात यह है कि मार्क्स के अनुसार दल एक श्रेणी की प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था है, उस दृष्टि से कांग्रेस-समाजवादी-दल किस श्रेणी की संस्था है ? यदि यह मध्यवित्त श्रेणी की संस्था है, तो मार्क्सवादी नहीं है, और किसान-मज़दूरों की संस्था तो यह है ही नहीं, अस्तु। फिर भी जन्म के बाद बहुत वर्षों तक इसने एक बड़े अभाव की पूर्ति की। मार्क्सवाद को आम कांग्रेसजनों में प्रचार करने का तथा उसके लिये जिज्ञासा पैदा करने का श्रेय पहिले पहल इसी संस्था को है। निःसन्देह यह एक बड़ी सेवा है। गान्धीवाद के विरोध में पहिले पहल कांग्रेस के अन्दर झंडा उठाने का श्रेय इसी संस्था को प्राप्त है। सुभाष बाबू तथा फ़ारवर्ड ब्लाक के अन्य नेता जिस समय गान्धीवाद के चक्कर में एक तरह से सम्मोहित होकर समय काट रहे थे, उस समय आचार्य नरेन्द्र देव, सम्पूर्णानंद आदि सुप्रतिष्ठित नेताओं

ने कांग्रेस के अन्दर रह कर गांधीवाद की समालोचना करने का सत्साहस दिखलाया।

दल के नेता

दल का प्रारम्भ एक तरह से बिहार में पहिले हुआ। श्री जयप्रकाश नारायण इस दल के मन्त्री तथा नेता हैं। आचार्य नरेन्द्रदेव, मुंशी अहमददीन आदि दल के प्रमुख नेता हैं। बाबू सम्पूर्णानंद भी इसके आदि नेताओं में थे, किन्तु मन्त्रीत्व के मामले में कुछ मतभेद के कारण ये दल से अलग होकर मन्त्री बन गये।

बुनियादी ग़लतियां

कांग्रेस समाजवादी दल की एक बड़ी ग़लती यह भी थी कि उसने त्रिपुरी के पहिले कम्युनिस्ट दल का बड़ा विरोध किया, और कम्युनिस्ट दल वह दल था जिसका प्रभाव मज़दूरों पर था। कांग्रेस समाजवादी दल के अख़बार अंग्रेज़ी "कांग्रेस-सोशलिस्ट" तथा हिन्दी "संघर्ष" में कम्युनिस्टों के विरुद्ध भद्दे से भद्दा आरोप लगाया गया। बराबर इन अख़बारों में यह साबित करने की चेष्टा की गयी कि कम्युनिस्ट पार्टी के लोग मार्क्सवादी नहीं, मक्कार हैं, मुसलिम लीग के साथ मिले हैं। इसके साथ ही दल के अन्दर से कम्युनिस्टों को निकाल बाहर करने की पालिसी बड़े ज़ोर से चलाई गयी। कई जगह पर दल की शाखाओं के सारे सदस्य इसलिये निकाल दिये गये कि वे कम्युनिस्ट थे। इस प्रकार इस दल से बहुत से अच्छे कार्यकर्ता अलग कर दिये गये।

त्रिपुरी के पहिले तथा बाद

त्रिपुरी कांग्रेस के राष्ट्रपति पद के लिये जब श्रीसुभाषचन्द्र बोस खड़े हुए तो कांग्रेस समाजवादी दल ने उनको वोट दिया। किन्तु ज्यों ही वे चुन लिये गये, इनकी उनके सम्बन्ध में ढुनमुनयक़ीन नीति शुरू

हुई। पता नहीं क्या समझ कर उन्होंने सुभाष बाबू को वोट दिया था। शायद उन्होंने समझा हो कि उनके वोट पाने पर भी वे चुने नहीं जायँगे। चुनाव के परिणाम को देख कर शायद वे घबरा गये। त्रिपुरी कांग्रेस में इनका रुख अजीब रहा। आज भी इनकी उनके उस अवसर की घड़ी-घड़ी बदलने वाली नीति का किसी ने उचित कारण नहीं बता पाया। यद्यपि पं० जवाहरलालजी खुल्लमखुल्ला इस दल के नेता नहीं हैं, किन्तु फिर भी इस दल के प्रमुख नेताओं पर जवाहरलाल जी का काफ़ी असर है। कदाचित् इनकी ढुनमुनयक़ीनी नीति का यह भी एक कारण है। शायद एक ही अवसर पर जवाहरलाल जी की बात इन्होंने नहीं मानी—वह है सुभाष बाबू को त्रिपुरी के राष्ट्रपति पद के लिये वोट देना।

कम्युनिस्ट बनाम कांग्रेस समाजवादी

त्रिपुरी के बाद, दल ने कम्युनिस्टपार्टी को दुरदुराने की नीति त्याग दी। इसके फलस्वरूप दल की कार्यकारिणी में बड़ा मतभेद पैदा हुआ, और छै नेताओं ने कार्य-कारिणी से इस्तीफ़ा दे दिया। इन में डाक्टर राममनोहर लोहिया, अशोक मेहता, अच्युत पटवर्धन प्रमुख हैं। जैसे शंकराचार्य को प्रच्छन्न बौद्ध कहा गया है, वैसे ही इन छै व्यक्तियों को प्रच्छन्न गाँधीवादी कहना ठीक होगा। ये गांधीवाद की छिटफुट समालोचना करते हैं, किंतु उसके विरुद्ध जाने की इनमें हिम्मत नहीं है। हर मौक़े पर इन्हें कोई न कोई बहाना मिल ही जाता हैं, जिससे ये गांधी-मार्ग का अनुसरण करते दीख पड़ते हैं। हां, उसके विरुद्ध कभी कभी तलवार झनझना देते हैं। इनमें से सभी उच्च कोटि के विद्वान् हैं, किंतु न जनता इनके पीछे है और न इनका कोई गुर ही है; फिर भी पत्रिकाओं में लेख आदि लिखकर गांधी जी से मिठासयुक्त शरीफ़ाना छोड़-छाड़ कर ये अपने को जनता की निगाहों में बनाये रहते हैं। इनमें से एक श्री मसानी ने, कुछ दिन हुआ राज-नीति से किनाराकशी कर ही ली है। जब कि देश में प्रचंड संघर्ष

की तैयारी तथा संभावना है, उस समय इस प्रकार अलग हट जाने का बहुत बुरा अर्थ लगाया जा सकता है। किन्तु ऐसा न करते हुए भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि ये लोग स्वाभाविक रूप से क्रांतिकारी नहीं हैं। यदि १९१६–१७ के रूस में भी ये पैदा हुए होते, तो भी इनके सम्बन्ध में यह कल्पना करना मुश्किल है कि ये लाल गार्ड का नेतृत्व करते या ज़ार की फ़ौज को जाकर भड़काते।

दल का गाँधीवाद के प्रति रुख़

ऊपर जो कुछ कहा गया है, एक हद तक पूरे कांग्रेस-समाजवादी दल के बारे में कहा जा सकता है। कुछ लोग जो इस दल को (Gandhian Socialist) कहते हैं, वह बहुत कुछ ठीक ही है। कुछ दिनों से इन के मुखपत्रों से गांधीवाद की ध्वनि बड़े ज़ोर से निकल रही है। पहिले ही हम बता चुके हैं कि गांधीवाद को राहे रास्त पर लाने के लिए तथा उससे लोहा लेने के लिए ही इस दल की उत्पत्ति हुई थी। इस दृष्टि से दल के इस समय का रुख़ उसकी उत्पत्ति के साथ सामंजस्य-हीन है। गांधीवाद के विरोध में ही यह संस्था पैदा हुई, गांधी दर्शन के बजाय मार्क्स-दर्शन को, इन्होंने ग्रहणीय करके देश के सामने पेश किया; किंतु अब उनका वह विरोध कहां रहा? समझा जाता है कि यह दल अपनी प्रयोजनीयता से अधिक जी चुका है। इसके साथ ही यह कह देना उचित है कि इस दल का भविष्य और वामपक्षी दलों से उज्वल है। इसका कारण है कि गांधीवादी दल को इससे कोई व्यावहारिक विरोध का डर नहीं है। वे जान गये हैं कि यदि ये सबेरे भूल जायँगे तो शाम तक घर लौट आयँगे। ऐसी हालत में दल अपने सिद्धांतों को त्याग कर बड़ा तथा शक्तिशाली होगा; दुनिया के इतिहास में ऐसा सैकड़ों बार हुआ भी है। दल का नाम वही बना रहने पर भी कई बार ऐसा देखा गया है कि उसका उद्देश्य तथा तरीक़ा बदल जाता है। यह जीना शायद एक तरह का मरना ही हैं, किन्तु फिर भी नाम

वही बने रहने के कारण कोई यह बात नहीं कह सकता कि वह मर गया ; Power Politics में सिद्धांत विशेष महत्व नहीं रखता।

स्वतंत्रता की प्रतिज्ञा

१९४० की प्रतिज्ञा के चर्खा पैराग्राफ़ के बारे में दल ने जो पालिसी अख़्तियार की थी, वह दल की नीति की द्योतक है। वे नई प्रतिज्ञा पर आपत्ति करते हैं, फिर भी पुरानी प्रतिज्ञा को नहीं लेते, अलग सभा नहीं करते। इस दल के मामूली तौर से तरक्क़ी मालूम होने पर भी इसके जीवन में एक भयंकर विपत्ति का समय आ रहा है। यदि गांधी जी आन्दोलन चलाते हैं, तब तो ठीक है; किन्तु यदि कहीं वे समझौता करने में सफल रहे, तो इस दल की आफ़त ही आयगी। संभव है, यह उस समय भी संयुक्त मोर्चा के नाम पर तलवार झन-झना कर तथा गान्धी जी को पैंतरे दिखाकर चुप रहे, किंतु उस हालत में उसकी किरकिरी हो जायगी। आज बहुत से दलवालों को विश्वास है कि गांधीवाद के साथ यह संयुक्त मोर्चा एक अस्थायी बात है, वे लोग उस समय इससे अलग हो जायँगे। १९४० का साल बहुत से दलों के लिए जीवन-मरण परीक्षा का साल साबित होगा। उनमें से कांग्रेस समाजवादी भी एक दल है।

कम्युनिस्टों से संघर्ष

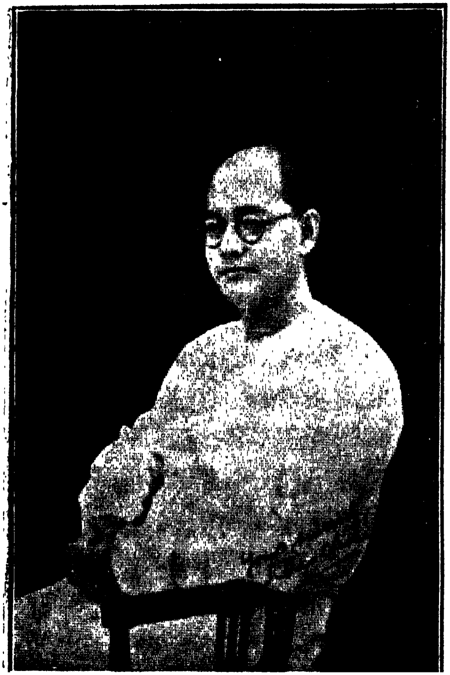
त्रिपुरी के बाद से कम्युनिस्ट तथा कांग्रेस-समाजवादी दल में जो खाई भरती हुई मामूल हो रही थी, अब एकाएक वह फिर बड़ी होती जा रही है। संयुक्त-प्रान्तीय-कांग्रेस-कमेटी के चुनाव के लिए कांग्रेस समाजवादियों ने अपना एक उम्मीदवार खड़ा किया था। इन उम्मीदवार के विरुद्ध एक पक्के दक्षिणपक्षी थे, किन्तु वोट लेते समय कम्यु-निस्ट निष्पक्ष रहे। इससे कांग्रेस-समाजवादी-दल के उम्मीदवार महाशय हार गये। कम्युनिस्ट इसके समर्थन में कहते हैं कि कांग्रेस

समाजवादी तथा दक्षिणपन्थी उम्मीदवार में प्रभेद क्या है, दोनों ही गाँधीवादी हैं। कहना न होगा कि कांग्रेस-समाजवादी इसके विरुद्ध कुछ कह ही नहीं सकते। फिर कांग्रेस समाजवादियों की ओर से कम्युनिस्टों के विरुद्ध जेहाद शुरू हो गया है। रामगढ़ में इसका कुछ न कुछ नतीजा होगा। बताया जाता है कि कांग्रेस समाजवादी दल की कार्य-कारिणी में जो दो कम्युनिस्ट हैं, उनके ज़रिये से कांग्रेस समाजवादी दल के सालाना इजलास में एक दृष्टिकोण (Thesis) पेश किया जायगा; किन्तु कम्युनिस्टों को यह डर है कि शायद कहीं यह थीसिस-दल आम लोगों को पसन्द न आ जाय। इसलिए यह इजलास ही नहीं बुलाया जायगा। हमें यह ज्ञात हो रहा है कि वामपन्थी शब्द के ऐसे-ऐसे अर्थ लगाये जा रहे हैं कि इसका कोई अर्थ ही नहीं रह गया है, शायद शीघ्र बोध के लिये बजाय वामपन्थी के गांधीवाद विरोधी शब्द इस्तेमाल करना पड़ेगा। जो विरोधी न होंगे वे दक्षिणपन्थी कहलायँगे, चाहे वे कुछ भी नाम रक्खें। मौलाना आज़ाद के विषय में कहा जा रहा है कि वे सर्वश्री जयप्रकाश नारायण तथा आचार्य नरेन्द्र देव को अपनी कार्य-समिति में लेंगे, क्योंकि उन लोगों ने पूर्ण तरीक़े से उनके चुनाव में भाग लिया तथा उन्हें वोट दिया था। यदि यह बात हुई तो कांग्रेस समाजवादी तथा गांधीवादियों का संयुक्त मोर्चा होगा। दूसरे दलों पर इसका क्या असर होगा, यह कल्पना की जा सकती है।

अग्रगामी दल (FORWARD BLOC)

संघयोजना का विरोध

फ़ारवार्ड ब्लाक अभी कल का बच्चा है, किन्तु इसने भारतीय राजनीति में जो तहलका मचा दिया है, वह इसकी उम्र से कोई तारतम्य नहीं रखता। जिस संग्रामशील नीति के कारण कांग्रेस कांग्रेस बनी, दुनिया में उसकी इज़्ज़त बढ़ी—देखा गया कि कांग्रेस मंत्रिमंडलों की स्थापना के बाद, वह इस नीति का त्याग करती जा रही है। कांग्रेस ने मंत्रिमंडलों को इस कारण ग्रहण किया था कि उसके खोखलेपन को साबित कर उसकी धज्जियां उड़ा दें; किन्तु व्यावहारिक रूप में वे उस को काम में ला रहे थे। यह बात बहुत से लोगों को क्लेश दे रही थी। साथ ही समझा जा रहा था कि भीतर-भीतर संघ-योजना को अपनाने



(श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस).

की भी तैयारी हो रही थी, और यह सब हो रहा था, हरिपुरा के राष्ट्रपति सुभाष बाबू की पीठ के पीछे। सुभाष बाबू के कान में इसकी भनक पड़ रही थी, फिर भी उन्होंने हाईकमांड की परवाह न कर बराबर संघ-योजना के विरुद्ध एक जेहाद सा क़ायम रक्खा। हर एक वक्तृता में उन्होंने कड़ी से कड़ी भाषा में संघ-योजना की निन्दा की और यहां तक कहा कि यदि कांग्रेस ने इसे ग्रहण किया तो वे राष्ट्रपति पद से इस्तीफ़ा दे देंगे और इसके विरुद्ध संग्राम करेंगे। यों तो प्रतिवाद बहुत हो रहे थे, किन्तु सुभाष बाबू की इस समालोचना से हाईकमांड को बड़ा धक्का लगा; किन्तु यह सोच कर कि सुभाष बाबू और थोड़े दिन तक राष्ट्रपति रहेंगे, ये लोग धैर्य धारण किये रहे।

पुनर्निर्वाचन के लिए उम्मीदवार

जब त्रिपुरी में राष्ट्रपति के चुनाव का अवसर आया और सुभाष बाबू फिर से खड़े हो गये, तो हाईकमांड को बड़ा आश्चर्य हुआ। कार्य-समिति के कुछ सदस्यों ने डाक्टर पट्टाभि सीतारामैया का समर्थन किया, किन्तु गांधी जी ने कुछ न कहा। यह समझा गया कि गांधी जी के कहने की कुछ ज़रूरत नहीं है, यों ही सुभाष बाबू हार जायँगे। हाँ, गांधी जी ने निजी तौर पर सुभाष बाबू को खड़ा न होने की राय अवश्य दी थी; किन्तु सुभाष बाबू ने इसको मानने में असमर्थता प्रकट की। सुभाष बाबू का यह खड़े होना ही एक ऐतिहासिक महत्व यों रखता है कि जब से कांग्रेस में गांधी जी का प्राबल्य हुआ, तब से वे ही जिसे खड़ा कर देते थे, वे ही निर्विरोध चुने जाते थे। सुभाष बाबू ने अपने चुनाव को व्यक्ति बनाम व्यक्ति का रूप न देकर एक Issue यानी उद्देश्यगत लड़ाई का रूप दिया। वे चाहते थे कि कांग्रेस के अन्दर जो वैधानिक मनोवृत्ति तथा सुधारवाद घर कर गया है, वह दूर हो, और उसकी जगह पर कांग्रेस एक संग्रामशील नीति अख़्तियार करे। वे चाहते थे कि कांग्रेस इस प्रकार अपनी नीति को दुरुस्त कर कील कांटे

से दुरुस्त हो जाय, और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का फ़ायदा उठा कर लड़ाई छेड़ दे। वे कहते थे कि फ़ैज़पुर और हरिपुरा में जो कार्यक्रम मंज़ूर हुआ है, उसको बुनियादी तौर पर मानते हुए कांग्रेस की चाल में तेज़ी लायी जाय। उनको विश्वास था कि इसी में भलाई है।

सुभाष बाबू की विजय

चुनाव हुआ, और सुभाष बाबू जीत गये। हाई कमांड को इस बात से बड़ा ताज्जुब हुआ। चुनाव के परिणाम को मान लेने के बजाय गांधी जी ने इसको अपनी तथा अपने सिद्धान्तों की पराजय बतलाया। इस प्रकार देश में एक अजीब परिस्थिति उत्पन्न हो गयी। कुछ लोग इस चुनाव के नतीजे से इतने नाराज़ हुए कि उन्होंने कहा कि वे गांधी जी को लेकर एक दूसरी संस्था बनायँगे, किन्तु यह केवल धमकी थी। वे कुछ और ही करना चाहते थे।

त्रिपुरी का गन्दा वातावरण

त्रिपुरी में तथा उसके ऐन पहले ऐसा वातावरण पैदा किया गया, जिससे मालूम होता था कि सवाल महात्मा बनाम सुभाष है। कहना न होगा कि यह एक बहुत भड़का देने वाली बात थी। वर्षों से श्रद्धालु कांग्रेसजन गांधी जी को कांग्रेस के कर्णधार के रूप में देखते आ रहे थे, राष्ट्रपति आते थे और जाते थे; गांधी जी रहते थे, किन्तु जब सवाल इस रूप में पेश किया गया तो वे घबरा सा गये। वाम पक्ष में भी जिसके वोट से सुभाष बाबू राष्ट्रपति चुने गये थे, एक प्रभेद पैदा हो गया। बंगाल के वाम पक्षी यह चाहते थे "चूँकि गांधी जी ने इसको एक अजीब रूप दे दिया है, इसलिए यदि सब वामपक्षी सम्मिलित हो जायँ तो दक्षिण पक्ष को उखाड़ फेंका जा सकता है।" सब वामपक्षी इस पर राज़ी न थे। कुछ लोगों का वामपक्ष केवल चर्म-गभीर (Skin-deep) था। एक बड़ा दुर्भाग्य इस सम्बन्ध में

यह हुआ कि सुभाष बाबू बीमारी के कारण त्रिपुरी में अपने मधुर व्यक्तित्व का उपयोग न कर सके। पहिले ख़बर थी कि दक्षिणपन्थी राष्ट्रपति पर अविश्वास का प्रस्ताव लायँगे, और इस प्रकार उन्हें राष्ट्रपति पद से इस्तीफ़ा देने के लिए बाध्य करेंगे, किन्तु उन्होंने जब देखा कि इस प्रस्ताव के लिए वोट मिलना मुश्किल है, तब पन्त प्रस्ताव रक्खा गया, जिसमें राष्ट्रपति को आज्ञा दी गयी कि वे महात्मा जी की आज्ञा से अपनी कार्य-समिति बनावें। यह प्रस्ताव एक तरह से कांग्रेस की पुरानी प्रथा के विरुद्ध था, तथा एक हद तक राष्ट्रपति के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव भी था। कांग्रेस समाजवादी दल इस प्रस्ताव पर निष्पक्ष हो गया; परिणामस्वरूप प्रस्ताव पास हो गया।

सुभाष बाबू का इस्तीफ़ा

सुभाष बाबू बीमारी के कारण वर्किंग कमेटी न बना सके, इस पर वर्किंग कमेटी के नेताओं ने एक साथ इस्तीफ़ा देकर ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी कि सुभाष बाबू को इस्तीफ़ा दे देना पड़ा। राजेन्द्र बाबू राष्ट्रपति क़रार दिये गये। साथ ही सुभाष बाबू ने फ़ारवर्ड ब्लाक बनाने का इरादा प्रकट किया। फ़ारवर्ड ब्लाक का उद्देश्य यह था कि सब वामपक्षियों को एकत्रित किया जाय, तथा कांग्रेस की रफ़्तार का मज़दूर, किसान तथा युवक संघों के साथ संस्पर्श स्थापित कर, उनकी दिनानुदैनिक लड़ाई में हिस्सा लिवाकर कांग्रेस को जनता की चीज़ बनाकर बढ़ायी जाय। पहिला उद्देश्य सफल न हो सका। इसका कारण यह था कि कुछ वामपक्षी दल केवल नाम ही के मार्क्स वादी थे, वे हर हालत में गाँधी जी को साथ लेना चाहते थे, इसलिए मजबूरन फ़ारवर्ड ब्लाक एक दल ही रह गया। हां, यह हर तरीक़े से वामपक्ष की एकता की चेष्टा बराबर करता रहता है।

आपत्ति जनक प्रस्ताव

१९३९ के जून में अखिल-भारतीय-कांग्रेस कमेटी में कुछ ऐसे प्रस्ताव पास हुए, जिनका मतलब यह था कि काँग्रेस के अन्दर एक गुट का राज्य क़ायम हो। ये प्रस्ताव सर्व सम्मति से या बड़ी बहु सम्मति से पास नहीं हुए थे। इसमें एक प्रस्ताव में प्रांतीय-कांग्रेस-कमेटी से हुक्म प्राप्त किये बग़ैर किसी को सत्याग्रह करने की मनाही की गयी थी। यह प्रस्ताव जानना सरासर किसान-सभा तथा मज़दूर-सभाओं को कांग्रेस कमेटियों के अधीन कर देना था, जिसको यदि वे मान लेतीं तो इसका मतलब यह होता कि उनके स्वतंत्र अस्तित्व की कोई ज़रूरत नहीं रहती; क्योंकि जब हर बात में कांग्रेस कमेटी का हुक्म मानकर ही चलना है तो फिर उनके स्वतंत्र अस्तित्व की आवश्यकता ही क्या थी? इस प्रस्ताव का उद्देश्य कांग्रेस मंत्रिमंडलों का रास्ता निष्कंटक बनाना था। दूसरे प्रस्ताव में कांग्रेस मंत्रिमंडलों को प्रांतीय कांग्रेस कमेटियों से स्वतन्त्र बनाकर अखिल-भारतीय-पार्लामेन्टरी सब कमेटी जिसके प्रधान सर्दार पटेल थे, कर देना था। इस प्रस्ताव का उद्देश्य साफ़ था, कुछ प्रांतों में वामपक्षियों का ज़ोर होने के कारण दक्षिण-पन्थी नेताओं को यह डर था कि कहीं मंत्रिमंडलों में उनकी चलने न लगे। मंत्रि-मंडलों को, अपने प्रभाव क्षेत्र के रूप में, दक्षिण-पन्थी अपने लिए सुरक्षित रखना चाहते थे, इस कारण उन्होंने यह प्रस्ताव पास किया। और भी एक प्रस्ताव में चुनाव के अधिकार इस प्रकार सीमित कर दिये गये कि दक्षिणपंथियों की ही तूती बोलती रहे।

ऐतिहासिक ९ जुलाई

इन प्रस्तावों का मतलब साफ़ था, सब नेतृस्थानीय वामपक्षियों की एक सभा (Left Consolidation committee) के नाम से हुई, जिसमें तय हुआ कि ९ जुलाई अखिल-भारतीय रूप से इन प्रस्तावों

का प्रतिवाद किया जाय । तदनुसार सभाओं का ऐलान हुआ । आचार्य कृपलानी तथा डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने बड़ी सख्त धमकी दी कि यदि सभा की गयी तो लोगों पर अनुशासन की कार्रवाई की जायगी। कामरेड एम० एन० राय (जो इस समय वामपक्षियों को इसलिए कोस रहे हैं कि उन्होंने अबुलकलाम आज़ाद के मुक़ाबले में उन्हें राष्ट्रपति पद के लिए वोट नहीं दिया) इस कार्य-क्रम से ऐन मौक़े पर अलग हो गये । सच बात तो यह है कि (Left consolidation committee) वामपक्ष-समन्वय-कमेटी कुछ कर के ही तथा हो के ही रहती, किन्तु पहिले श्री एम० एन० राय इससे अलग हो गये। ९ जुलाई से हट जाने की नीति का समर्थन करते हुए रायवादी कहते हैं कि वामपक्षी-समन्वय-कमेटी में जो व्यक्ति उनकी ओर से मौजूद था, वह 'Independent India' का संपादक होने पर भी कांग्रेस के अंदर कुछ भी नहीं थे, इसलिये वे यह बताने के अधिकारी न थे कि कांग्रेस के अंदर दल की क्या नीति हो । कुछ भी हो वामपक्षी-समन्वय-कमेटी कमज़ोर हो गयी, अब तो शायद वामपक्षियों का एक होना एक स्वप्न भर है । जिनमें एका था, रामगढ़ में शायद उनमें भी एका न दिखाई दे ।

प्रतिवाद-सभायें सफल

९ जुलाई की सभायें बहुत सफल रहीं। भारत के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक सभायें हुईं । कांग्रेस समाजवादी दल, कम्युनिस्ट दल तथा नये फ़ारवर्ड ब्लाक ने इसमें भाग लिये। इस प्रदर्शन के फलस्वरूप कार्य-समिति की अगली बैठक में सुभाष बाबू को सब ओहदों से निकाल कर चार आने का सदस्य भर रक्खा गया । उनके अलावा और जिन लोगों ने ९ जुलाई की सभा में भाग लिया था, उन पर अनुशासन की कार्रवाई करने का भार प्रांतीय कांग्रेस कमेटियों पर छोड़ दिया गया । उस समय सुभाष बाबू बंगाल-प्रांतीय-कांग्रेस

कमेटी के सभापति थे, सारा बंगाल उनको चाहता था, किन्तु इस प्रस्ताव के बाद वे सभापति रह ही नहीं सकते थे। चाहिये तो यह था कि सुभाष बाबू को इस तरह मनमानी सज़ा देने पर एक अखिल भारतीय-दिवस मनाकर इसका प्रतिवाद किया जाता, बजाय इसके छिटफट सभाओं में प्रस्ताव हुए सो भी दक्षिणपंथी डिक्टेटरों की निंदा करते हुए नहीं, बल्कि वर्किंग कमेटी से अनुरोध करते हुए कि वह अपना हुक्म वापस लें। बंगाल-प्रान्तीय-कांग्रेस-कमेटी ने दूसरा प्रांतपति चुनना ही अस्वीकार किया, किन्तु सुभाष बाबू के बीच में पड़ जाने से श्री राजेन्द्रचंद्र देव चुने गये। इसके बाद से तो बराबर बंगाल-कांग्रेस-कमेटी और कार्य-समिति में झगड़ा बना रहा। यहां तक कि कार्य-समिति ने एक तरह से प्रांतीय कांग्रेस-कमेटी को रद्द कर एक एडहाक कमेटी क़ायम की, और उसी को चुनाव के सब हक़ दे दिये। फलस्वरूप अब की बार वहां न तो कोई चुनाव ही हो सका न बंगाल राष्ट्रपति के चुनाव में भाग ले सका। शायद अब की बंगाल का कोई डेलीगेट रामगढ़ कांग्रेस में न जा सके, यह एक ऐतिहासिक बात होगी।

फ़ारवर्ड ब्लाक एक अत्युग्र दल ?

अब तक हमने संक्षेप में जिन परिस्थितियों का वर्णन किया है, फ़ारवर्ड ब्लाक उन्हीं परिस्थितियों में उपजा तथा पनपा है। फ़ारवर्ड ब्लाक की नीति कुछ वामपन्थी दलों को भी इतनी उग्र ज्ञात होती है कि वे आज खुले आम उसकी निन्दा करते नहीं चूकते। बात यह है कि इन उग्रवादियों में फ़ारवर्ड ब्लाक की नीति की इसलिए निन्दा होती है कि वे यत्र-तत्र मार्क्सवाद की क़समें खाने पर भी चरित्र से (Temperamentally) वे गांधीवादी हैं। २६ जनवरी के मामले को ही लिया जाय, यह इन सब ने माना कि वे चर्ख़ा पैरागाफ़ के विरुद्ध हैं, तार्किक रूप से इसका अर्थ यह

था कि वे अलग सभाएं करते, किंतु जयप्रकाश जी का फ़तवा निकला कि ऐसा न हो। किसी मामले के तार्किक परिणाम तक न जाने की जैसे इन लोगों ने क़सम खाई है।

जुलाई के विषय में National Front ने लिखा था, वह स्मरणीय है:—

It marks the beginning of the unity in action on a mass scale between the forces of left nationalism and the forces of the proletariat and the peasantry.

यानी जन-आन्दोलन के पैमाने पर वामपक्षी राष्ट्रीयतावादी तथा किसान और मज़दूरों को कार्यक्षेत्र में एकता का यह पहला सूचक है। ऐसा लिखने पर भी सुभाष बाबू का फ़ारवर्ड ब्लाक एक तरह से सब से अलग पड़ गया है। इसके कई ऐतिहासिक कारण हैं। सुभाष बाबू ने जिस समय फ़ारवर्ड ब्लाक क़ायम किया था या उसका ऐलान किया था, उस समय उनका उद्देश्य उन्हीं के कथनानुसार केवल इतना ही था कि सुधारवाद की मनोवृत्ति को दूर कर गांधीवाद के अन्दर ही रहकर कांग्रेस की चाल को तेज़ किया जाय। त्रिपुरी के अवसर पर दिये गये भाषण में श्रीबोस ने इस बात की ज़रूरत बतलायी कि एक प्रचंड वालंटियर सेना बनाई जाय; तथा सरकार को छै महीने का अल्टिमेटम दे दिया जाय। इस अल्टिमेटम वाली बात का बहुत मज़ाक़ उड़ाया गया। इस सम्बन्ध में दो बातें द्रष्टव्य हैं—एक यह कि अल्टिमेटम कांग्रेस के इतिहास में कोई अनहोनी बात नहीं थी, एक साल का अल्टिमेटम देकर ही लाहौर में स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास हुआ था; दूसरी बात यह है कि त्रिपुरी के ठीक छै महीने बाद ही यूरोप में युद्ध छिड़ गया।

उद्देश्य का विकास

फ़ारवर्ड ब्लाक का यह उद्देश्य धीरे धीरे विकसित होता गया,

और आज भारतवर्ष में गांधीवाद का सब से कट्टर विरोधी वही है। सुभाष बाबू तथा फ़ारवर्ड ब्लाक वाले आज गांधी जी को उच्चवर्ग तथा पूंजीपतियों के संरक्षक के रूप में देखते हैं। आज फ़ारवर्ड ब्लाक गांधी जी के समझौता करने की नीति का सब से बड़ा समालोचक है।

ब्लाक के नियम

फ़ारवर्ड ब्लाक का सदस्य कोई भी कांग्रेस-मैन हो सकता हैं, किंतु चूँकि कुछ ब्लाक के सदस्य कांग्रेस से निकाले गये हैं, इसलिए अब यह नियम हो गया है कि जो लोग फ़ारवर्ड ब्लाक को अपनाने के कारण कांग्रेस से निकाले गये हैं, वे फ़ारवर्ड ब्लाक के सदस्य रहेंगे। बंगाल में फ़ारवर्ड ब्लाक का एकच्छत्र राजत्व है, वहां कुछ रायवादियों तथा चर्खासंघ वालों के अतिरिक्त सब कांग्रेसजन सुभाष बाबू के साथ हैं। पुरानी क्रांतिकारी पार्टियों के सब नेता इसमें शामिल हुए हैं। इससे इसका वज़न बहुत ही बढ़ गया है। 'युगान्तर' तथा 'अनुशीलन' जिनके आपस में कोई अच्छे सम्बन्ध नहीं थे, वे दोनों इसमें शामिल हैं। नीहारेन्द्र दत्त मजुमदार की लेबरपार्टी भी अब इसमें शामिल हो गयी है। बंगाल के कम्युनिस्ट भी कई कारणों से बराबर सुभाष बाबू का साथ देते हैं। किन्तु सब से बड़ी ताक़त जो सुभाष बाबू की है वह यह है कि बंगाल में वे अत्यन्त जनप्रिय हैं। सुभाष बाबू पर जितने प्रहार किये जा रहे हैं, उनसे बंगाल में वे और जनप्रिय होते जा रहे हैं। जब तक फ़ारवर्ड ब्लाक अपनी संग्रामशील नीति पर क़ायम है, तब तक उसे बंगाल से कोई हटा नहीं सकता।

ब्लाक का संगठन

बंगाल के बाहर फ़ारवर्ड ब्लाक का संगठन विशेष परिणत दशा में नहीं हैं; किन्तु फिर भी उसकी उम्र को देखते हुए वह एक अच्छे पैमाने पर पहुँच चुका है। इसकी एक अखिल-भारतीय-कमेटी है, जिसमें

सर्दार शार्दूलसिंह कवीश्वर, विश्वम्भर दयालु त्रिपाठी, मिस्टर कामठ, लाला शंकरलाल आदि हैं। संयुक्तप्रांत की जो प्रांतीय कमेटी है उसके अधिकांश सदस्य भूतपूर्व क्रांतिकारी हैं। क्या फ़ारवर्ड ब्लाक मौक़ावादियों की पार्टी है? इसका उत्तर है कि इसके ज़्यादातर प्रमुख नेताओं का जीवन-क्रम देखने से कुछ और ही पता लगता है। सुभाष बाबू के त्याग के लोहे को कौन नहीं मानेगा?

कांग्रेस से ब्लाक अलग होगा?

अब फ़ारवर्ड ब्लाक के नेताओं के सामने एक विकट प्रश्न है, वह यह कि क्या फ़ारवर्ड ब्लाक कांग्रेस के अन्दर रह कर काम कर सकता है, या उसे अलग हो जाना पड़ेगा। यह जानते हुए भी कि डाक्टर विधान चन्द्रराय तथा श्री प्रफुल्ल चन्द्र घोष के पीछे बंगाल की जनता नहीं है, हाईकमांड कांग्रेस-वर्किंग-कमेटी के सदस्य उन्हीं को मनो-नीति किये हुए हैं। नीति-संबंधी मतभेद रोज़ बढ़ता ही जा रहा है। लार्ड लिनलिथगो द्वारा गांधी जी ठुकराये जाने पर भी, फ़ारवर्ड ब्लाक का ख़्याल है कि "कांग्रेस हाई कमांड और ब्रिटिश सरकार में समझौते के घोर प्रयत्न हो रहे हैं। हमारे भूतपूर्व मंत्रियों से निकट संबंध रखने वाले क्षेत्रों में इसकी काफ़ी चर्चा हो रही है, और वे यह उम्मीद करने लगे हैं कि कांग्रेस मंत्रिमंडल शीघ्र ही पुनः क़ायम होने वाले हैं। इस समय दो तरह के अनुमान हैं—एक यह कि रामगढ़ कांग्रेस में एक तय की हुई योजना (Fait accompli) पेश की जायगी, दूसरा यह कि रामगढ़-कांग्रेस महात्माजी को या वर्किंग कमेटी को पूर्ण अधिकार दे देगी, और समझौता कांग्रेस अधिवेशन के पहिले होगा, बाद को नहीं। पहली धारणा असंभव प्रतीत होती है, दूसरी सत्य सिद्ध होगी या नहीं, देखना है। पश्चिमी मोर्चे पर वसन्त ऋतु का का आक्रमण प्रत्याक्रमण होने के पहिले ही समझौता हो जाना सरकार चाहेगी। फिर भी यह निश्चित मालूम नहीं होता कि ब्रिटिश सरकार

कांग्रेस की कम से कम मांगों को मान लेगी। × × × बात यह है कि ब्रिटिश सरकार को यह विश्वास हो गया है कि कांग्रेस लड़ाई किसी प्रकार छेड़ेगी ही नहीं।

रामगढ़ में

सामने रामगढ़ है, उसी पर सब कुछ निर्भर है। सुभाष बाबू आगामी काँग्रेस के अवसर पर समझौता-विरोधी-कान्फ़रेंस बुला रहे हैं। फ़ारवर्ड ब्लाक का आज एक मात्र नारा "समझौते का नाश हो तथा "राष्ट्रीय जंग का एलान करो," है। अन्त में फिर भी एक बात याद रहे—वह यह है कि सुभाष बाबू ने बार बार कहा है, और अब भी वे इस बात पर डटे हुए हैं कि यदि गांधीजी समझौता न करके संग्राम छेड़ते हैं, तो एक मामूली सिपाही की भाँति उसमें वे कूद पड़ेंगे। हाँ, उस हालत में भी फ़ारवर्ड ब्लाक का एक कार्य यह रहेगा कि वह देखे कि कहीं किसी बहाने लड़ाई बन्द न कर दी जाय। यदि अंत तक गांधीजी लड़ाई नहीं छेड़ते, और बीच में ही समझौता कर लेते हैं, उस हालत में फ़ारवर्ड ब्लाक का क्या कर्त्तव्य होगा, यह एक सोचने की बात है। कदाचित् वह दिन फ़ारवर्ड ब्लाक के लिए बहुत बुरा होगा, क्योंकि फिर तो वह दो चक्की के पाट में पिसेगी। ऐसी हालत में पता नहीं क्या हो, किन्तु एक परिस्थिति यह भी हो सकती है कि फ़ारवर्ड ब्लाक रूस की लेनिन परिचालित सोशल डेमोक्रैटिक पार्टी की तरह एक आंशिक रूप से गुप्त जनता की क्रांतिकारी संस्था में परिणत हो जाय। इसके सामने और कोई रास्ता न रहेगा।

रेडिकल कांग्रेस लीग

नरेन्द्र भट्टाचार्य

कामरेड एम० एन० राय जो इस दल के नेता हैं, पहिले एक क्रान्तिकारी यानी (Terrorist-revolutionary) थे, उनका उस



(श्री एम० एन० राय)

उस समय का नाम नरेन्द्र भट्टाचार्य है। वे क्रान्तिकारी दल की ओर से गत महायुद्ध के दिनों में विदेश इसलिए भेजे गये थे कि अस्त्र-शस्त्र भिजवायें। जब इनका बेटेविया में पुलिस ने पीछा किया तो ये भाग कर मेक्सिको चले गये, फिर वर्षों तक विदेशों में भागते ही रहे। इस दौरान में रूस में क्रांति हुई, और नरेन्द्र भट्टाचार्य के विचार जो अब एम० एन० राय हो चुके थे, साम्यवाद की ओर झुके। इस दृष्टि से

वे ही पहले क्रान्तिकारी हैं, जो साम्यवादी विचारों के हुए। उनकी जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी। साथ ही वे व्यावहारिक रूप से रूस में साम्यवादी प्रक्रिया को देखने लगे। रूस का उद्देश्य एक केवल देश में ही क्रान्ति करना नहीं था, बल्कि सारी दुनिया में क्रान्ति करना है। तदनुसार लेनिन के नेतृत्व में एक संस्था स्थापित हुई, जिसका नाम "कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल हुआ।" इस संस्था की ओर से एम० एन० राय भारतवर्ष के लोगों में साम्यवादी षड्यंत्र करने लगे। इसके लिए उन्होंने केवल रत्र से तथा साहित्य से काम लिया। कानपुर षड्यंत्र इसी का नतीजा था। कई कारणों से वे बाद को अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट पार्टी से निकाल दिये गये।

राय की गिरफ़्तारी

एम० एन० राय चोरी से भारत में आकर संगठन कर रहे थे कि बम्बई में एक बैरिस्टर के घर पर पकड़े गये, और छै साल की सज़ा हुई। इस सज़ा को काटने के बाद इन्होंने एक दल का संगठन किया। इस दल को लोग आम तौर पर रायवादी दल कहते थे। त्रिपुरी कांग्रेस के बाद से इस दल का नाम रेडिकल कांग्रेसमैन हो गया। पूना में इसकी जो कान्फ़रेन्स हुई थी उसमें एक उद्देश्य पत्र क़बूल किया किया गया जिसका मुख्य अंश यों है:—

"कांग्रेसी झंडे के नीचे राष्ट्रीय मुक्ति के लिये जो संघर्ष विकसित होता रहा है, उसने अब एक विराट रूप धारण किया है, किंतु अब तक उन शक्तियों का रुख़ उद्देश्य की प्राप्ति के लिये जो ढङ्ग का रास्ता है उसकी ओर नहीं हुआ है। इसका कारण यह है कि राजनैतिक उद्देश्य के साथ बहुत सी ऐसी चीज़ों का घोटाला कर दिया गया है जिनसे उनका कोई कोई सम्बन्ध नहीं है। × × × कांग्रेसी मंत्रि मंडलों ने जो सुधारवादी धारा 'अख़्तियार की हैं, उससे जनता की तृप्ति न हो सकी, और उनमें असंतोष धुंधुआ रहा है। × × × ऐसी

हालत में बुद्धिमान् तथा समय समय पर न बदलने वाले दृढ़ क्रान्तिकारियों को चाहिए कि ऐसे चलें कि कांग्रेस के अन्दर का वर्तमान नेतृत्व बदल कर दूसरा नेतृत्व स्थापित किया जाय।"

वैकल्पिक नेतृत्व

एम० एन० राय का एक विशेष सिद्धांत है, जिसे Alternative leadership यानी वैकल्पिक नेतृत्व कहते हैं, इसका अर्थ यह है कि वर्तमान गांधीवादी नेतृत्व को दूर कर उसके स्थान पर क्रांतिकारी नेतृत्व स्थापित किया जाय। उनकी समालोचना में यह कहा गया है कि इस नारे को देकर वे कांग्रेस में मत-भेद पैदा कर रहे हैं; किन्तु स्मरण रहे कि हर एक वामपंथी दल का अंतिम उद्देश्य तार्किक रूप से वर्तमान नेतृत्व को दूर कर उसके स्थान पर क्रांतिकारी नेतृत्व स्थापित करना ही है, चाहे वह किसी कारण से इसका नारा न दे। संयुक्त नेतृत्व ही किसी वामपक्षी दल का ध्येय हो, ऐसा असंभव है। कामरेड राय पर केवल एक दोष इस सम्बन्ध में दिया जाना चाहिए कि वे समय से पहिले ही यह नारा देकर बुद्धिभ्रंश पैदा कर रहे हैं। लोग इससे केवल भड़केंगे ही। इसी नारे के अनुसार समालोचना करते हुए श्री राय ने कहा था कि सुभाष बाबू को चाहिए था कि वे इस्तीफ़ा न देकर सम्पूर्ण रूप से वामपक्षी कार्य-समिति बनाते। हमारी राय में यह एक हास्यकर सलाह थी; क्योंकि जब अखिल-भारतीय-काँग्रेस-कमेटी में, यहां तक कि प्रांतीय-काँग्रेस-कमेटियों के सदस्यों तक में उनका बहुमत न था, तब वे किस बूते पर कैबिनेट बनाते?

राय और किसान मज़दूर

कामरेड राय किसान सभाओं में विश्वास नहीं रखते। वे चाहते हैं कि ग्राम और मंडल-कांग्रेस-कमेटियां किसानों की ओर से ज़मींदारों से लड़ा करें, किन्तु क्या ऐसा हो रहा है, या कांग्रेस का नेतृत्व जैसा

है वह इसे होने देगा? कांग्रेस में सारी बातें ऊपर से नीचे की ओर चल रही हैं, ऐसी हालत में राय की यह इच्छा केवल स्वप्नलोक में ही रहेगी। बिहार में किसान-काँग्रेस-संघर्ष को देखते हुए राय साहब के इस सिद्धान्त की असारता मालूम होती है। किसान सभाओं को न चाहते हुए भी कामरेड राय मज़दूर-सभाओं की उपयोगिता में विश्वास रखते है; साथ ही मालूम होता है कि उन्हें आर्थिक जद्दोजहद तक ही सीमित रखना चाहते हैं। किसान-सभाओं को न चाहना और मज़दूर सभाओं को चाहना यह बात मौलिक रूप से परस्पर-विरोधी मालूम होती है।

त्रिपुरी में

त्रिपुरी में राय साहब के रेडिकल लीग का सितारा अच्छा चमका, किन्तु ९ जुलाई को होनेवाली वर्किंग-कमेटी-प्रस्ताव-विरोधी दिवस के अवसर पर ऐन मौक़े पर उन्होंने जो पैंतरा बदला, उससे उनके दल को बड़ा धक्का लगा। कहाँ तो हर समय वैकल्पिक नेतृत्व की बातें, और कहां ६ जुलाई को हट जाना। यदि राय साहब यह आशा रखते हैं कि हाईकमांड के बहुमत को तुड़वाकर अपना बहुमत अभी वे जल्दी बना लेंगे, तो यह दुराशा है।

वाम समन्वय कमेटी

यदि सारे वामपक्ष को एक सूत्र में बाँधने की कोई आशा बम्बई में (Left consolidation committee) से हो गयी थी तो कामरेड राय ने सब से पहले उस से छिटक कर उसे कमज़ोर बनाया। रामगढ़ की कांग्रेस के लिए राय साहब खड़े हुए थे, किन्तु हार गये। इस पर उन्होंने वामपक्षियों को गाली दी है; किन्तु यह अनुचित है। क्योंकि यदि वे वामपक्षी-समन्वय-कमेटी को क़ायम रहने देते तो इस समय उनके काम आता। २६ जनवरी के सम्बन्ध में रायवादियों का रुख़

ऐसा था जैसा कांग्रेस समाजवादी दल का, चर्चा अंश मानते भी नहीं और फिर अगल सभा भी नहीं करते।

कांग्रेस का हर एक सदस्य इस दल का सदस्य हो सकता है, महीने में चार आने चन्दे देने पड़ते हैं। रेडिकल लीग का भविष्य कुछ उज्ज्वल नहीं जँचता, कब यह दल किसका साथ दे, किसी को ज्ञात नहीं। रेडिकल लीग के ही निष्पक्ष रह जाने से गत संयुक्त-प्रांतीय कांग्रेस-कमेटी के सभापति के चुनाव के अवसर पर कांग्रेस-समाजवादी दल के उम्मीदवार हार गये। बहुत दिनों बाद कम्युनिस्ट तथा रेडिकल लीग ने एक ही सा आचरण किया।

कम्युनिस्ट दल

कम्युनिस्ट शब्द की उत्पत्ति

कम्युनिस्ट शब्द पैरिस के क्रांतिकारी पंचायत या कम्युनों से संबंध रखता है, किन्तु स्मरण रहे, रूस की क्रांति के पहिले लेनिन का दल भी कम्युनिस्ट दल नहीं कहलाता था; बल्कि उसका नाम सोशल डेमोक्रैटिक दल था। क्रान्ति के बाद ही लेनिन के दल का नाम कम्युनिस्ट दल पड़ा।

कामिन्टर्न

रूस में ज़ार के शासन का अंत कर दिये जाने के बाद वहां के क्रांतकारी नेता केवल इस बात से ख़ुश न रह सके कि रूस ही में क्रांति होकर रह जाय। रूस का यह नवीन मज़दूर राष्ट्र चाहता था कि हर देश में क्रांति हो; तदनुसार बाहर देशों में क्रांतिकारी प्रचार के लिए कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल नाम की एक सस्था १९१९ में क़ायम की गयी। इस संस्था का उद्देश्य हर देश में क्रांति की प्रक्रिया को द्रुत कर मज़दूर-किसान-पीड़ितों का अधिनायकत्व स्थापित करना था। पहिले कामिन्टर्न के नेताओं ने भारत में कांग्रेस को ही अपने कार्य-क्रम का वाहन बनाना चाहा; किन्तु एक तो कांग्रेस उस समय तक काग़ज़ी तौर पर भी पूर्ण स्वाधीनता की क़ायल नहीं थी; दूसरे कांग्रेस के नेता ज़बानी तौर पर क्रांति के हामी होने पर भी उस लकड़हारिन बुढ़िया की तरह (जो हर समय यमराज की रट लगाती थी कि वे

उसे ले जायँ) थे तथा वास्तविक क्रान्ति से घबराते थे। वे रूस ऐसे देश के कामिन्टर्न ऐसी संस्था के साथ सम्बन्ध नहीं रखना चाहते थे। कांग्रेस का ध्येय जब पूर्ण स्वराज्य भी नहीं था तो उससे यह आशा करना कि वह मजदूर-किसानों के अधिनायकत्व के लिए प्रचार करेगी, असंभव था। अतएव इस मामले में उसे अपना काम आप करना पड़ा। इस सम्बन्ध में एक द्रष्टव्य बात यह है कि चीन के नेता डाक्टर सनयात सेन ने इसी में अपनी पार्टी तथा देश की भलाई समझी कि कामिन्टर्न से सम्बंध जोड़ा जाय। बात यह है कि कामिन्टर्न कुछ देने को ही तैयार था, लेने को नहीं; किन्तु भारतीय नेताओं ने इसका कुछ ख़्याल ही नहीं किया। १९२२ में गया कांग्रेस के अवसर पर हिन्दुस्तान में पहिले पहल एक कम्युनिस्ट पर्चा निकला।

भारत में दल की स्थापना

भारत में कम्युनिस्ट दल की स्थापना तो १९२६ में ही बतलाई जाती है; यह बात केवल Technical रूप से ही सत्य है। सच बात तो यह है कि इसके बहुत पहिले ही 'कम्युनिस्ट' इन्टरनेशनल का प्रचार कार्य यहां शुरू हो चुका था। रहा यह कि बाक़ायादा पोलिट-ब्यूरो बना कर यह काम शायद उस समय नहीं हुआ था।

हिजरत से लौटने वाले

१९२० में ख़िलाफ़त आन्दोलन के सिलसिले में एक आन्दोलन यह भी चला कि मुसलमान ऐसी शक्ति द्वारा शासित मुल्क में न रहें जिसने ख़िलाफ़त को नुक़सान पहुँचाया हो; तदनुसार बहुत से कट्टर मुसलमान घर द्वार छोड़ कर भारत के बाहर चले गये। इनमें से कुछ भटकते भटकाते रूस पहुँचे, तो उन पर साम्यवाद का प्रभाव पड़ा, और वे कट्टर मुसलमान से कट्टर कम्युनिस्ट होकर लौटे। अब इन लोगों को मुहाजिरीन से कोई मतलब न रहा। ये कम्यूनिज़्म के प्रचार

के लिए भारत वापस आने लगे, किंतु रास्ते में पेशावर में ही पकड़ लिये गये, और पेशावर कम्युनिस्ट मामले में इन्हें सज़ाऐं हुईं।

एम० एन० राय

भूतपूर्व आंतक—वादी-क्रान्तिकारी नरेन्द्र भट्टाचार्य उर्फ़ एम० एन० राय रूस के कामिन्टर्न के प्रचारक नियुक्त हुए। उन्होंने वहीं से बैठकर चिट्ठी तथा पर्चे भेजे और भारत में प्रथम ढङ्ग का कम्युनिस्ट आन्दोलन चलाया। कानपुरषड्यन्त्र के वे ही मुख्य अभियुक्त थे। एम० एन० राय के इस काम को जितना महत्व देना चाहिए, कम्युनिस्ट उतना देने के लिए इसलिए तैयार नहीं हैं, बात यह है कि बाद को एम० एन० राय कामिन्टर्न से निकाले जाकर Renegade (भगोड़ा) क़रार दिये गए, और भारत में आने के बाद उन्होंने कम्युनिस्ट दल का प्रतिद्वंद्वी एक दूसरा दल स्थापित किया। हम यहां पर यदि मान भी लें कि वे उचित कारण से निकाले गये, और प्रतिद्वंद्वी दल स्थापित कर उन्होंने ग़लती की, फिर भी हम कोई वजह नहीं देखते कि इतिहास को बिगाड़कर क्यों दिखाया जाय। भारतवर्ष के क्रान्तिकारी आंन्दोलन से उदाहरण लिया जाय। वारीन्द्रकुमार घोष तथा सावरकर इस समय हर एक क्रान्तिकारी की आँखों में कट्टर प्रतिक्रियावादी जँचते हैं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इस बात को अस्वीकार किया जाय कि वे भारतवर्ष के क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रवर्तक थे।

कानपुर-षड्यन्त्र

एम० एन० राय Vanguard नाम से एक पत्र का सम्पादन करते थे। यह चोरी से भारत में आता था। पहिले ही बताया जा चुका है कि इन्होंने भारतवर्ष में गुप्त रूप से संगठन किया, जिस पर कानपुर षड्यन्त्र चला। इस मामले में कामरेड राय, श्रीयुत अमृत डांगे, मुज़फ़्फ़र अहमद, शौकत उस्मानी, नलिनी गुप्त, शर्मा, सिंगारावेलू

चेट्टी तथा ग़ुलाम हुसेन अभियुक्त थे। कामरेड राय यूरोप में होने के कारण पुलिस के हाथ न लगे; शर्मा भाग खड़े हुए; सिंगारावेलू बीमार रहे; गुलाम हुसेन ने माफ़ी माँग ली; बाक़ी लोगों को चार-चार साल की सज़ा हुई। ये सज़ाएँ १९२४ के मई महीने में दी गयीं।

डांगे बम्बई से एक अंग्रेज़ी साम्यवादी साप्ताहिक का सम्पादन करते थे, इसके अतिरिक्त बम्बई से कम्युनिस्ट मैनिफ़ैस्टो आदि कुछ पुस्तकों के भी उन्होंने सस्ते संस्करण निकाले थे। मज़े की बात यह है कि कानपुर-षड्यन्त्र के पक्ष में बहुत सी बातें होते हुए भी जनता की या कांग्रेस की दृष्टि या सहानुभूति इस मुक़दमे के साथ न थी। पहिली बात तो यह थी कि भारत के आतंकवादी-क्रांतिकारियों ने जनता के जोश को रोमांचवाद के इतने ऊँचे स्वर (Pitch) पर बाँध दिया था कि कानपुर मुक़द्दमे में उसके जोश में आने की कोई बात नहीं थी। इसके अतिरिक्त कांग्रेस की निगाहों में यह मुक़द्दमा उनके क्षेत्र से शायद क्रांतिकारी आन्दोलन से भी दूर था। क्रांतिकारी षड्यन्त्र घर की चीज़ हो चुकी थी, किन्तु यह अभी विदेशी था।

प्रारम्भिक युग

कम्युनिस्ट पार्टी का उद्देश्य मज़दूर-किसानों का राज्य स्थापित करना है, जैसा कि दूसरे सभी साम्यवादी दलों का है, इस लिए आरम्भ से ही इसने मज़दूरों में काम किया। उनके रोज़मर्रे की लड़ाई में साथ देना और उनमें राजनैतिक जागृति पैदा करना ही इनका काम है। कम्युनिस्ट पार्टी एक ग़ैरक़ानूनी संस्था है, इसलिए यह एक गुप्त संस्था है; किन्तु प्रश्न यह है कि यदि कम्युनिस्ट पार्टी पर से रोक उठा ली जाय तो क्या वह पूर्ण रूप से खुली हो सकती है? हो, एक हद तक ही वह अपने को खोल सकती है। इसकी पहली वजह यह है कि उसके दुश्मन कहते हैं और दोस्त अस्वीकार नहीं करते कि सीधा या इंगलिस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी के ज़रिये से यदि इसका रूस से सम्बन्ध है,

तो वह कितना है तथा किस प्रकार का है, यह खोला नहीं जा सकता। न यही खोला जा सकता है कि यह सम्बन्ध किस प्रकार रक्खा जाता है। किसी भी पराधीन देश का कोई भी सरकारविरोधी दल अपनी सब बातों को या सदस्यों (Cadre) को खोल कर बता नहीं सकता। हाँ, इस पर से रोक यदि उठा ली जाय तो इसका एक हिस्सा खुला कर के एक दफ़्र दो चार रजिस्टर रख दिया जायगा। इसके क़ानूनी बनने में दल को फ़ायदा ही होगा, ऐसा भी कहना कठिन है, क्योंकि आज गुप्त संस्था होने के कारण इसकी ताक़त के बारे में मनमानी प्रचार हो सकता है, किन्तु खुली संस्था हो जाने पर यह न हो सकेगा। जहां तक अनुमान है, प्रान्तों के कुछ ही ज़िलों में एक दफ़्र संभव होगा। कम्युनिस्टों का प्रचार जितना है, दल उस से कहीं कमज़ोर है, इसलिए सरकार की इस पर उतनी वक्रदृष्टि नहीं है, जितनी आतंकवादी-क्रान्तिकारी पार्टियों पर थी।

कांग्रेस का विरोध

कम्युनिस्ट दल एक दल है, इसके लिये infallibility कभी भूल नहीं कर सकता। यह दावा उतना ही हास्यास्पद है, जितना और दलों के सम्बन्ध में। सब से बड़ी ग़लती जो इसने पैदा होते ही की और जिसे अब वे मानते हुए भी व्याख्या करने की (explain away) की चेष्टा करते हैं, वह यह है कि कांग्रेस का कार्यरूप में विरोध कर के ही इन्होंने अपना जीवन शुरू किया कांग्रेस के सम्बन्ध में इस दल की पालिसी में १९३०-३२ के मुक़ाबले में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। ३०-३२ के दिनों में जब कि कांग्रेस आन्दोलन एक उग्र रूप धारण कर रहा था, सैकड़ों तरह के निर्यातन काँग्रेसियों पर हो रहे थे, उस समय कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में मज़दूरों का जुलूस कांग्रेस मुर्दाबाद के नारे लगाते हुए निकलता था। इसका जनता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। बाद को कम्युनिस्ट पार्टी को यह पालिसी बदल देनी पड़ी और अब वे

किसी से कम कांग्रेस भक्त नहीं हैं। अब उनका नारा है "संयुक्त मोर्चा" वे किसी भी हालत में कांग्रेस से निकलना पसन्द न करेंगे, जब निकाले जाएँ, तो मजबूरी है।

मेरठ षड्यंत्र

जिस समय लाहौर में लाहौर-षड्यन्त्र चल रहा था, उसी समय मेरठ में साम्यवादी षड्यन्त्र चला। इसमें कानपुर-षड्यन्त्र के मुख्य लोगों के अतिरिक्त कोई और २७ आदमियों पर मुक़द्दमा चला। इस षड्यन्त्र की ओर देश की दृष्टि गयी, और कांग्रेस नेताओं ने इससे खुले आम हमदर्दी की। मेरठ षड्यन्त्र से साम्यवाद के प्रचार में बड़ी सहायता पहुँची। सरकार लाखों रुपया फूँककर भी अभियुक्तों को अन्त तक लम्बी सज़ा न दिलवा सकी, इसलिए अब षड्यन्त्र चलाने की नीति त्याग दी गयी है। सरकार अब एक एक को वक्तृता आदि में पकड़ कर साल दो साल की सज़ा देना ही अधिक आसान समझती है।

कांग्रेस में कम्युनिस्ट

कांग्रेस, संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चा है और इसी के ज़रिये से राष्ट्रीय क्रान्ति होगी। यह नारा देने के बाद से कम्युनिस्टगण कांग्रेस में ज़ोरों से घुस रहे हैं, किन्तु कांग्रेस-समाज वादी दल से उनकी ताक़त कांग्रेस के अन्दर बिलकुल कम है। रेडिकल लीग और ये शायद बराबर ही पड़ें। समझा जाता है कि 'नेशनल फ्रान्ट' कम्युनिस्ट दल का अख़बार था, किंतु कहते हैं कि इसके बन्द हो जाने के बाद से साइक्लोस्टाइल पर इसका कम्युनिस्ट नामक एक अख़बार निकलता है। १९४० के स्वतंत्रता दिवस पर दल की ओर से कुछ गुप्त पर्चे निकले थे, जिनकी पुलिस को बड़ी तलाश है। कम्युनिस्ट दल चाहता है कि जल्दी से जल्दी कांग्रेस की ओर से राष्ट्रीय युद्ध का ऐलान हो, किन्तु यदि कांग्रेस का वर्तमान नेतृत्व युद्ध

नहीं छेड़ता या एक पैबंददार (patched) समझौता कर लेता है, उस हालत में वह क्या करेगा, स्पष्ट नहीं हुआ। शायद रामगढ़ में यह बात स्पष्ट हो, या उसके भी बाद कुछ दिन लगें।

कम्युनिस्टों के साथ कांग्रेस समाजवादियों का पटना अब कठिन जान पड़ता है। कामिन्टर्न की कोई शाखा गंभीरता के साथ गांधीवाद में विश्वास प्रकट करे या गान्धी जी के नेतृत्व के लिए सब हथियार त्याग दे, यह कल्पना करना कठिन है। यदि कांग्रेस का नेतृत्व युद्ध न छेड़कर और कुछ करता है तो उस समय और वामपक्षी दलों की तरह कम्युनिस्ट दल को एक जीवन मरण संकट का सामना करना पड़ेगा। कम्युनिस्ट दल का अब तक का रवैया अच्छा रहा है, भविष्य आगे के रवैये पर है। कम्युनिस्ट दल के लोग दावा करते हैं कि उनकी एक ऐतिहासिक ज़िम्मेंदारी है, हो सकता है हो, किन्तु यह ज़िम्मेंदारी कैसे पूरी होगी, यह देखना है। कम्युनिस्ट पार्टी के ही ज़रिये से क्रान्ति होगी, यह एक दावा ही है।

गुप्त संस्था

एक गुप्त संस्था होने के कारण यह कहना कठिन है कि इस दल के मुख्य नेता कौन हैं, फिर भी समझा जाता है कि कामरेड जोशी इसके प्रधान मंत्री है, और डाँगे, घोष, मुज़फ़्फ़र अहमद, भारद्वाज मुख्य नेता हैं। ये इस दल के नेता हों या न हों इसमें सन्देह नहीं कि ये लोग बड़े तपे हुए नेता हैं। यद्यपि इनमें से कोई भी बहुत नामी नहीं हैं, फिर भी आशा है, जिस दल में ऐसे लोग हों उसका भविष्य उज्ज्वल है। कम्युनिस्ट दल के ऊपर इस समय सारी दुनियाँ में रोक लग लग रही है. भारत के कम्युनिस्ट भी एक-एक कर के जेल जा रहे हैं। रामगढ़ में ये संग्राम का पक्ष लेंगे किंतु किस प्रकार, यह देखना है।

अखिल-भारत-रियासती-प्रजा-परिषद्

(All India State's Peoples Conference)

भारतवर्ष की लगभग एक तिहाई भूमि और एक चौथाई जन-संख्या देशी रियासतों के अधीन समझी जाती है। ये रियासतें क़रीब ५-६ सौ की संख्या में समस्त देश भर में फैली हुई हैं। इनमें से कुछ तो काश्मीर और हैदराबाद की तरह लम्बी चौड़ी और बड़ी हैं, जिनकी आमदनी करोड़ों रुपये साल तक पहुँचती है, और कुछ यहां तक छोटी हैं कि उनकी माली हैसियत एक मामूली ज़मींदार के बराबर भी नहीं* है। दो-एक इनी-गिनी रियासतों को छोड़ शेष सब में इस समय जो निरंकुश और अंधकारमय शासन क़ायम है वह इस बीसवीं सदी में भी हमें अठारहवीं शताब्दी की याद दिलाता है। केवल एक व्यक्ति की मनचली इच्छा पर सारी प्रजा का दुःख-सुख, मान-मर्यादा, जीवन और



(डा० पट्टाभि सीतारामैया)

*सब से छोटी रियासत गुजरात में बिल्वारी है, जिसमें केवल २७ मनुष्य रहते हैं और मालगुज़ारी ८०) रु० साल है।

मरण सब कुछ निर्भर है। ग़रीबी और अविद्या वैसे तो समस्त देश में छाई है, किंतु जो करुणीय दृश्य इन रियासतों में मौजूद है, उसका अंदाज़ा बिना देखे नहीं लग सकता। इस पर भी दिन-रात की मन-मानी लूट, अत्याचार और बेइन्साफ़ी, जिसमें राजा से लेकर चौकीदार तक शामिल रहता है, इन रियासतों की दशा को बेहद गंभीर बनाये हुए हैं।

ब्रिटिश सरकार अपनी संधियों और इक़रारनामों का बहाना लेकर इनके आन्तरिक शासन में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझती, कारण कि इससे उसका दोहरा मतलब सिद्ध होता है। इससे न केवल वह देशी शासन की अपेक्षा ब्रिटिश शासन की श्रेष्ठता को ही दुनियां की आंखों में सिद्ध करती है, बल्कि इस के द्वारा वह इन निकम्मे राजाओं को अपने हाथ का कठपुतला भी बनाये रखती है। हाँ, जब कभी स्वयं उसका स्वार्थ बीच में आ पड़ता है, तब अवश्य वह इन संधियों या इक़रारनामों का अर्थ उस ढंग से लगाने की चिंता नहीं करती। पद-च्युत महाराज नाभा इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

फिर भी प्रकृति का शासन ब्रिटिश शासन से कहीं ज़्यादा ताक़तवर है। जनसत्तात्मक भावों की जो युगांतरकारी लहर इस समय दुनिया के एक छोर से दूसरे छोर तक दौड़ रही है, जिसने रूस के ज़ार को मार कर जर्मनी के क़ैसर को देश निकाला दे दिया और जो आज भोले भाले भारतीयों की स्त्रियों तक को स्वाधीनता संग्राम में पुलीस की लाठियां खाना सिखला रही है, वह अपना असर इन देशी रियासतों की प्रजा पर न दिखावे यह मुमकिन न था। सन् १९२१ के देश-व्यापी असहयोग के आन्दो-लन ने तथा सन् १९३०-३२ की सत्याग्रह-लड़ाइयों के दृश्य और उन से होने वाली सफलता ने यहां की रियासती प्रजा को भी बरबस जगा दिया और उसे भी अपनी स्थिति पर विचार करने के लिए मजबूर कर दिया। निदान जगह-जगह पर रियासती प्रजामंडलों और जन-सभाओं

का जन्म होने लगा। ब्रिटिश भारत के प्रांतों से भी इन्हें पूर्ण सहानुभूति और सहयोग प्राप्त हुआ, जिससे यह आन्दोलन शीघ्र ही सार्वदेशिक बन गया। परिणाम में अखिल-भारत-रियासती-प्रजा-परिषद् (अथवा आल-इन्डिया-स्टेट्स पीपुल्स-कान्फ़रेंस) का भी जन्म हुआ, जिसका संक्षिप्त परिचय हम नीचे देने जा रहे हैं। यह परिषद् यद्यपि अभी केवल बारह, तेरह साल की बच्ची है, किंतु इधर वह जैसी स्फूर्ति और चेतनता दिखाने लगी है उससे जान पड़ता है कि वह भी शीघ्र ही कांग्रेस की तरह मैदान में उतर आयगी और ताल ठोंक कर ललकारने लग जायगी।

संक्षिप्त-विवरण

अधिवेशन

अब तक इस परिषद् के छः अधिवेशन हो चुके हैं। पहिला अधिवेशन दिसम्बर सन् १९२७ में हुआ था। दूसरा मई सन् १९२९ में, तीसरा जून सन् १९३१ में और चौथा जुलाई सन् १९३३ में हुआ। सन् १९३४ के फ़रवरी मास में दिल्ली में उसका एक विशेषाधिवेशन भी किया गया। पांचवां अधिवेशन करांची में जुलाई सन् १९३६ में हुआ और छठवां फ़रवरी सन् १९३९ में लुधियाने में।

परिषद् के जन्मदाताओं और प्रारंभिक कार्यकर्ताओं में से स्वर्गीय श्रीयुत जी० आर० अभयंकर तथा श्री अमृत लाल सेठ के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। जिस समय परिषद् के पास न धन-बल था, न जन-बल था और ऊपर से राजाओं की शत्रुता का भय भी पीछे लगा हुआ था, उस समय इन्हीं दोनों सज्जनों के अनवरत उत्साह और परिश्रम से इस परिषद् का रक्षण, पोषण और वर्द्धन होता रहा।

कांग्रेस का सहयोग

आरंभ से ही परिषद् की ओर से इस बात की चेष्टा होने लगी थी

कि राष्ट्रीय कांग्रेस को अपने पक्ष में लाया जाय और रियासती आन्दोलन का नेतृत्व उसी की देख रेख में किया जाय। किंतु कांग्रेस अब तक देशी रियासतों के मामलों से अपने के बिल्कुल अलग रखती आ रही थी। निदान जब १९२७ में परिषद् का एक डेपुटेशन कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन के समय कांग्रेसी नेताओं से मिला तो उसे केवल इतनी ही सफलता हुई कि कांग्रेस के प्रस्तावो में एक प्रस्ताव देशी रियासतों के सम्बंध में भी जोड़ दिया गया, जिसके द्वारा भारतीय नरेशों से इस बात के लिए ज़ोर दिया गया था कि ज़माने की रफ़्तार को देखते हुए अब उन्हें भी अपने अपने राज्यों में जनतंत्र-शासन क़ायम करना चाहिए। यह प्रस्ताव तब से आगे के अधिवेशनों में भी कांग्रेस बराबर दोहराती आ रही है। साथ ही आगे चल कर कांग्रेस के कुछ बड़े बड़े नेताओं ने रियासती आन्दोलन में व्यक्तिगत रूप से भाग भी लेना आरंभ किया। उदाहरणार्थ सरदार पटेल और महात्मा गांधी का राजकोट के मामले में जो महत्वपूर्ण भाग रहा, वह किसी से छिपा नहीं है। इसके अतिरिक्त श्रीयुत पट्टाभि सीतारामैया तथा पं० जवाहर लाल नेहरू ने भी उक्त परिषद् के क्रमशः पांचवें और छठवें अधिवेशन के सभापतित्व का भार ग्रहण कर के इस मामले में बहुत काफ़ी दिलचस्पी दिखाई है।

कार्यों का संक्षिप्त ब्यौरा

परिषद् ने अपने इस १३ वर्ष की अवस्था में क्या क्या कार्य किये उसका संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है :—

(१) सन् १९२७ में रियासतों के सम्बंध में जांच करने और रिपोर्ट देने के लिए भारतमंत्री ने जो तीन अंग्रेज़ों की एक कमेटी सर हारकोर्ट बटलर की अध्यक्षता में नियुक्त की थी उसके निर्माण, उसकी शर्तों और उसकी कार्रवाइयों के विरुद्ध चारों ओर प्रचार और आन्दोलन फैलाया।

(२) देशी राजाओं द्वारा घोषित इस सिद्धांत के विरुद्ध भी

आन्दोलन किया कि राजाओं का सम्बंध भारतीय सरकार से नहीं, बल्कि सीधे सम्राट् से है।

(३) उपर्युक्त बटलर-कमेटी के विरुद्ध ब्रिटिश जनता का ध्यान आकर्षित करने के लिए एक डेपुटेशन भी विलायत भेजा, जिसके सदस्य थे दीवान बहादुर रामचंद्र राव, प्रो० जी० आर० अभयंकर, और श्री पी० एल० चूड्गर। इस डेपुटेशन ने बटलर कमेटी को भी अपना एक मेमोरेन्डम दिया था।

(४) पटियाला-नरेश के अत्याचारों की जो शिकायतें आ रही थीं उनकी जांच करने के लिए एक कमेटी नियुक्त की। इस कमेटी की रिपोर्ट "Indictment of Patiala" के नाम से प्रकाशित हुई और इस संबंध में एक स्वतंत्र जांच के लिए आन्दोलन किया गया।

(५) गोलमेज़ कान्फ़रेंस में भी प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के लिए इस परिषद् ने बहुत कुछ आन्दोलन किया।

(६) जामनगर, जोधपुर, भरतपुर, मेवाड़ आदि में प्रजा पर होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध आन्दोलन किया तथा बीकानेर, गोंडल, झबुआ, आदि के कुशासन के सम्बंध में पैम्फ़लेट भी प्रकाशित किये।

(७) भूपाल, पटियाला, अलवर, बीकानेर, जयपुर, जोधपुर, जामनगर, इदार, गोंडल, ध्रांगधरा आदि रियासतों की दुर्व्यवस्था के सम्बंध में आंकड़े और सामग्री एकत्रित की गयी।

(८) भिन्न-भिन्न इलाक़ों में अपनी शाखा परिषद् क़ायम करने का प्रबंध किया गया।

(९) सन् १९३६ के करांची अधिवेशन के बाद संघटन के काम में अत्यधिक बल और स्फूर्ति पैदा हो गयी। स्वयं सभापति श्री सीतारामैया तथा जनरल सेक्रेटरी श्री बलवंतराय मेहता ने महाराष्ट्र, कर्नाटक और काठियावाड़ की रियासतों में लगातार दौरा किया, सभाएँ बुलायीं, व्याख्यान दिये तथा कितने ही राजाओं से शासन-सुधार कराने के

लिए मुलाक़ातें भी कीं और इस प्रकार जगह-जगह पर परिषद् की शाखाओं, उपशाखाओं को संघटित करके हर प्रकार से उसके काम को बढ़ाया। इसके अतिरिक्त डाक्टर सीतारामैया ने जून सन् १९३७ में ओड़ीसा-प्रजा-परिषद् के प्रथम अधिवेशन के समय, तथा २० नवम्बर १९३७ को कोचीन-प्रजा-परिषद् के अधिवेशन में और २७ नवम्बर १९३८ को त्रावंकोर राजनैतिक कान्फ़रेन्स में भी सभापति की हैसियत से भाग लिया।

(१०) सन् १९३८ तक देश की प्रायः सभी मुख्य-मुख्य रियासतों में एक ज़बर्दस्त जागृति फैल चुकी थी। साथ ही इस जागृति की रफ़्तार को रोकने के लिए अनेकों रियासतों में अत्याचारों के तूफ़ान भी पैदा हो चुके थे, जिन्होंने इस काम में बेहद जीवन डाल दिया और सारे देश का ध्यान रियासती समस्या की ओर हठात् आकर्षित कर दिया। फ़रवरी सन् १९३८ में हरिपुरा कांग्रेस की विषय-निर्वाचनी समिति में जिस समय रियासतों के सम्बन्ध में प्रस्ताव रखा गया तो उस पर पूरे पाँच घंटे तक बहस होती रही और कम से कम १३ संशोधन पेश किये गये। अंत में डा० सीतारामैया का संशोधन स्वीकार कर के प्रस्ताव पास कर दिया गया। इस से जान पड़ता है कि रियासतों के मसले ने इसी समय कितना अधिक महत्व प्राप्त कर लिया था।

आगे चल कर त्रिपुरी कांग्रेस (१०, ११ व १२ मार्च १९३९) में जिस लम्बे प्रस्ताव के द्वारा देशी रियासतों की नवीन जागृति का स्वागत करते हुए कांग्रेसी-नीति की घोषणा की गयी थी उसका निम्नलिखित भाग अत्यंत महत्वपूर्ण है:—

"(कांग्रेसी तटस्थता की) यह नीति केवल परिस्थितियों और उनसे उत्पन्न होने वाली मर्यादाओं का ही ख़याल रखते हुए ज़रूरी समझी गयी थी। कांग्रेस ने इसे अपने ऊपर एक आवश्यक बंधन के

रूप में किसी समय भी नहीं समझा और उसे सदैव इस बात का अधिकार है; बल्कि उसका कर्तव्य भी है, कि वह रियासती प्रजा को रास्ता दिखावे और अपने प्रभाव से उन्हें लाभ उठाने दे। रियासती प्रजा में जो महाजागृति इस समय दिखाई दे रही है, उससे आगे चल-कर संभव है कि कांग्रेस उस पाबंदी को ढीली कर दे या बिल्कुल ही उठा दे, जो उसने अपने ऊपर लगा रक्खी है, और रियासती प्रजा को अपने में मिला लेने के लिए उत्तरोत्तर क़दम बढ़ाने लगे। कार्य-समिति को इस बात का अधिकार दिया जाता है, कि वह समय-समय पर यथा अवसर इस सम्बन्ध में अपने आदेश प्रकाशित करती रहे।

"कांग्रेस इस बात को फिर से दुहरा देना चाहती है कि उसका उद्देश्य सम्पूर्ण भारतवर्ष के लिए पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना है, जिसमें देशी रियासतें भी शामिल हैं। ये रियासतें भारत के ही टुकड़े हैं जो उससे किसी प्रकार अलग नहीं रखे जा सकते। इनको भी राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक स्वतंत्रता की उतनी ही मात्रा मिलना ज़रूरी है, जितनी राष्ट्र के किसी अन्य भाग को।"

इससे सिद्ध है कि रियासतों की वर्तमान हलचल राष्ट्रीय-कांग्रेस को बड़ी तेज़ी के साथ अपनी ओर खींच रही है।

राक्षसी दमन

निरंकुश क़ानून और नागरिक अधिकारों का लोप

यह दुखभरी कथा बड़ी लम्बी है। इसका पूरा विवरण बम्बई में परिषद् के हेड आफ़िस से मिल सकता है। यहां केवल थोड़े से नमूने के तौर पर नाम मात्र गिना देंगे। प्रायः सभी बड़ी रियासतों में नागरिक स्वतंत्रता पर विचित्र पाबंदियाँ लगा दी गयी हैं। यथा ग्वालियर में हर प्रकार की सभा की रजिस्ट्री कराना लाज़िमी है। जोधपुर में केवल छापेख़ानों पर ही नहीं, बल्कि टाइप-राइटरों

तक पर बेड़ियाँ डाल दी गयी हैं। राष्ट्रीय झंडे भी वहाँ नहीं फहराये जा सकते। इस प्रकार मैसोर, मंसा, जामखंडी, मीराज, मालेर, कोटला, इन्दौर, बीकानेर, भूपाल, जाम नगर, लिम्बडी, बाँकानेर, अलवर, भरतपुर आदि प्रायः सभी रियासतों में मनमाने निरंकुश क़ानून गढ़ दिये गये हैं। हैदराबाद ने तो इन सबों को मात कर दिया। वहाँ तो प्राइवेट स्कूल और अखाड़े तक रोक दिये गये। यही नहीं, धार्मिक-स्वतंत्रता पर भी चोटें पहुंचाई गयीं, जिसके परिणाम स्वरूप आर्य सत्याग्रह की वह ज़बर्दस्त लड़ाई पैदा हो गयी जिसने सारे देश को हिला डाला और निज़ाम के घमंडी मस्तक को भी नीचा कर दिया। यहाँ उस्मानिया युनिवर्सिटी के सैकड़ों विद्यार्थी केवल "बन्देमातरम्" गाने के लिए निकाल दिये गये थे। जयपुर ने भी प्रजामंडल पर जो रोक लगायी थी, उसके कारण श्री जमनालाल बज़ाज को मुठभेड़ करनी पड़ी। जमनालाल जी क़ैद किये गये और उससे एक देश-व्यापी आन्दोलन खड़ा हो गया। अंत में जयपुर को भी नीचा देखना पड़ा और जमनालाल जी से समझौता कर लेना पड़ा।

धनकनाल और तलछर की हिजरत

ओड़ीसा के निकट धनकनाल और तलछर की रियासतों में प्रजा पर इतना ज़बर्दस्त अत्याचार किया गया कि क़रीब तीस हज़ार मनुष्य वहाँ से निकल कर ओड़ीसा भाग आये। रियासतों ने प्रांतीय सरकार से इन मनुष्यों को वापस माँगा किंतु वहाँ की काँग्रेसी सरकार ने इन्कार कर दिया।

रानपुर-दुर्घटना

रानपुर की रियासत भी ओड़ीसा में ही है। यहां ब्रिटिश एजेन्ट मेजर बेज़लगेट (Major Bazalgette) की किसी ने हत्या कर दी थी, जिससे भारत सरकार ने वहां मदद के लिए अपनी एक ज़बर्दस्त

सेना रवाना कर दी। बस फिर देखते ही देखते रानपुर उजाड़ कर दिया गया और फ़ौजी राज्य क़ायम हो गया।

राजकोट का मामला

महात्मा गाँधी को आमरण उपवास ने राजकोट के नाम को केवल देश में ही नहीं, बल्कि सारे संसार में प्रसिद्ध कर दिया। यहाँ के ठाकुर साहब ने प्रजा के आन्दोलन करने पर कुछ शासन-सुधार संबंधी प्रतिज्ञाएँ की थीं। ये प्रतिज्ञाएँ सरदार पटेल के बीच में पड़ने से करायी गयी थीं। किंतु शीघ्र ही ये तोड़ दी गयीं। महात्माजी ने इस मामले को अपने हाथ में ले लिया और राजकोट पहुंच कर प्रतिज्ञा-पूर्ति की माँग पेश की; किंतु ठाकुर साहब टस से मस न हुए। तब महात्मा जी ने आमरण-उपवास का व्रत ले लिया, जिससे यह प्रश्न देश भर के लिए गंभीर हो उठा। अंत में वाइसराय ने कुल मामले पर निर्णय देने के लिए फ़ेडरल कोर्ट के प्रधान जज को चुना, जिसे गाँधी जी ने मंज़ूर कर लिया और उपवास छोड़ दिया। प्रधान जज का फ़ैसला गाँधी जी के पक्ष के हुआ, किंतु फिर भी गाँधी जी को इसमें अपनी कुछ भूल मालूम हुई जिससे वह तुरंत ही इस मामले से अलग हो गये।

अन्य रियासतों में सुधार आन्दोलन

इस समय भारत की प्रायः सभी रियासतों में काश्मीर से लेकर मैसोर और त्रावंकोर तक तथा कच्छ और काठियावाड़ से लेकर उड़ीसा तक की रियासतों में उत्तरदायी शासन की मांग ज़ोरों से पैदा हो रही है। मैसोर और त्रावङ्कोर में इसका आन्दोलन बड़े संघटित रूप में चलाया गया। काश्मीर में यह लड़ाई शेख़ मुहम्मद अब्दुल्ला के नेतृत्व में चल रही है। हैदराबाद में भी वहां की कांग्रेस कमेटी ने यह लड़ाई छेड़ दी थी, किंतु आर्य-सत्याग्रह के आरंभ होते ही महात्मा गांधी ने सांप्रदायिकता के भय से उसे तुरंत रुकवा दिया। इसी प्रकार महा-

राष्ट्र, गुजरात, राजपूताना, उड़ीसा आदि की रियासतों में भी यह संग्राम जारी है, जिससे रियासतों के सम्बंध का प्रश्न इस समय तमाम भारतीय प्रश्नों में केन्द्र रूप बन गया है और इसका महत्व हिंदू-मुसलिम प्रश्न के महत्व से कम नहीं जान पड़ता। किंतु राजकोट की घटना के बाद महात्मा गांधी ने अपनी 'न्यू टेकनीक' (New technique) के नाम पर इन रियासतों को सत्याग्रह रोक देने की सलाह दी है।

लुधियाना अधिवेशन और उसके बाद

परिषद् का जो छठवां अधिवेशन ता० १५, १६ और १७ फ़रवरी सन् १९३९ को पं० जवाहर लाल नेहरू के सभापतित्व में हुआ था, उसकी कई एक विशेषताएँ ध्यान देने योग्य हैं। उपस्थिति तो इसमें अन्य अधिवेशनों की अपेक्षा अधिक थीं ही, किंतु जवाहर लाल जैसे व्यक्तित्व के कांग्रेसी नेता को अपना अध्यक्ष चुन कर इस समय परिषद् ने अपना आन्दोलन कांग्रेस की अधीनता में चलाने का जो प्रकट रूप से संकल्प किया वह विशेष महत्वपूर्ण रहा। कांग्रेस ने भी इस सम्बन्ध में त्रिपुरी अधिवेशन के समय अपने कर्तव्यों और अधिकारों की जो घोषणा की थी उसकी चर्चा हम ऊपर कर आये हैं। अस्तु, अब इसमें संदेह नहीं रह जाता कि यह परिषद् शीघ्र ही कांग्रेस में मिल कर उसका एक अंग बन जायगी और उसकी भावी लड़ाई में कांग्रेस की ज़बर्दस्त ताक़त भी काम में लायी जायगी, जो यहां के देशी नरेशों के लिए काफ़ी चेतावनी और उनकी प्रजा के लिए काफ़ी प्रोत्साहन का विषय होना चाहिए।

लुधियाना अधिवेशन में कुल २१ प्रस्ताव पास किये गये थे। इनमें से पहिला महत्वपूर्ण प्रस्ताव तो वही था जिसकी चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। दूसरा छोटी छोटी रियासतों के एकीकरण के विषय में था। उत्तरदायित्व पूर्ण शासन की मशीन स्थापित करने और चलाने के लिए जो ख़र्च आवश्यक होगा वह इन छोटी छोटी रियासतों की समाई के बाहर है। अतएव उक्त प्रस्ताव द्वारा इस बात का निर्देश किया गया

है कि जिन रियासतों की आबादी २० लाख से अधिक न हो या जिन की मालगुज़ारी केवल ५० लाख रुपये तक हो उन्हें शासन की सुविधा के लिए अकेले या सामूहिक रूप से पड़ोस के प्रांतों के साथ मिला दिया जाय। अस्तु, इस प्रस्ताव के अनुसार कार्य होने पर केवल २१ ही रियासतें ऐसी बच जाती है जो अपनी स्वतंत्र सिथिति को क़ायम रख सकती हैं। शेष ५६१ रियासतें प्रांतों में ही समा जायंगी।

अन्य प्रस्तावों में से अधिकांश भिन्न-भिन्न रियासतों में होने वाले अन्याय एवं वहां की परिस्थितियों के संबंध में थे तथा एक प्रस्ताव के द्वारा स्थायी समिति को परिषद् का नया विधान तैयार करने का काम सौंपा गया था। यह विधान समिति ने तैयार कर लिया है और अपने मुख्य-पत्र "स्टेट्स-पीपुल" के जुलाई के अंक में प्रकाशित भी कर दिया है।

कुछ रियासतों में शासन-सुधार

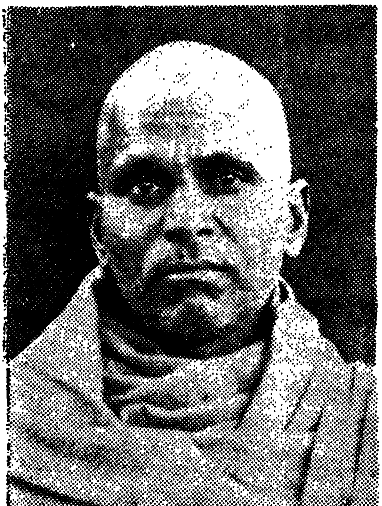
इदार, हैदराबाद, ग्वालियर, बनारस आदि कतिपय रियासतों ने मजबूरी हालत देख कर कुछ सुधार सम्बन्धी खिलौने तैयार किये हैं और उनसे प्रजा को फुसलाने का प्रयत्न किया जा रहा है। किंतु प्रायः सभी जगह प्रजा ने इन सुधारों को अपर्याप्त कह कर अस्वीकार कर दिया है। फिर भी इनमें से एक रियासत ऐसी है जिसने सब से पहिले और बिना माँगे ही अपने यहां पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित कर दिया है। यह रियासत दक्षिण में है और इसका नाम औंध है। औंध के राजा साहब ने आरंभ में ही गाँधी जी से मिल कर और उनकी सलाह लेकर एक शासन योजना तैयार की और उसे अपने यहाँ स्थापित कर दिया। इससे न केवल वे अपनी प्रजा की ही कृतज्ञता के पात्र बने, बल्कि सारे देश की भी श्रद्धा और बधाई के पात्र हो गये। साथ ही अब उनकी स्थिति भी पहिले की अपेक्षा कहीं अधिक सुरक्षित हो गयी। क्या ही अच्छा होता यदि अन्य राजागण भी इन्हीं का अनुकरण किये होते।

अखिल-भारतीय-किसान-कांग्रेस

——:o:——

असंगठित किसान सभाएँ

भारतवर्ष मुख्यतः एक कृषि-प्रधान देश है, किन्तु आश्चर्य है कि किसान आन्दोलन का अखिल-भारतीय रूप १९३५ तक न हुआ।



(स्वामी सहजानन्द जी)

बात यह है कि बहुत दिनों तक किसान नेता इस आशा में रहे कि चूँकि कांग्रेस के अधिकांश सदस्य किसान या कृषिजीवी हैं, इसलिए वह मुख्यतः किसानों के लिये लड़ेगी, किन्तु ऐसा न होते देखकर ही उन्हें किसान सभाओं को एक संगठित रूप देना पड़ा। बहुत से स्थानों पर कांग्रेस स्पष्टतया ज़मीन्दारों के हाथ में थी। यों तो १९३५ के बहुत पहिले किसान-सभाएँ थीं। किसानों के यत्र-तत्र असंगठित दंगे (Agrarian riots) भी हो जाते थे। १९०७ में पंजाब में किसानों में प्रबल

अशान्ति हुई थी, १९२१ तथा उसके पहिले सारे भारतवर्ष में किसानों की इस अशान्ति ने विकट रूप धारण किया था। अवध में किसान नेता बाबा रामचन्द्र का इतना प्रभाव था जितना कि महात्मा जी का भी नहीं था। यह सब अशान्ति के स्फुरण किसी ढङ्ग का नेतृत्व न पाने के कारण या तो ग़लत रास्ते पर बाज़ार आदि लूटने में बिखर गये, या प्राकृतिक मृत्यु से मर गये। बहुत दिनों से एक केन्द्रीय कमेटी की आवश्यकता प्रतीत हो रही थी। किन्तु १९३५ में एक अखिल भारतीय किसान संगठन कमेटी बनी, १९३६ में स्वामी सहजानन्द सरस्वती के सभापतित्व में इसी के उद्योग से "अखिल भारतीय किसान कांग्रेस" का लखनऊ में अधिवेशन हुआ। भारतवर्ष के तमाम प्रांतों से किसान कार्य-कर्त्ता इस अधिवेशन में आये। इसमें 'अखिल-भारतीय किसान-घोषणापत्र' तैयार किया गया। कांग्रेस की कार्य-समिति को यह पत्र ठीक समय पर भेज दिया गया। वह उस समय अपने किसान सम्बन्धी-प्रस्ताव को बनाने ही जा रही थी। साथ ही विधान बनाने के लिये एक कमेटी बनी, और यह तय हुआ कि कामरेड इन्दुलाल याज्ञिक के सम्पादन में एक अखिल-भारतीय कांग्रेस बुलेटिन निकाली जाय।

किसान आन्दोलन का ध्येय

इस कांग्रेस में घोषित हुआ कि "किसान-आंदोलन का उद्देश्य आर्थिक शोषण से पूर्ण छुटकारा प्राप्त करना है, और किसान, मज़दूर तथा शोषितों के लिए सम्पूर्ण राजनैतिक शक्ति प्राप्त करना है। किसान आन्दोलन का प्रधान कर्तव्य किसानों को उनके नज़दीकी आर्थिक तथा राजनैतिक माँगों के लिए संगठित करना है जिससे वे हर तरीक़े के शोषण से मुक्ति के लिए तैयार हों। किसान आन्दोलन का ध्येय यह है कि उत्पादन करने वाली जनता अपने हाथों में पूर्ण स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय जंग में भाग लेकर सारी राजनैतिक शक्ति ले ले।"

ज़मींदारी प्रथा है रोग

लखनऊ कांग्रेस ने भी मान लिया कि किसानों के सारे दुखड़े "मौलिक रूप से ज़मीन के ग़लत पुराने बँटवारे तथा लगान-पद्धति के कारण हैं।" सच बात तो यह है कि ये पद्धतियां बिचारे किसान की हड्डियां निचोड़ कर लगान, सूद तथा सैकड़ों और रूप में ले ली जाती है, और उसके पास केवल खनखनाती हुई पुरानी हड्डियाँ रह जातीं हैं। वर्तमान साम्राज्यवादी सरकार के अधीन इन सारी बातों का इलाज नहीं हो सकता, तभी तो किसान को भी स्वराज्य की ज़रूरत है। इसी प्रकार किसान सभा और राजनीति का मेल हो जाता है। किसान-सभाओं से राष्ट्रीय आन्दोलन को शक्ति मिलती है, किन्तु कुछ राष्ट्रीय नेता इसको इसलिये कम महत्व देते हैं कि उनके नज़दीक स्वराज्य शब्द का अर्थ महज़ भारतीय उच्च श्रेणी का राज्य है।

कम से कम मांगें

किसानों की कम से कम माँगों का संक्षिप्त सार यह है :—

(१) ज़मींदारी प्रथा का नाश हो।

(२) वर्तमान लगान-प्रथा के बजाय ५००) रु० या उससे अधिक खेती से जब आय हो तो उस पर टैक्स हो। इससे कम आय वाले क़तई टैक्स से बरी हों।

(३) पुराने ऋणों से तथा सूद से किसान को छुटकारा हो, साथ ही किसान को उधार देने की व्यवस्था की जाय।

(४) खेतहीन किसानों को खेत दिये जायँ।

अभी जिन माँगों के लिए आन्दोलन किया जायगा वे यह हैं—

(१) तमाम बाक़ी लगान रद्द कर दिया जाय।

(२) आबपाशी तथा लगान में कम से कम ५० फ़ी सदी कमी हो।

(३) फ़सल ख़राब होने पर लगान माफ़ हो।

(४) बेगार, नज़राना आदि हर प्रकार का नाजायज़ देना ग़ैर-क़ानूनी हो जाय।

(५) ज़मींदारों की आय पर इनकम टैक्स तथा मृत्यु-कर लगे।

(६) लगान, सूद आदि न दे सकने पर किसान गिरफ़्तार न हो। इत्यादि।

कांग्रेस सरकारों ने इनमें से कुछ बातों को व्यावहारिक रूप में लाने की कोशिश की है।

दूसरी किसान कांग्रेस

दूसरी किसान कांग्रेस फ़ैज़पुर में १९३६ में अध्यापक एन० जी रंगा के सभापतित्व में हुई, इस अवसर पर ४०,००० किसान आये, जिनमें से बहुतेरे बहुत दूर से चल कर आये थे। कहा जाता है कि इसी कांग्रेस का यह असर हुआ कि फ़ैज़पुर में किसानों की मांगों के संबंध में एक प्रस्ताव हुआ। चुनाव सिर पर थे। आन्ध्र रैयत सभा की ओर से किसानों के हित का एक प्रतिज्ञापत्र एन० जी० रंगा ने प्रकाशिक किया, जिन पर यह उम्मीद की जाती थी कि उम्मीद-वारगण ख़ुशी से दस्तख़त करेंगे और कुछ लोगों ने कर भी दिया, किन्तु उधर से सर्दार वल्लभभाई पटेल ने यह हुक्मनामा निकाला कि इस प्रतिज्ञा-पत्र को वापस कर लिया जाय; नहीं तो अनुशासन की कार्रवाई की जायगी। फलस्वरूप यह प्रतिज्ञापत्र वापस ले लिया गया, बाद को आन्ध्र प्रान्तीय रैयत-सभा बेज़वाड़ा में यह बात आयी तो उसने अध्यापक रंगा के इस प्रतिज्ञापत्र को वापस लेने के कार्य को सराहा, साथ ही सर्दार वल्लभाई पटेल की निन्दा की कि ऐसा हुक्म क्यों दिया।

किसानों के महान् नेता स्वामी सहजानंद ने इस प्रतिज्ञापत्र पर वक्तव्य देते हुए कहा—"सौभाग्य से अखिल-भारतीय-किसान कमेटी की ओर से यह प्रतिज्ञापत्र नहीं निकाला गया था, नहीं तो सर्दार की

लाल पीली आँखों का कोई असर नहीं होता और उन्हें लेने के देने पड़ जाते। संभव है, उनकी इस डिक्टेटरी के लिए कांग्रेस को गहरा नुक़सान उठाना पड़ता।"

किसान सभाओं के कार्यों के फलस्वरूप इसके विषय में भारत से बाहर भी जिज्ञासा उत्पन्न हुई। मैंचेस्टर गार्जियन में तथा अन्य विलायती पत्रों में किसान आन्दोलन के संबंध में लेख प्रकाशित हुए। देश में जगह जगह किसानों ने ज़मींदारों के विरुद्ध सफल सत्याग्रह किये।

नियामतपुर-अधिवेशन

नियामतपुर अधिवेशन में लाल झंडे पर बहस हुई, किंतु कोई निर्णय नहीं हुआ। बाद को अखिल-भारतीय-किसान-कमेटी ने लाल झंडे को ही किसानों के झंडे के रूप में ग्रहण किया; यद्यपि पंडित जवाहरलाल जी ने किसान नेताओं के सामने राष्ट्रीय झंडे को ही किसान झंडा रूप में मान लेने के लिये कहा था।

किसान-सत्याग्रह

हर साल इसके बाद किसान सभा के अधिवेशन हुए, किन्तु शायद इन से कहीं बढ़कर महत्वपूर्ण किसानों के वे सत्याग्रह हुए जो अमृतसर, मँग्रोल, झाँसी, मुनागला, तिरूबुर में हुए। इतना होने पर भी किसान आन्दोलन सब से तगड़ा बिहार में है, यह स्वामी सहजानंद के व्यक्तित्व तथा अथक परिश्रम की बदौलत है। रियासतों में तो कई जगह रियासती प्रजा का आन्दोलन और किसान आन्दोलन एक ही रूप में आया। उड़ीसा में नीलगिरि सत्याग्रह ऐसा ही था। श्री राहुलसांकृत्यायन ने कई बार किसान-सत्याग्रह में क़ैद काटी। सच बात तो यह है कि किसान सभाएँ, अभी अच्छी तरह उन्नत तथा क्रियाशील न हुईं, नहीं तो वे कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो जातीं।

कांग्रेस-मंत्रिमंडलों के ज़माने में कांग्रेस ने किसानों के लाभ के बहुत से काम किये। उनकी बक़ाया लगान की माफ़ी हो गयी और

एक महत्वपूर्ण क़ानून "क़ानून क़ब्ज़ा आराज़ी" पास किया गया, जिससे लगान आदि में कमी होने के साथ साथ ज़मीन पर भी उनका स्थायी अधिकार हो गया है। फिर भी किसान सभाएँ कमज़ोर हैं। यदि किसान सभाएँ अपना संगठन मज़बूत बनालें तो किसान लोग और भी अधिक अधिकार प्राप्त कर सकते हैं।

आगामी अधिवेशन

आगामी ईस्टर की छुट्टियों में सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री राहुल सांस्कृ-त्यायन के सभापतित्व में अखिल-भारतीय-किसान-सभा का पंचम अधिवेशन होगा। यह अधिवेशन आन्ध्र के पलाश नामक स्थान में होगा।

सर्वेन्ट्स आफ् दि पीपुल्स सोसाइटी, लाहौर

यह संस्था भी देखने में सर्वेन्ट आफ़ इंडिया सोसाइटी के ही ढंग की है। किंतु इसके जन्मदाता थे गरम-दल के प्रसिद्ध नेता और पंजाब के वीर केसरी श्री लाला लाजपतराय। अतएव स्वाभावतः इसके राजनैतिक विचार देश की वर्तमान प्रगति के बिलकुल अनुकूल हैं। सन् १९२१ में उक्त लाला जी ने लाहौर में इसकी स्थापना की थी। इसका उद्देश्य रखा गया, "राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा शिक्षा-संबंधी क्षेत्रों में मातृभूमि की सेवा के हेतु सुशिक्षित और होनहार नवयुवकों को तैयार करना।" इस प्रकार मिलान करने से मालूम होगा कि जहां तक उद्देश्य से संबंध है, पूना की सर्वेन्ट्स आफ़ इंडिया सोसाइटी से इसमें कुछ विशेष अंतर नहीं है। सामाजिक कार्य शैली में भी दोनों में बहुत कुछ समानता ही दीखती है। किंतु राजनैतिक कार्य-क्षेत्र में इन दोनों संस्थाओं के बीच आकाश पाताल का अंतर है। जो अंतर लिबरल फ़ेडरेशन और कांग्रेस के बीच दिखाई देता है, बस वही इन दोनों संस्थाओं में भी है। सर्वेन्ट्स आफ़ दि पीपुल्स सोसाइटी की राजनैतिक सेवाएँ नित्य कांग्रेस के ही कार्य-क्षेत्र में हुआ करती हैं और इसके सभी सदस्य प्रायः कांग्रेसी हैं।

विधान

इसका विधान भी वास्तव में 'सर्वेन्ट्स आफ् इन्डिया सोसाइटी' के

ही आधार पर तैयार किया गया है, और उससे प्रायः हर एक बात में मिलता-जुलता है। लाला जी के बाद से सभापति का—जिसे डायरेक्टर भी कहते हैं—चुनाव हर तीन साल के बाद हुआ करता है और वही कार्य-समिति के साथ मिलकर सोसाइटी के कुल कामों का प्रबंध करता है। कार्य-समिति में ३ से लेकर ५ मेम्बर तक हो सकते हैं, जो साधारण सदस्यों की ओर से दो साल के लिए चुन लिये जाते हैं। सोसाइटी के मंत्री की नियुक्ति कार्य-समिति स्वयं अपने ही सदस्यों में से किया करती है। इस समय सोसाइटी के डायरेक्टर श्रीयुत पुरुषोत्तम दास जी टंडन हैं, जो संयुक्त प्रांतीय असेम्बली के अध्यक्ष भी हैं, तथा मंत्री लाला मोहन लाल जी हैं। इसका हेडआफ़िस लाजपतराय भवन, लाहौर है।

सदस्यों की भर्ती

सदस्यों की भर्ती केवल कार्य-समिति की सिफ़ारिश और डायरेक्टर की मंज़ूरी से ही हो सकती है। भर्ती के समय हर एक सदस्य को एक प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करना पड़ता है, जिसकी शर्तों के अनुसार :—

(क) उसे २० वर्ष के लिए सदस्य होना पड़ता है और इस बीच में उसे सदैव सोसाइटी की हितवृद्धि के लिए पूर्ण उत्साह के साथ सेवा करते रहना लाज़िमी है। वह कोई ऐसा काम नहीं कर सकता जो सोसाइटी के हितों या उद्देश्यों के विरुद्ध हो।

(ख) उसके और उसके कुटुम्ब के गुज़ारे मात्र के लिए जो कुछ मासिक-वृत्ति सोसाइटी निश्चित करेगी, उसीसे उसको संतोष करना पड़ेगा। धन कमाने के लिए वह अपनी शक्ति का कोई उपयोग नहीं कर सकता।

सोसाइटी के सदस्य बनने के लिए ग्रेजुएट होना या कम से कम उतनी योग्यता रखना ज़रूरी है। सदस्य होने के पहिले कुछ समय

उम्मेदवारी में भी बिताने के लिए कहा जा सकता है। सदस्य हो जाने के बाद तीन वर्ष ट्रेनिङ्ग में रहना पड़ता है। सदस्यों के अतिरिक्त सोसाइटी के साथ में काम करने वाले या सहायता देने वाले कुछ व्यक्ति भी नियुक्त किये जाते हैं, जिन्हें एसोशियेट (Associates) तथा असिस्टेन्ट (Assistants) कहते हैं। किंतु इन्हें सोसाइटी के प्रबंध-कार्य में किसी प्रकार का स्वत्व नहीं प्राप्त रहता।

सदस्यों की मासिक वृत्ति और छुट्टियां

उम्मेदवारी के समय मासिक वृत्ति ४०) रु० मिलती है। ट्रेनिङ्ग काल में भी प्रथम वर्ष ४०) रु०, और फिर दो वर्ष तक ४५) मासिक मिलता है। इसके अतिरिक्त ट्रेनिङ्ग पाने वाला यदि विवाहित है तो उसे १०) रु० भत्ता भी दिया जाता है। ट्रेनिङ्ग समाप्त हो जाने पर अविवाहित सदस्य को प्रथम पांच वर्ष तक ५०) रु०, फिर अगले पांच वर्ष तक ६०) रु०, और तत्पश्चात् ६५) रु० मासिक वृत्ति मिलती है। किन्तु यदि वह विवाहित है, तो उसे प्रथम पांच वर्ष तक ६५) रु० और तदुपरांत ७५) रु० मासिक मिलेंगे। इसके अतिरिक्त हर एक पूर्ण सदस्य को बच्चों के लिए भी अलग भत्ता मिलता है, जो ७) रु० प्रति बच्चे के हिसाब से केवल तीन बच्चों तक के लिए मिल सकता है। साथ ही सोसाइटी का मकान भी रहने के लिए मुफ़्त में मिलता है और यदि मकान न हो तो उसका किराया ट्रेनिङ्ग-काल में १५) रु० माहवार और उसके बाद २४) रु० माहवार के हिसाब से मिलता है। भरती होने के समय हर एक सदस्य का जान बीमा भी ४०००) रु० का करा दिया जाता है।

सदस्यों को छुट्टियां डेढ़ महीना प्रिविलेज (रियायती) १ महीना बीमारी के लिए, और १८ दिन कैजुअल (आकस्मिक) मिल सकती है, किन्तु साल में वह तीन महीने से अधिक छुट्टी नहीं ले सकता। सहायक एसोशियेट लोगों को १ महीना प्रिविलेज, १ महीना बीमारी

के लिए तथा १५ दिन कैज़ुअल छुट्टी दी जाती है। छुट्टियों की मंज़ूरी सभापति ही दे सकता है।

सोसाइटी की शाखाएँ

इसकी शाखाएँ अमृतसर, मेरठ, कानपुर, इलाहाइाबाद, कटक, और भावनगर में क़ायम हैं। अमृतसर शाखा में श्री अमरनाथ विद्यालंकार, मेरठ में श्री अलगू राय, कानपुर में श्रीहरिहरनाथ और कटक में श्री लिंगराज मुख्याधिकारी हैं। लाहौर और मेरठ में सोसाइटी के पास निज का मकान है; और कटक में भी श्री गोपबंधुदास की स्मृति में इसके लिए एक मकान बनाने की योजना की जा रही है। श्रीयुत टंडन जी, ने इसी के हेतु चन्दा एकत्र करने के लिए सन् १९३५ के मार्च और अप्रैल महीने में उड़ीसा का दौरा किया था, जिसमें १५०००) रु० के वचन मिले थे।

पुस्तकालय

सोसाइटी की ओर से लाहौर में "द्वारकादास लाइब्रेरी," झेलम में "लाजपत राय लाइब्रेरी" स्थापित है। 'द्वारिकादास लाइब्रेरी' आरंभ में केवल लाला जी की निजी १००० पुस्तकों से खोली गयी थी। शीघ्र ही इसने तेज़ी के साथ उन्नति की। सन् १९३८ के अंत में इसके पास ग्रंथों की संख्या २२,८४० तक पहुँच चुकी थी। विशेष कर इसमें राजनीति, अर्थशास्त्र, तथा इतिहास-संबंधी पुस्तकें ही अधिक हैं। इस पुस्तकालय में इस समय १८ दैनिक, ३० साप्ताहिक तथा १५ मासिक पत्र-पत्रिकाएँ भी आया करती हैं।

झेलम की लाइब्रेरी में १०७५ पुस्तकें हैं और ६ दैनिक, २ साप्ताहिक, तथा २ पाक्षिक पत्र आते हैं। इस लाइब्रेरी का मकान भी निजी है, जो १०००) रु० की लागत से तैयार हुआ है।

पत्र-पत्रिकाएँ

उड़ीसा का प्रसिद्ध दैनिक उड़िया पत्र "समाज" और उसी का

प्रेस "सत्यवादी प्रेस" श्रीयुत गोपबंधु दास से सोसाइटी को वसीयत में मिले हैं। इसका संपादन श्री लिंगराज मिश्र और राधानाथ रथ कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त कानपुर का "मज़दूर" सक्कर का 'कांग्रेस' तथा "साम्यवाद" "क्रान्ति" और "बंदे मातरम्" भी सोसाइटी के ही सदस्यों के सम्पादकत्व में निकल रहे हैं।

सेवाएँ

राजनैतिक सेवाओं में सोसाइटी के सदस्य प्रायः कांग्रेस के ही अंगीभूत होकर यत्र तत्र काम कर रहे हैं। पंजाब में ला० अचिंतराम, छबीलदास, जगन्नाथ, पं० अमरनाथ विद्यालंकार तथा सज्जनसिंह, यू० पी० में श्री० टंडन जी, लाल बहादुर शास्त्री, हरिहर नाथ शास्त्री, अलगूराय शास्त्री, मोहन लाल गौतम तथा श्री राजाराम; उड़ीसा में श्री लिंगराज; बम्बई में श्री बलवंतराय मेहता; और सिंध में श्रीसेवकराम कांग्रस के ही कार्यों में हाथ बँटा रहे हैं। रियासिती प्रजा के आंदोलन में श्री बलवंत राय मेहता का भाग मुख्य रूप से रहता आया है।

सामाजिक क्षेत्र में लाला लाजपतराय ने सन् १९२४ में एक अछूतोद्धार मण्डल क़ायम किया था। तब से इस सोसाइटी के सदस्य हरिजन सेवा में अत्यधिक भाग लेने लगे। इस समय पंजाब में ला० मोहनलाल और श्रीअमरनाथ विद्यालंकार, यू० पी० में श्री अलगूराम शास्त्री, और उड़ीसा में श्री लिंगराज मिश्र हरिजन सेवा में विशेष रूप से संलग्न हैं। इसके अतिरिक्त सहयोग-सोसाइटी, मजदूर-संगठन किसान संगठन, बाढ़ एवं दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सहायता तथा सन् १९३५ में क्वेटा के भूकंप के समय भी सोसाइटी की ओर से प्रशंसनीय कार्य किया गया है।

सोसाइटी में इस समय कुल १२ सदस्य, २ सहायक, और ३ एसोशियेट मेम्बर हैं। इसका उद्घाटन ९ नवम्बर १९२१ को महात्मा गांधी के शुभ करों से हुआ था।

सर्वेन्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी, पूना

(Servants of India Society, Poona)

यह संस्था ता० १२ जून १९०५ को स्थापित हुई थी। इसके जन्मदाता स्वर्गीय श्री गोपाल कृष्ण गोखले तथा उनके तीन अन्य साथी—श्री एन० ए० द्राविड़, श्री ए० वी० पटवर्धन, तथा श्री जी० के० देवधर—थे। इस संस्था का उद्देश्य आरंभ में "लोगों को राजनैतिक शिक्षा एवं आन्दोलन के लिए तैयार करना तथा भारतीयों के राष्ट्रीय हितों की सब प्रकार के वैध उपायों द्वारा वृद्धि करना" निश्चित किया गया था। किंतु आगे चलकर इसमें कुछ शाब्दिक हेरफेर किये गये, जिससे उसका रूप अब इस प्रकार हो गया है :—



(श्री गोपाल कृष्ण गोखले)

"इस संस्था का उद्देश्य ऐसे देश सेवकों को तैयार करना जो देश सेवा को ही अपना धर्म

समझें और तमाम वैध उपायों से भारतवासियों के हितों की वृद्धि करना है।"

उपर्युक्त दोनों उद्देश्यों के वाक्यों को मिलान करने से जान पड़ेगा कि इस संस्था का उद्देश्य अब अधिक विस्तृत कर दिया गया है। किंतु दोनों ही में 'वैध उपायों' का उल्लेख छूटने नहीं पाया; कारण कि नरम दल की राजनीति का यही एक आधारस्तंभ है।

विधान

इस संस्था में चार प्रकार के सदस्य होते हैं:—(१) प्रथम सदस्य जिसे प्रेसिडेन्ट या अध्यक्ष भी कहते हैं; (२) वाइस प्रेसिडेन्ट या उप-सभापति; (३) साधारण सदस्य; तथा (४) ट्रेनिंग पाने वाले सदस्य। सम्पूर्ण अधिकार प्रेसिडेन्ट के हाथ में रहता है, जिसकी सहायता के लिए एक कौंसिल भी होती है। इस कौंसिल में प्रेसिडेन्ट के अतिरिक्त उपसभापति; तथा भिन्न भिन्न शाखाओं के सीनियर मेम्बर और साधारण सदस्यों की ओर से चुने हुए तीन अन्य सदस्य हुआ करते हैं। प्रेसिडेन्ट इसी कौंसिल की सहायता से सोसाइटी के उपनियमों (by laws) के अनुसार उसका कुल प्रबंध करता है।

सदस्य

सोसाइटी में नये मेम्बरों की भर्ती केवल कौंसिल की सिफ़ारिश और प्रेसिडेन्ट की मंज़ूरी से ही की जा सकती है। हर एक मेम्बर को भर्ती होने पर पाँच साल तक ट्रेनिंग में रहना पड़ता है, जिसमें से तीन साल तक पूने में और शेष दो साल कहीं बाहर रहना होता है। ये पाँच साल उसकी अस्थायी सदस्यता के होते हैं। इसके पश्चात् उसकी गणना साधारण सदस्यों में होने लगती है। इस समय सोसाइटी के कुल मिला कर ३२ सदस्य हैं, जिनमें से २७ साधारण हैं और ५ ट्रेनिंग पाने वाले। हर एक सदस्य जीवन भर के लिए सदस्य हुआ करता है। श्रीयुत पं० हृदयनाथ कुंज़रू सोसाइटी के वर्तमान प्रेसिडेन्ट हैं और श्री

युत एन० एम० जोशी इसके वाइस प्रेसिडेन्ट। इनके पहिले सोसाइटी के तीन प्रेसिडेन्ट और हो चुके हैं—श्रीयुत गोपाल कृष्ण गोखले और श्रीयुत श्रीनिवास शास्त्री तथा श्री देवधर। प्रेसिडेन्ट अपने अधिकार उपसभापति को भी दे सकता है। मंत्री की नियुक्ति साधारण सदस्यों में से की जाती है।

प्रतिज्ञाएँ

हर एक सदस्य को भर्ती होने के समय निम्न-लिखित सात प्रतिज्ञाएं करनी पड़ती हैं:—

(१) मेरे विचारों में स्वदेश के लिए सब से पहिला स्थान रहेगा और मुझमें जो कुछ भी उत्तमता है वह सब देश सेवा के लिए समर्पित होगी।

(२) देश की सेवा में मैं कोई प्रयत्न अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए हर्गिज़ न करूंगा।

(३) मैं सब भारतवासियों को अपना भाई समझूँगा और बिना किसी जाति पांति का भेदभाव रखे सब की उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहूंगा।

(४) मेरे और मेरे कुटुम्ब के गुज़ारे के लिए सोसाइटी जो कुछ प्रबंध कर देगी, उसी से मैं संतुष्ट रहूंगा। अपने लिए धन कमाने के काम में मैं अपनी शक्ति का खर्च बिल्कुल नहीं करूँगा।

(५) मैं बिल्कुल शुद्ध जीवन व्यतीत करूँगा।

(६) मैं किसी से अपना व्यक्तिगत झगड़ा न पैदा करूँगा।

(७) मैं सोसाइटी के उद्देश्यों को सदैव अपने सामने रखूँगा और उसके कार्य को बढ़ाने के लिए भरसक प्रयत्न करता हुआ उसकी हित-रक्षा में सदैव सतर्क रहूंगा। मैं कभी कोई ऐसी बात न करूँगा जो सोसाइटी के उद्देश्यों के विरुद्ध हो।

भर्ती होने और ट्रेनिंग में लिये जाने के पहिले हर एक मनुष्य को

कुछ समय बतौर 'प्रोबेशन' या परीक्षण काल के भी बिताना पड़ता है, जिसमें अनुपयुक्त सिद्ध होने पर वह भर्ती नहीं किया जाता। इसके अतिरिक्त परमानेन्ट असिस्टेन्ट, अटेशे (attaches) और एसोशियेट (associates) के नाम से भी कुछ सेवक काम किया करते हैं; किंतु ये सोसाइटी के सदस्य नहीं होते। केवल उसके कामों में सहायता दिया करते हैं।

सदस्यों के लिए मासिक वृत्तियां, भत्ता और छुट्टियां

ट्रेनिंग-काल में प्रथम दो वर्ष तक सदस्यों को ६५) रुपये माहवार और पिछले ३ साल तक ७५) रु० माहवार वृत्ति मिलती है। ट्रेनिंग के बाद साधारण सदस्य बन जाने पर मासिक वृत्ति की यह रक़म प्रथम पाँच वर्ष तक ९०) रु०, दूसरे पाँच वर्ष तक ११०) रु०, और उसके उपरांत १२५) रु० हो जाती है।

मासिक वृत्ति के अतिरिक्त हर एक सदस्य को सोसाइटी की तरफ़ से रहने के लिए मकान भी मिलता है और यदि मकान न हो तो किराये के लिए १५) रु० बम्बई में, और १०) रु० अन्य स्थानों में भत्ता दिया जाता है।

प्रोबेशनरों को ५०) और परमानेन्ट असिस्टेन्टों को ५०) रु० से लेकर ६०) रु० तक वृत्ति दी जाती है। इसके अतिरिक्त कठिन बीमारी की हालत में मेम्बरों को डाक्टरी फ़ीस तथा दवा का मूल्य भी सोसाइटी की तरफ़ से ही मिलता है।

छुट्टियां हर एक सदस्य को ट्रेनिंग काल में दो महीने की और उसके बाद केवल एक महीने की प्रतिवर्ष दी जाती है। इसके अतिरिक्त साल में २० दिन की "कैजुअल" छुट्टी भी मिलती है।

सदस्यों का जान-बीमा

भर्त्ती होने के समय सोसाइटी की तरफ़ से हर एक सदस्य का ३०००) रु० का जानबीमा भी करा दिया जाता है, जिसकी रक़म सदस्य के मरने पर उस व्यक्ति को दिला दी जाती है, जिसे वह वसीयत कर गया हो। वसीयत न होने पर उसके कुटुम्बियों में से ऐसे लोगों को यह रक़म मिलती है, जिन्हें देना प्रेसिडेन्ट और कौंसिल की राय में उचित समझा जाय।

सोसाइटी की शाखाएँ और उपशाखाएँ

सोसाइटी का हेडआफ़िस पूना में है और शाखाएँ बम्बई, मद्रास, नागपुर और इलाहाबाद में हैं। इनके अतिरिक्त इसकी उपशाखाएँ भी लाहौर, लखनऊ, मुरादाबाद, सर्सा (यू० पी०) कटक, चौद्वार (ओड़ीसा), जलगांव, शिंदूर्जना (बरार में), अमरेली (काठियावाड़), मायानूर, कालीकट, और मँगलोर में खुली हुई हैं। हर एक शाखा का प्रबंध वहाँ के सीनियर मेम्बर के अधिकार में रहा करता है। इस समय बम्बई शाखा के सीनियर मेम्बर श्री एन० एम० जोशी, नागपुर के श्री एन० ए० द्राविड़, इलाहाबाद के श्री हृदयनाथ कुंज़रू, पूना के श्री ए० वी० पटवर्धन, तथा मद्रास के श्री वी० वेंकट सुब्बय्या सीनियर मेम्बर हैं। हर एक सीनियर मेम्बर सोसाइटी की कौंसिल का 'एक्स आफ़िशो" मेम्बर समझा जाता है।

सेवाएँ

आरंभ में इस सोसाइटी का मुख्य उद्देश्य राजनैतिक था। देश की राजनैतिक समस्याओं का विधि-पूर्वक अध्ययन करके यहाँ के राजनैतिक मामलों में यथोचित रूप से भाग ले लेने और केवल वैध उपायों द्वारा शासन-सम्बन्धी-सुधार करवाने की इच्छा से ही वास्तव

में इसका संघटन किया गया था, और जब तक देश की राजनीति और कांग्रेस की बागडोर नरम दल वालों के हाथ में बनी रही, तब तक इस के सदस्य भी यहाँ के राजनैतिक मामलों में बराबर भाग लेते रहे। किंतु इधर बीस वर्षों से देश की राजनीति इन लोगों से कहीं ज़्यादा आगे बढ़ गयी है। अतएव इनके पुराने राजनैतिक विचार और इनकी वैध-आन्दोलन वाली पुरानी नीति अब प्रायः बेकार सी दिखाई देती है। निस्संदेह इनके राजनैतिक विचारों का दिग्दर्शन अब भी समय-समय पर लिबरल फ़ेडरेशन की वार्षिक रिपोर्टों अथवा कुछ समाचार-पत्रों के द्वारा हो जाया करता है, किंतु फिर भी देश के वर्तमान तूफ़ानी जीवन में इस दल की राजनैतिक क्रियाशीलता बहुत पहिले से ही मर चुकी है और अब उसके फिर जी उठने की कोई आशा नहीं।

इसलिए वर्तमान समय में इस सोसाइटी की सेवाएँ मुख्यतः सामाजिक क्षेत्र में ही दिखाई देती हैं। सहकारी समितियों का आन्दोलन, मज़दूर-संगठन, बाढ़-पीड़ितों की सहायता, दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सहायता, स्काउट-शिक्षा आदि इसके मुख्य कार्य क्षेत्र हैं। ग्रामोद्धार तथा हरिजन-सेवा जैसे कांग्रेस के कुछ रचनात्मक कार्यों को भी इसने अपनाया है। इसकी बम्बई शाखा द्वारा स्थापित थाना ज़िले के मोरबाद नामक स्थान पर गोपाल कृष्ण आश्रम ग्रामोद्धार के सम्बन्ध में अच्छा काम कर रहा है, जिसका मुख्य श्रेय श्रीयुत पी० एन० घाटे को है। श्री ए० वी० ठक्कर भी हरिजन-सेवक-संघ के प्रधान मंत्री रह चुके हैं। श्रीयुत कुंज़रू और पं० श्रीराम बाजपेयी इलाहाबाद में सेवा समिति और स्काउट एसोसियेशन का संचालन कर रहे हैं, तथा श्री एन० एम० जोशी मज़दूरों की समस्या में विशेष दिलचस्पी दिखाया करते हैं।

इस सोसाइटी के नियंत्रण में निम्नलिखित तीन समाचार-पत्र भी चलाये जा रहे हैं:—

(१) हितवाद (अंग्रेज़ी) जो नागपुर से सप्ताह में तीन बार प्रकाशित होता है।

(२) सर्वेंट आफ़ इंडिया (अंग्रेज़ी साप्ताहिक), पूना।

(३) ज्ञानप्रकाश (मराठी दैनिक) पूना तथा बम्बई।

इनके अतिरिक्त सोसाइटी के पास एक बहुत प्रतिष्ठित आर्यभूषण प्रेस भी पूना में था, जो आग लग जाने से बिल्कुल स्वाहा हो गया। इस अग्नि कांड से सोसाइटी को लाखों रुपये की हानि उठानी पड़ी। इस समय सोसाइटी के जनरल फ़ंड में क़रीब ८ लाख रुपये जमा हैं।

नैशनल लिबरल फेडरेशन (नरम दल संघ)

पूर्व इतिहास

बंग भंग आन्दोलन के समय से राष्ट्रीय कांग्रेस के अंदर दो दल पैदा हो गये थे। एक दल वह था जो राष्ट्रीय आंदोलन में तीव्रता लाना चाहता था और स्वदेशी-प्रचार एवं विदेशी बायकाट के अस्त्रों का पूर्ण रूप से उपयोग करना चाहता था। यह दल गरम दल के नाम से विख्यात था। इसके विरुद्ध दूसरा दल अपनी पुरानी अनुनय-विनय की नरम नीति को ही क़ायम रखना चाहता था और सरकारी रोष को भड़काने तथा उससे किसी प्रकार की मुठभेड़ करने के लिए तैयार न था। यह नरम दल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। गरम दल में अधिकतर नौ जवान, विद्यार्थी तथा मध्य श्रेणी के लोग शामिल थे और नरम दल में देश के धनीमानों, सनदयाफ़्ता और पदवीधारी लोग थे। गरम दल के नेता थे लो० बालगंगाधरतिलक, पंजाब केसरी लाला लाजपतराय, बी० सी० पाल तथा श्री अरविंद घोष सदृश लोग, और नरम दल के नेता सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, सर फ़ीरोज़शा मेहता, और श्रीयुत गोपाल कृष्ण गोखले आदि थे।

सन् १९०७ में सूरत-कांग्रेस के समय तक यह दलबंदी बड़ी ज़बर्दस्त हो चुकी थी। अतएव सभापतित्व के प्रश्न को लेकर दोनों दलों में वहाँ लड़ाई मच गयी, जिससे कांग्रेस का वह अधिवेशन नहीं हो

सका। इसके पश्चात् गरम दल के लोग कांग्रेस से अलग हो गए और कांग्रेस पूर्णतया नरम दल वालों के हाथ में चली गयी। सन् १९१५ तक वह नरम दल वालों के ही हाथ में रही। अंत में श्रीमती एनीबीसेन्ट के प्रयत्नों से सन् १९१६ की लखनऊ कांग्रेस में दोनों दलों का मिलाप हो गया।

जन्म

किंतु यह मिलाप पानी और बालू का सा मिलाप था। अधिक समय तक न टिक सका। मांटेगु-चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट के प्रकाशित होते ही सन् १९१८ में ये दोनों फिर अलग हो गये। गरम दल इस रिपोर्ट की सुधार-योजना को अपर्याप्त कहकर अस्वीकार कर देना चाहता था, किंतु नरम दल उसे अपनाने के पक्ष में था। किन्तु कांग्रेस में अब गरम दल का बहुमत था। नरम दल वाले भी इसे जानते थे। अतएव जब अगस्त १९१८ में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन इस सुधार-योजना पर विचार करने के लिए बम्बई में किया गया तो नरम दल वाले उससे अलग रहे और बम्बई में अपनी एक अलग कान्फ़रेंस की, जिसका नाम "आल-इंडिया-माडरेट कांफ़रेंस" रक्खा गया। इस क़ान्फरेंस के सभापति श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी थे और इसमें यह निश्चय किया गया कि नरम दल अब भविष्य में कांग्रेस से अलग रह कर काम करेगा। दिसम्बर में यह कांफ़रेंस फिर की गयी और उसका नाम " आल-इंडिया-लिबरल-फ़ेडरेशन रख दिया गया। बाद में यही नाम बदल कर "नैशनल-लिबरल-फ़ेडरेशन" हो गया

मान्टफ़ोर्ड सुधार का स्वागत

दिसम्बर १९१८ की कांन्फ़रेंस में यह राय प्रकट की गयी

कि प्रस्तावित सुधार से भारतवासियों को राजनैतिक और शासन क्षेत्रों में बहुत सी सुविधाएँ दी गयी हैं और उससे देश को बहुत कुछ लाभ होने की आशा है। अतएव लिबरल-दल उसे स्वीकार करने को तैयार है।

ध्येय

फ़ेडरेशन का ध्येय वही रखा गया जो उस समय कांग्रेस का ध्येय था। किंतु कांग्रेस ने तब से सन् १९२० में और १९२७ में दो बार अपना ध्येय बदला। फ़ेडरेशन इसे मानने को तैयार नहीं है और अपने उसी पुराने ध्येय पर चिपका हुआ है।

सन् १९१९ का अधिवेशन

इस अधिवेशन के सभापति सर पी० एस० शिवस्वामी अय्यर थे। १९१९ का सुधार क़ानून इस समय बन चुका था। इसके सम्बंध में जो प्रस्ताव इस अधिवेशन में पास किये गये थे, इनसे जान पड़ता है कि लिबरल दल किस प्रकार उस पर फूल रहा था। सब से पहिले उसने मान्टेगु साहब को इस सुधार क़ानून के लिए बधाई दी। फिर लार्ड सिन्हा और ज्वाइंट पार्लिमेंटरी कमेटी को भी इसी के लिए बधाई दी गयी। अंत में इस सुधारक़ानून को उत्तरदायी शासन की एक "निश्चित और ठोस मात्रा" (definite and substantial step) कहकर उसका हार्दिक स्वागत किया गया, यद्यपि केन्द्रीय शासन में बिलकुल उत्तरदायित्व न मिलने के कारण कुछ मुलायम अफ़सोस भी ज़ाहिर कर दिया गया था। पंजाब-हत्याकांड के सम्बन्ध में जनता के उपद्रवों पर घृणा और अधिकारियों के अत्याचारों पर रोष भी प्रकट किया गया और उन्हें सज़ा देने के लिए भी कहा गया।

असहयोग आन्दोलन से विमुखता

इस के बाद ही सन् १९२० में कांग्रेस ने असहयोग-आन्दोलन आरंभ कर दिया, जिसने आगे चल कर १९२१ में बड़ा ज़ोर पकड़ा।

लिबरल दल के लोग न केवल इस से अलग ही रहे, बल्कि वे नवीन सुधारों से मिले हुए ऊंचे शासनाधिकारों का इस समय स्वच्छंद उपभोग कर रहे थे और इस आन्दोलन को कुचलने के लिए सरकार का साथ भी दे रहे थे। सन् १९२१ और १९२२ में फ़ेडरेशन के जो अधिवेशन हुए उनमें असहयोग सविनय अवज्ञा और बायकाट आदि की निन्दा की गयी थी।

साइमन कमीशन का बायकाट

किंतु कहावत है कि शेरों के मुहल्ले में रहते-रहते गीदड़ भी कुछ गर्जना सीख लेता है। उसी प्रकार कांग्रेस द्वारा देश भर में जो जुझाऊ वातावरण पैदा कर दिया गया है, उसका प्रभाव इन नरम दल वालों पर भी पड़े बिना नहीं रहा। अधिक नहीं तो इनकी ज़बान में पहिले की अपेक्षा कुछ हलकी सी तेज़ी आ ही गयी है। निदान सन् १९२८ में सुधार-सम्बन्धी जांच के लिए जो साइमन कमीशन इस देश में आया था, उसमें एक भी भारतीय सदस्य न होने के कारण हमारे नरम दल के लोग भी उससे नाराज़ हो उठे और उसके वहिष्कार में कांग्रेस के साथ हो गये। इसी समय कांग्रेस द्वारानियुक्त की हुई नेहरू कमेटी से भी उन्होंने पूर्ण सहयोग किया और उसके फ़ैसलों से अपनी सहमति प्रकट की। सन् १९२८ के प्रयाग अधिवेशन में इस फ़ेडरेशन ने अपने प्रस्तावों द्वारा नेहरू कमेटी के सांप्रदायिक निर्णयों तथा देशी रियासतों में उत्तरदायित्व पूर्ण शासन स्थापित करने के सम्बन्ध में उसके विचारों का पूर्ण समर्थन किया था। सर चिमनलाल सीतलवाद इस अधिवेशन में सभापति थे और श्री सी० वाई० चितामणि स्वागताध्यक्ष। इसके पश्चात् सन् १९२९ में मद्रास अधिवेशन के समय भी यही प्रस्ताव दोहराये गये थे।

सत्याग्रह-युद्ध के समय

सन् १९३० में कांग्रेस की ओर से सत्याग्रह का युद्ध आरंभ कर

दिया गया। इस युद्ध में भी लिबरल दल वालों का वही रुख़ रहा जो सन् १९२१ के असहयोग-आन्दोलन में था। कांग्रेस और सरकार दोनों ही पक्षों को दोषी कह कर अपनी पूर्ण निष्पक्षता सिद्ध करने का सरल और गौरवपूर्ण तरीक़ा इस दल ने अख़्तियार कर रखा था। किन्तु वास्तव में इसका आक्रमण कांग्रेस पर ही हुआ करता था। लाठियाँ खाते हुए सत्याग्रहियों की खिल्ली उड़ाना और महात्मा गांधी तथा अन्य कांग्रेसी नेताओं को उँगलियाँ चमका-चमका कर कोसना इस दल की पत्र-पत्रिकाओं का नित्य-कर्म बना हुआ था। कहा जाता है कि धारा १४४ का व्यापक उपयोग कांग्रेसी-आन्दोलन को कुचलने के लिए पहिले-पहिल लिबरल दल के नेता सर तेजबहादुर सप्रू ने ही सरकार को सुझाया था। जो हो, किन्तु यह तो कहना ही पड़ेगा कि ऐसे समय में इस दल की देशद्रोही आवाज़ ने सरकार को अपने दमन-कार्य में बहुत काफ़ी सहायता पहुंचायी। उधर सर सप्रू और श्रीयुत जयकर, सरकार और गाँधी जी के बीच समझौता कराने के लिए भी दौड़ रहे थे। समझौता तो उस समय न हुआ किंतु इन दोनों की प्रसिद्धि अवश्य बहुत हो गयी।

गोलमेज़ कान्फ़रेंस में

उधर लंदन में गोलमेज़ कान्फ़रेन्स की तैयारी हो रही थी। इसकी घोषणा वाइसराय ने अक्टूबर १९२९ में ही कर दी थी। जुलाई सन् १९३० में कौंसिल के मेम्बरों की ओर से एक अपील प्रकाशित की गयी, जिसमें बहुत से लिबरल दल के नेता भी सम्मि-लित थे। इस अपील में "कांग्रेस से सत्याग्रह बंद करने और गोलमेज़ परिषद् में शरीक होने की सिफ़ारिश की गयी थी तथा सरकार से भी सब राजनैतिक क़ैदियों को छोड़ देने के लिए कहा गया था। १२ नवम्बर सन् १९३० से गोलमेज़ कान्फ़रेन्स का अधिवेशन आरंभ हुआ। इसमें लिबरल-दल-वालों में से निम्नलिखित मुख्य-मुख्य व्यक्ति निमं-

त्रित होकर गये हुए थे:—श्री जे० एन० बसु, सी० वाई० चिंतामणि, सर कावस जी जहाँगीर, सर तेजबहादुर सप्रू, श्री वी० एस० श्री निवास शास्त्री; सर चिमनलाल सीतलवाद सर फ़ीरोज़ सेठाना तथा श्री सी० भरूचा इत्यादि। इन सबों ने अन्य निर्मंत्रित सदस्यों के साथ बैठ कर भारतवर्ष के लिए संघ-शासन की रूप रेखा स्थिर करने में अधिकारियों के साथ पूर्ण रूप से सहयोग किया। पश्चात् फ़रवरी सन् १९३१ में गांधी-अर्विन-समझौते के अनुसार महात्मा गांधी भी कांग्रेस की ओर से एक मात्र प्रतिनिधि बनकर इस कान्फ़रेंस के दूसरे अधिवेशन में हुए। किंतु उन्हें इसका रंगढंग देख कर कोई विशेष आशा नहीं हुई।

आगे चल कर सन् १९३५ का सुधार क़ानून आया। कांग्रेस ने भी कुछ खींचातानी के बाद नयी धारा-सभाओं के लिए चुनाव में खड़े होना और मंत्रिमंडल बनाना निश्चय किया, जिससे लिबरल दल वालों की पूँछ न हुई। न तो वे धारा सभाओं में ही घुस सके और न उनके हाथ में कोई अधिकार ही आया। निदान तब से उन्होंने कांग्रेसी शासन की नुक़ता-चीनी करने और उसे हर तरह से बदनाम करने ही का काम अपने ऊपर ले लिया। और जब तक प्रांतों में कांग्रेसी शासन क़ायम रहा तब तक वे बराबर अपना यह कर्त्तव्य निभाते रहे।

लिबरलदल की नीति

इस दल की कार्य-नीति सदा से प्रायः वही रहती आयी है जो उन्नीसवीं सदी में कांग्रेस ने अख़्तियार की थी। इसका सारा उद्योग क़ानून के अंदर रहते हुए केवल प्रस्तावों द्वारा सरकार से राजनैतिक स्वत्वों की मांग कर लेने में ही समाप्त हो जाता है। हां, थोड़ी-बहुत सरगर्मी कौंसिलों में भी कभी-कभी अवश्य दिखाई देती रही है, किंतु इससे आगे बढ़ने या कोई अमली काम करने का हौसला इसे अब

तक नहीं हुआ। यही नहीं, बल्कि जो लोग कुछ हौसला दिखाने के लिए आगे बढ़ते हैं, उन्हें यह ठंडे दिल से देख भी नहीं सकता।

सन् १९३५ के सुधार क़ानून के पहिले इस दल के प्रस्ताव प्रायः निम्न-लिखित मांगों के लिए ही बराबर दोहराए जाते रहे हैं :—

(१) प्रांतीय स्वराज्य।

(२) उच्च सरकारी नौकरियां भारतीयों को दी जायँ।

(३) केंद्रीय शासन में विस्तृत अधिकार दिये जायँ।

(४) फ़ौज़ों में ऊँचे अफ़सरों की जगह भारतीयों को दी जायँ।

(५) सरकारी आमदनी और ख़र्च के विषय में आलोचना।

सन् १९३५ के बाद इन मांगों में थोड़ा-बहुत परिवर्तन आ गया है। इस समय इस दल की क्या मांगें हैं, यह फ़ेडरेशन के गत प्रयाग अधिवेशन का विवरण पढ़ने से प्रत्यक्ष हो जायगा। नीचे यह विवरण संक्षेप में दिया जाता है।

इलाहाबाद से एकीसवाँ अधिवेशन

यह अधिवेशन तारीख़ २७ दिसम्बर सन् १९३९ को प्रयाग के मेयोहाल में आरंभ हुआ था। सभापति डा० आर० पी० परांजपे और स्वागताध्यक्ष श्री इक़बाल नारायण गुर्टू थे। तारीख़ २९ को इसकी बैठक समाप्त हो गयी। निम्न-लिखित विषयों पर इसमें प्रस्ताव पास किये गये थे :—

(१) भावी विधान-निर्मायक-परिषद्। कांग्रेस और महात्मा गांधी की ओर से इसके लिए तमाम भारत वासियों के वोट से चुनी हुई एक 'कन्स्टिट्युएन्ट एसेम्बली' (Constituent Assembly) की जो मांग हो रही है उसे असंभव बतलाया गया और उसके बजाय भारतवर्ष में एक ऐसी परिषद् नियुक्त करने की आवश्यकता कही गयी, जिसमें तमाम धारा-सभाओं के चुने हुए मेम्बरों के प्रतिनिधि हों और साथ ही रियासती प्रजाओं, देशी नरेशों, ज़मींदारों, व्यापारियों

तथा वाइसराय द्वारा नामज़द किये हुए कुछ अन्य सीगों के प्रतिनिधि भी शामिल रहें।

(२) औपनिवेशिक स्वराज्य के लिए १९३५ के सुधार क़ानून में अभी से मुनासिब परिवर्तन किये जायँ। साथ ही सेना में भी भारतीयता लाने की कार्रवाई की जाय।

(३) वर्तमान योरोपीय युद्ध में मित्र-राष्ट्रों से सहानुभूति और उनकी सहायता करने के लिए भारतीयों को सलाह।

(४) वाइसराय द्वारा की गयी हाल की घोषणा की आलोचना।

(५) न्याय और शासन-विभाग पृथक् किये जायँ।

(६) रक्षा नीति (Defence)—मिश्र से सिंगापुर तक की रक्षा के लिए भारतीय सेना का उपयोग करने और भारतीयों पर उसका ख़र्च लादने का विरोध किया गया।

(७) प्रवासी भारतीयों के संबंध में।

(८) भारतीय कन्सुलर सर्विस (Consular Service) स्थापित करने का अनुरोध।

(९) ग्राम निवासियों और मज़दूरों की आर्थिक, औद्योगिक तथा शिक्षा-संबंधी उन्नति।

(१०) देशी राज्यों में शासन-सुधार।

(११) व्यावसायिक उन्नति।

(१२) कुमार राजेन्द्रसिंह, श्री पटवर्धन आदि की मृत्यु पर शोक प्रकाश।

अगला अधिवेशन कलकत्ते में होगा

इस समय लिबरल दल की हस्ती देश की राजनीति में कुछ नहीं के बराबर है, किन्तु सरकार अपने स्वार्थ-साधन के लिए इसकी हस्ती को भरपूर महत्व देती है।

मज़दूर-आन्दोलन

प्रारम्भिक युग

भारतवर्ष में ब्रिटिश शासन के साथ ही यन्त्र आये, जब यन्त्र आये तो कारख़ाने खुले, जहां लोग इकट्ठा होकर मज़दूरी करने लगे। मज़दूरों का आरंभ यहीं से है। १८८१ में एक फ़ैक्टरी-ऐक्ट पास हुआ, किन्तु इसकी धाराएँ इतनी असन्तोषप्रद थीं कि मि० एस० एस० बंगाली तथा मि० एन० राव लोखंडे ने इसके विरुद्ध आन्दोलन किया। १९११ में परोपकार करने की मनोवृत्ति से कुछ लोगों ने बम्बई में कामगार हितवर्धक-सभा क़ायम की, इसकी ओर से कई बार अर्ज़ियाँ भेजी गयीं। बम्बई की सोशल सर्विस लीग भी सरकार को मज़दूरों के विषय में सलाह देती थी। यह सब होने पर भी १९१८ के ही इर्द गिर्द मज़दूरों की अपनी सभाएँ, जैसे जी० आई० पी० रेल मज़दूर संघ, बम्बई सीमेन यूनियन, अहमदाबाद-लेबर-एसोसिएशन, नार्थ-वेस्टर्न-रेलवे यूनियन, कानपुर मज़दूर-सभा आदि बनीं। लड़ाई के कारण चीज़ों का भाव बढ़ गया, मज़दूरी नहीं बढ़ी, उधर मिलों को विशेष कर सूती मिलों की आय सौ फ़ी सदी तक बढ़ी; ऐसी अवस्था में मज़दूरों को यह सभाएँ ऐतिहासिक आवश्यकता थीं। फिर भी मज़दूरों के नेता सुधारवादी होने के कारण तथा उनका हड़तालों में तथा मज़दूर की शक्ति में विश्वास न होने के कारण १९२२ के बाद मिल मज़दूरों के हक़ों के ऊपर जो हमले हुए, उसमें मज़दूरों को साधारणतः नीचा देखना

पड़ा। सच बात तो यह भी है कि मज़दूरों में उस समय कोई ताक़त भी नहीं थी।

महायुद्ध के बाद

महायुद्ध के कारण भारतीय पूँजीपतियों ने जो बड़े बड़े डिविडेंड मारे थे वह लड़ाई के बाद क़ायम न रह सके; क्योंकि योरोपीय माल से फिर बाज़ार भर गया, इस कमी (?) को पूरा करने के लिए भारतीय मिल मालिकों ने मजदूरों की तनख़्वाहों पर क़ैंची चलाना शुरू किया। इस पर १९२४ में अहमदाबाद में एक विराट हड़ताल हुई, जिसमें चालीस हज़ार मज़दूरों ने भाग लिया। इसमें मज़दूरों की हार हुई। १९२४ में बंबई के डेढ़ लाख मज़दूरों इस बात पर हड़-ताल कर दी कि मिल मालिकों ने सालाना बोनस बन्द करने का ऐलान किया। १७ जनवरी से २५ मार्च तक हड़ताल रही, फिर भी मज़दूर हार गये। पूँजीपतियों ने मज़दूरों की इस हार से उत्साहित होकर १९२५ में मज़दूरी में ११½ फ़ी सदी कमी का ऐलान किया, इस पर मज़दूरों ने अपने नेताओं की बात न मान कर हड़ताल की, और जीत गये। इसी समय मद्रास में २० फ़ी सदी कटनी के ऐलान पर मज़-दूरों ने हड़ताल की; किन्तु नेतृत्व की किनाराकशी के कारण १५ फ़ी कटनी माननी पड़ी।

ट्रेड-यूनियन-कांग्रेस

१९२० में अखिल-भारतीय-ट्रेड-यूनियन-कांग्रेस का पहिला अधिवे-शन बम्बई में हुआ; फिर भी यह न तो अधिक दृष्टि की आकर्षण ही कर सकी और न मज़दूरों की लड़ाई में ही इसने कुछ हिस्सा लिया। १९२४ में सी० आर० दास ऐसे महान् नेता के सभापतित्व में इसका अधिवेशन कलकत्ते में हुआ। १९२६ में मद्रास में बी० बी० गिरि इसके सभापति हुए। १९२७ में राय साहब चंद्रिका प्रसाद के सभा-

पतित्व में दिल्ली में इसका अधिवेशन हुआ। इस अवसर पर ट्रेड-यूनियन-कांग्रेस के मन्त्री श्री जोशी ने डींग मारते हुए कहा कि कांग्रेस को किसी हड़ताल की इजाज़त देने की ज़रूरत न पड़ी। इसी से स्पष्ट है कि ये कांग्रेसें कैसी थीं? मालूम होता है कि जेनेवा के लिए प्रतिनिधि चुनना ही इन भले आदमियों का सारा उद्देश्य होता था; इन लोगों का समाजवाद जो मज़दूरों का वैज्ञानिक रूप से एकमात्र ध्येय हो सकता है, कोई सम्बन्ध न था।

कानपुर अधिवेशन

१९२७ के दिसम्बर में ट्रेड-यूनियन-कांग्रेस का एक अधिवेशन कानपुर में हुआ। इसमें मेरठ षडयन्त्र के छूटे हुए कामरेड थे। इस साल तक मज़दूरों का आन्दोलन एक मज़दूरी बढ़ाने का आन्दोलन मात्र था, किन्तु अब मज़दूरों का आन्दोलन उस विराट आर्थिक, राजनैतिक लड़ाई का एक अंग हो गया है, जिसका स्वातन्त्र्य युद्ध एक अंग है। इस अधिवेशन में साइमन कमीशन के बहिष्कार, चीन की स्वतंत्रता के लिए लड़नेवालों के साथ सहानुभूति, तथा वहां भारतीय फ़ौज भेजने की निन्दा के प्रस्ताव पास हुए। साथ ही यह भी पास हुआ कि साम्राज्यवाद पूँजीवाद का सब से विकसित स्वरूप है; इसलिए संसार के मज़दूर एक होकर साम्राज्यवाद का मुक़ाबला करें। ३ फ़रवरी को जब सायमन कमीशन बम्बई उतरा, उस के बायकाट के नारे लगाते हुए काले झंडे लिये हुए, मज़दूरों का एक विराट जुलूस निकला तब राष्ट्रीय नेता तथा देश दंग हो गया।

१९२८

१९२८ भारतीय मज़दूरों के इतिहास में उसमें होने वाले मज़दूर-पूँजीपति संघर्ष के लिए स्मरणीय है। एक तरफ़ रेशनलीज़ेशन के कारण बेकारी बढ़ी, दूसरी ओर मज़दूरी घटाने से ही ये संघर्ष पैदा

हुए। १६ अप्रैल को हड़ताल शुरू हुई, पहिले जोशी आदि नरम मज़दूर नेताओं ने इसका विरोध किया, यहां तक कि इसके विरुद्ध पर्चा तक निकाला; किन्तु जब देखा कि यह हड़ताल चल गयी तब उसको भीतर से ख़त्म करने उसके भीतर पहुँच गये। इधर साम्यवादी नेताओं ने इन्हें साथ लेना ज़रूरी इसलिए समझा कि ऐसा करने से इनके असर के मज़दूर भी इसमें शामिल होते थे। इसी हड़ताल के अन्दर से गिरनी कामगर यूनियन पैदा हुई, जिसके क्रान्तिकारी असर में अधिकांश मज़दूर आ गये। २३ अप्रैल को परसराम यादव नामक एक मज़दूर पुलिस की गोली से मारा गया, इससे हड़तालियों में बड़ा जोश आया। १९२८ की हड़ताल से कोई लाभ तो न हुआ, किन्तु इससे श्रेणी चेतना बढ़ गयी तथा मज़दूर समझ गये कि श्रेणी युद्ध की बुनियाद पर संगठन होना चाहिए।

झरिया तथा आगे

कानपुर अधिवेशन के बाद झरिया अधिवेशन हुआ, इसमें यह तय हुआ कि ट्रेड-यूनियन-कांग्रेस का सम्बन्ध लीग एगेन्स्ट इम्पीरियलिज़्म से स्थापित कर लिया जाय। यह सब सरकार को नापसन्द था, अतएव २० मार्च १९२९ को वे लोग जिन्होंने बंबई और बंगाल की हड़ताल में प्रमुख भाग लिया था, गिरफ़्तार कर लिये गए। यही मेरठ-षड्यंत्र के नाम से विख्यात हुआ। सरकार ने साथ ही मज़दूर-आन्दोलन को कुचलने के लिए एक तो पब्लिक सेफ़्टी आर्डिनेन्स जारी किया जिसके अनुसार सरकार को यह अधिकार हो गया कि किसी भी विदेशी को इस बहाने से निकाल दे कि वह शान्ति में बाधक है या सरकार के लिए ख़तरनाक है। दूसरा बिल ट्रेड-डिस्प्यूट-ऐक्ट था, इसके द्वारा कई कारबारों को, सार्वजनिक-हित-सम्बन्धी क़रार दिया गया, जिनमें बिना निर्दिष्ट नोटिस हड़ताल करना जुर्म क़रार दिया गया। इस क़ानून में एक दफ़ा यह भी थी कि जो लोग ऐसी हड़तालों को प्रोत्साहन

देंगे, जिनका उद्देश्य मज़दूरों को जायज़ शिकायतों को दूर कराना न होगा, तो ऐसे लोगों को दंड दिया जायगा। इन्हीं बिलों के साथ साथ सरकार ने मज़दूरों की हालत को जांच करने के लिए ह्निटले कमीशन बैठाया, मज़दूरों ने इसका बायकाट किया।

मज़दूर-आन्दोलन में फूट

इस आन्दोलन में दो स्पष्ट धाराएं थीं। १९२९ में नागपुर अधिवेशन में इन दो धाराओं में फूट हो गयी और जोशी, बखले, चमनलाल वग़ैरह ने ट्रेड-यूनियन-कांग्रेस से अलग होकर ट्रेड-यूनियन-फ़ेडरेशन नाम से एक अलग संघ क़ायम किया। ट्रेड-यूनियन-कांग्रेस के प्रस्तावों के विरुद्ध इन्होंने जेनेवा जाना, ह्निटले कमीशन से सहयोग, गोलमेज़ कानफ़रेन्स के सम्बन्ध में वायसराय के वक्तव्य को सन्तोषजनक बताकर प्रस्ताव पास किये। बाद को जो लोग ट्रेड-यूनियन-कांग्रेस में रह गये, उनमें फूट हो गयी।

विरोध के परिणाम

जब १९३० में सत्याग्रह चला तो कुछ क्रांतिवादी मज़दूर नेता इससे अलग रहना चाहते थे। क्योंकि उनके मतानुसार कांग्रेस पूंजीपतियों की संस्था थी। १९३१ के कलकत्ता-अधिवेशन में वह दल जो राष्ट्रीय आंदोलन में साथ देना चाहता था, तथा जो साथ नहीं देना चाहता था, खुल्लमखुल्ला विरोध हुआ; इससे मज़दूर आंदोलन दो वर्षों तक कुछ उन्नति कर सका। १९३२ का सम्मेलन जो मद्रास में हुआ, वह बिलकुल असफल रहा।

फिर कानपुर

१९३३ के कानपुर अधिवेशन में फिर ज़ोर आया। वह गुट्ट जो कलकत्ते में अलग हो गया था, फिर शामिल हुआ। यह तय पाया कि सूती मिल के मज़दूर २० मांग रख कर हड़ताल कर दें। तदनुसार

हड़ताल शुरू हुई, चारों तरफ़ सख्तियों का बाज़ार गरम था। बहुत सी जगह पर गोलियां चलाई गयीं। मज़दूर मरे, भूख सही, डंडे खाये। मज़दूरी और छटनी-संबंधी मज़दूरों की मांगें इस हड़ताल से पूरी नहीं हुई; फिर भी उनमें संगठन ज़ोर पकड़ता गया। मज़दूर अब समझ गये हैं कि पूंजीपति और उन में कोई समझौते की गुञ्जाइश नहीं है।

बाद को बड़े दिनों की बातचीत के बाद मज़दूरों के सब दल एक हो गये, और ट्रेड-यूनियन-कांग्रेस में इस समय सभी दल सम्मिलित हैं।

कांग्रेस-मंत्रि-मंडल

कांग्रेस-मंत्रि-मंडलों के शुरू के युग में मज़दूर-आन्दोलन ने बड़ा ज़ोर मारा; क्योंकि मज़दूर कांग्रेस-मंत्रि-मंडल को अपना ही समझते थे। कानपुर में एक विराट हड़ताल हुई, जिसकी सहायता प्रान्तीय-कांग्रेस-कमेटी ने तथा स्वयं पं० जवाहरलाल नेहरू ने की; किन्तु इस बात से कांग्रेस के अन्दर के पूंजीपति चौकन्ने हो गये। बंबई के कांग्रेसी मंत्रि-मंडल ने ट्रेड डिस्प्यूट ऐक्ट नाम से एक बिल बनाया, जिसके समान ख़राब बिल आज तक नहीं बना था। इस बिल के द्वारा क़रीब क़रीब हड़ताल का हक़ छीन लिया गया। बंबई धारा-सभा के सब मज़दूर-प्रतिनिधियों ने इसका विरोध किया, इसके विरुद्ध सारे भारत में प्रदर्शन तथा सभाएँ हुई, किन्तु बंबई के पूंजीपतियों के द्वारा पृष्ठ पोषित कांग्रेसी-मंत्रि-मंडल ने एक भी बात न सुनी। ख़बर तो यहां तक थी कि इसी प्रकार के बिल सब कांग्रेस मंत्रिमंडल पास करेंगे। आसाम के डिगबोई की हड़ताल भी इस ज़माने की मुख्य बात है। त्रिपुरी में इसके संबंध में एक प्रस्ताव पास हुआ था। बाद को कांग्रेस-मंत्रि-मंडलों का रुख़ मज़दूरों के प्रति असहानु-भूति-पूर्ण हो गया और नेतागण हड़तालों से कन्नी काटने लगे।

लड़ाई का असर

वर्तमान युद्ध के कारण सब चीज़ें महँगी हो गयी हैं। इसलिए

मज़दूरों की एक जायज़ माँग थी कि उनकी मज़दूरी बढ़ायी जाय। तदनुसार सब तरफ़ से मज़दूर सभाओं ने यह माँग पेश कर रक्खी है, किन्तु कुछ ही क्षेत्रों में इस मांग को मान लिया गया है। फलस्वरूप चारों तरफ़ हड़ताल के आसार हैं। अहमदाबाद में अभी मज़दूरों में हड़ताल होते होते रह गयी। उन लोगों ने सुधारवादी नेताओं के कहने पर औद्योगिक अदालत की पंचायत में अपना मामला भेज दिया है। इधर बम्बई के कपड़ें की मिलों के मज़दूरों की एक विराट सभा हुई है, जिसमें बम्बई प्रांतीय - ट्रेड-यूनियन-कांग्रेस के इस निश्चय की पुष्टि की गयी कि यदि मज़दूरों की कम से कम १५ प्रतिशत महँगी का भत्ता मिलने की मांग स्वीकृत न हुई तो ४ मार्च से हड़ताल घोषित की जाय। परिणामस्वरूप ४ मार्च को सूती मिलों की आम हड़ताल शुरू हो गयी। प्रायः सभी मिलें न्द हैं और डेढ़ लाख मज़दूर बेकार हैं। इस मामले में द्रष्टव्य यह है कि समझौता बोर्ड ने महँगी के संबंध में यह सिफ़ारिश की है कि १० प्रतिशत भत्ता दिया जाय। सन्देह नहीं कि यह साल मज़दूरों के आंदोलन में बड़ा घटनापूर्ण साबित होगा, और अशान्ति रहेगी। हिन्दुस्तान के पूँजीपतियों को लड़ाई से अभी बहुत फ़ायदा हो चुका है, चीज़ें मँहगी हो गयीं, फिर भी वे मज़दूरों को कुछ भी सहूलियत देना नहीं चाहते हैं। इसका नतीजा तो कुछ होगा ही।

अब केवल एक सवाल रह जाता है कि यदि राष्ट्रीय आंदोलन ने सत्याग्रह का रूप धारण किया तो क्या मज़दूर इसमें भाग लेंगे? इसका उत्तर है हाँ और नहीं। सीधे तरीक़े से तो वे भाग न लेंगे किन्तु धीरे धीरे उनका एक ज़बर्दस्त हिस्सा होगा। मज़दूर अब समझते जा रहे हैं कि राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के बिना उनकी आर्थिक लड़ाई भी पूर्ण सफलता को हर्गिज़ नहीं पहुंच सकती।

———

ख़ुदाई ख़िदमतगार

खान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ

ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ का नाम भारतीय राजनीति में अभी १९३० से प्रसिद्ध हुआ है, किन्तु प्रान्त के वे पुराने सेवक हैं। १९११ में उन्होंने एक संस्था क़ायम की थी जिसका नाम-अफ़ग़ान यूथलीग था। इस संस्था की ओर से राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विद्यालय खोले जाते थे तथा सामाजिक सेवा की जाती थी। ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ ने समझा कि सीमा प्रांतवासियों की सब से बड़ी दिक़्क़त अशिक्षा है, ऐसी हालत में स्कूल खोलना उनके लिये स्वाभाविक था। सरकार को ख़ान साहब की इन कार्रवाइयों के सम्बन्ध में सन्देह था। इसलिए वे सन् १९१४ में अपने ९० साल की उम्र के बूढ़े बाप के सहित गिरफ़्तार हो गये। १९१९ में ख़ान साहब ने रौलट ऐक्ट के विरुद्ध होने वाले अखिल-भारतीय-



(अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ)

आन्दोलन में भाग लिया और तभी से आप की दृष्टि अखिल-भारतीय-राष्ट्रीय-आन्दोलन की ओर गयी।

ख़ुदाई ख़िदमतदार

१९२८ में ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ ने "ख़ुदाई ख़िदमत गार" नाम से एक दूसरी संस्था खोली कुछ दिनों तक अफ़ग़ान यूथलीग भी साथ-साथ चली, किन्तु धीरे-धीरे वह लुप्त हो गयी। १९२८ में यह संस्था कांग्रेस से पृथक् थी, किन्तु १९३० में यह कांग्रेस के अंतर्गत होकर काम करने लगी। सरकार पठानों में कांग्रेस के प्रचार को बर्दाश्त करने के लिए तैयार न थी, इसलिए ख़ुदाई ख़िदमतगारों पर बड़े से बड़े अत्याचार हुए। सब से बड़ी बात यह थी कि ये पठान जो बात-बात पर मरने मारने को तैयार रहते थे, एकदम अहिंसा के पक्के पुजारी हो गये। सरकार इनको डिगाना चाहती थी, इसलिए ऐसे-ऐसे अत्याचार किये, जिनके सामने पंजाब के मार्शल ला के युग की बातें भी फीकी पड़ जाती हैं। लोगों को अपमानित करने के लिए ज़बर्दस्ती पकड़ कर माफ़ीनामे पर अँगूठे की निशानी बना ली जाती थी, और वह सब को दिखलाया जाता था, बहुत से वीर पठानों ने उस पर अँगूठा ही कटवा डाला कि "न रहे बाँस न बजे बाँसुरी" ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ के घर में आग लगा दी गयी, उनके भाई डाक्टर ख़ान साहब का मकान ज़मींदोज़ कर दिया गया। अरबाब अब्दुल ग़फ़ूर को बेंत लगाया गया। लोगों को कपड़े उतारकर सार्वजनिक स्थान में नंगा कर दिया गया। पठानों में यह बड़ा अपमान समझा जाता है। लोग पीट कर बेहोश कर दिये गये, फिर भी बहादुर पठान न डिगे।

रूस से सम्बन्ध नहीं

ख़ुदाई ख़िदमतगारों की वर्दी में लाल कमीज़ थी और उनका झंडा भी लाल था। इसी बहाने यह उड़ाया गया कि ये रूस के भड़-

काने पर चलते हैं, और रूस से इन्हें धन मिलता है। सच बात यह है कि यह लाल झंडा रूस से सम्बन्धित न था; क्योंकि इसमें अक्सर पठानों के सौंदर्यबोध के अनुसार फूल वग़ैरह भी बने होते थे। १९३० से १९३६ तक ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ अपने प्रान्त से निर्वासित थे तथा कांग्रेस भी ग़ैरक़ानूनी थी। नये सुधारों के मुताबिक़ जो कांग्रेसी मंत्रि-मंडल क़ायम हुए। उनके लिए कांग्रेस संस्थाओं ने चुनाव नहीं लड़ा था, बल्कि पार्लामेन्टरी बोर्ड बनाकर सारा चुनाव लड़ा गया। कांग्रेस तो उस समय थी ही नहीं।

इसके नेता

इस समय रबनवाज़ ख़ाँ ख़ुदाई ख़िदमतगारों के सालारे आज़म हैं। सीमा-प्रान्तीय-कांग्रेस-कमेटी के नये सभापति मियाँ ज़फ़र शाह अरबाब अब्दुल ग़फ़ूर तथा क़ाज़ी अब्दुल ग़फ़ूर इस के विशेष नेता हैं। असली नेता तो ख़ैर ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ हैं। ख़ुदाई ख़िदमतगारों को अपनी वर्दी से लेकर सफ़र ख़र्च तक सब बर्दाश्त करना पड़ता है। पहिले इनकी संख्या सवा लाख थी, किन्तु अब कम है। पठान लोग कहते हैं, देश के सामने इस समय कोई संग्राम-शील कार्य-क्रम नहीं है, इसलिए भर्ती होकर क्या किया जाय। ख़ुदाई ख़िदमतगार के नेताओं को विश्वास है कि ज्यों ही देश में कोई संग्राम छिड़ेगा, वीर पठान ख़ुदाई ख़िदमतगारों की संख्या लाखों में पहुँचेगी।

१९३० के अत्याचार

१९३० के अत्याचारों की जाँच करने के लिए स्वर्गीय पटेल की अध्यक्षता में एक कमेटी बैठी थी। इस कमेटी के सदस्य सर्व श्री किफ़ायतुल्ला, सर्दार शार्दूल सिंह; लाला दुनीचंद तथा आर० एस० पंडित थे। अत्याचारों के होते हुए भी ख़ुदाई ख़िदमतगारों ने जो सहन-शीलता दिखलाई उसकी इस कमेटी ने मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है।

मजलिसे अहरार

उत्पत्ति

१९२८ में मौलाना शौकत अली वग़ैरह ने व्यक्तिगत नाराज़ी के कारण पंजाब की ख़िलाफ़त कमेटी को अवैधानिक क़रार दिया; इस पर मौलाना ज़फ़र अली खां, ख़्वाजा अब्दुर्रहमान ग़ाज़ी, चौधरी अफ़ज़ल हक़, मौलाना सैयद अताउल्लाशाह बुख़ारी, मौलाना मुहम्मद दाऊद ग़ज़नवी, मौलवी मज़हर अली, ज़ेबुर्रहमान आदि ने मिलकर सोचा कि पंजाब के मुसलमानों में काम करने के लिए मजलिसे अहरार के नाम से एक विधिसंगत संस्था की स्थापना की जाय। तदनुसार १९२९ में यह संस्था क़ायम कर दी गयी; किन्तु कांग्रेस के साथ मिलकर काम करने के लिए इसके कार्यक्रम का वह सारा हिस्सा जो केवल मुसलमानों से सम्बन्ध रखता था, स्थगित कर दिया गया। फिर जब कांग्रेस और सरकार के बीच में शान्ति क़ायम हो गयी, तब अहरार संगठन को मज़बूत बना कर फैलाया गया। इसके प्रथम सभापति मौलाना अता-उल्ला शाह बुख़ारी हुए।

अताउल्ला शाह बुख़ारी

मौलाना अताउल्ला शाह बुख़ारी एक निर्भीक नेता हैं, उनकी वक्तृत्वशक्ति अद्भुत है। लोगों में वे बोलने खड़े होते हैं तो जादू सा चला देते हैं। सुना गया है कि रात रात भर लोग मन्त्रमुग्ध की तरह

उनकी वक्तृता सुनते रहते हैं। इस समय वे राजद्रोह के लिए जेल में हैं। अस्तु।

रियासती आन्दोलन में हिस्सा

सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द हो जाने के बाद मजलिसे अहरार ने रियासती प्रजाओं की ओर मुंह फेरा, और काश्मीर आदि रियासतों में इसके लिए लड़ाई छेड़ दी। यह १९३४-३५ की बात है। अकेले काश्मीर में ही कोई बीस हज़ार अहरार जेल गये। कहा गया है कि यह एक साम्प्रदायिक आन्दोलन था, किन्तु यह बात ग़लत है। काश्मीर के सब ग़रीब तथा किसान मुसलमान हैं, और राजा तथा उन के साथ देने वाले मुख्यतः हिन्दू हैं; इसलिए किसी भी आर्थिक-राजनैतिक संघर्ष को हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का रूप देना कठिन न था। इसके साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि मजलिसे अहरार की उत्पत्ति से ही ज़ाहिर है कि उसके नेता पहिले एक साम्प्रदायिक संस्था से निकाले जा कर आये थे। तथा मजलिसे अहरार का पूरा नाम मजलिसे अहरारे इस्लाम है, इसलिए इस संस्था में कुछ साम्प्रदायिकता की पुट थी; किन्तु धीरे धीरे यह पुट निकलती गयी। काश्मीर आन्दोलन के फलस्वरूप सरकार ने ग्लैंसी कमीशन बैठाया, और कुछ सुधार भी दिये गये।

कांग्रेस से सहयोग

मजलिसे अहरार ने बराबर कांग्रेस के साथ सहयोग किया, और मुसलमानों को कांग्रेस का सदस्य बनाया। धीरे धीरे इसने आम मुसलमानों में जागृति पैदा की। मजलिसे अहरार के सामने आम जनता को उभारने, उन की माली हालत सुधारने तथा मौलिक अधिकारों को जीतने का वही कार्यक्रम है जो कांग्रेस तथा जमैयतुलउलमा के सामने

है। मुलतान में मजलिसे अहरार का १९३७ में जो अधिवेशन हुआ था उसमें यह पास हुआ था—

मजलिसे अहरार के सिद्धांत

"खेती से होने वाली आमदनी यदि पांच सौ रुपये से कम हो तो वह मालगुज़ारी से बरी हो, मज़दूरी या नौकरी पेशावालों को कम से कम तीस रुपये माहवार मिले, बड़ी तनख्वाहें घटाई जायँ। सूदख़ोरी मना कर दी जाय। प्रत्येक व्यक्ति को प्राथमिक शिक्षा दी जाय। उत्पादन में तरक़्क़ी की जाय," इत्यादि।

मुसलिम लीग के विरोध

इसके नेताओं ने बराबर अपने प्लैटफ़ार्म से मुसलमानों को कांग्रेस में शामिल होने के लिए कहा। १९३७ के अक्टूबर में बटाला में इनकी जो सालाना कानफ़रेन्स हुई, उसमें साफ़ ऐलान कर दिया गया कि मुसलिम लीग से मजलिसे अहरार का कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि यह कांग्रेस का विरोध कर रही है। मजलिसे अहरार ने १९३८ के अधिवेशन में जो प्रस्ताव पास किये, उनको देखने से पता चलेगा कि उनका उद्देश्य क्या है :—

(१) पंजाब में साम्प्रदायिक झगड़ों को रोका जाय।

(२) राजनैतिक क़ैदियों और नज़रबन्दों की रिहाई की मांग की जाय।

(३) किसानों का लगान घटाया जाय और बड़े ओहदेदारों की तनख्वाहें घटाई जायँ।

(४) अहरारों को हिदायत दी जाती है कि वे मुसलिम लीग से अलग रहें, जो लीग में हैं, वे उससे अलग हो जायँ। इत्यादि

शहीदगंज से अलग

गत चुनाव के पहिले शहीदगंज के उपलक्ष्य में पंजाब की

सांप्रदायिक परिस्थिति बड़ी ख़राब हो रही थी। अहरारों पर दबाव डाला गया कि वे इस आन्दोलन को अपने हाथ में ले लें, जैसे काश्मीर आन्दोलन को उन्होंने लिया था। यह दबाव इतना ज़बर्दस्त था कि यदि ये न मानें तो इनके सामने यह ख़तरा था कि कहीं इनकी संस्था ख़तम न हो जाय; किन्तु फिर भी इन्होंने इस में हाथ न डाला। इसी प्रकार जब मदहे साहबा आन्दोलन चला तो इसमें भी सुन्नियों का पक्ष लेकर लड़ने के लिए इन्हें उकसाया गया; किन्तु इन्होंने इसको भी ठुकरा दिया। इसके विपरीत उन्होंने इन्हीं उत्तेजनाओं के दिनों में ख़ास लखनऊ में सुन्नी उम्मीदवारों के विरुद्ध दो शिया उम्मीदवारों का—जिन्हें वे राजनैतिक रूप से अधिक योग्य समझते थे—पक्ष लेकर लड़ाई की, और एक को जितवा दिया। अहरारों में न केवल शिया हैं, बल्कि मौलाना मज़हरअली अज़हर इनके एक मुख्य नेता हैं।

वर्तमान कार्यक्रम

जब से लड़ाई छिड़ी है तब से अहरारों ने युद्ध के विरुद्ध प्रचार करने का कार्यक्रम जारी रक्खा है। इसमें क़रीब उनके चार सौ नेता गिरफ़्तार हो चुके हैं। इस समय डींग मारने वाली वामपक्षी पार्टियां भारतवर्ष में कई हैं, किन्तु जिस तरीक़े पर अहरार (शुद्ध वामपक्षी तरीक़े पर) काम कर रहे हैं, ऐसा कोई दूसरी पार्टी नहीं कर रही है। मज़े की बात है कि कांग्रेस ने मुसलिम जन-सम्पर्क की डींग के बावजूद अहरारों के सरकार द्वारा दमन पर एक भी शब्द नहीं कहा।

—:०:—

यूथलीग

युवक एक वर्ग न होने पर भी हर एक देश में युवक-आंदोलन को एक विशेष महत्व इसलिए दिया गया है कि युवक भावुक होता है, उसके हाथ पैर मज़बूत होते हैं, वह विपत्ति से नहीं घबराता। भारत वर्ष का युवक-आंदोलन बहुत ताज़ी चीज़ मालूम होने पर भी सच पूछा जाय तो सारा आतंकवादी-क्रांतिकारी आंदोलन ही मध्यवित्त श्रेणी के युवकों का आंदोलन था। चाफेकर से लेकर आज़ाद तक सब युवक ही थे। विशेष रूप से बंगाल का स्वदेशी-आंदोलन एक युवक-आंदोलन था। बंगाल में बंगभंग के विरोध में जो खुली 'अनुशीलन-समितियां' क़ायम हुईं, उनमें मुख्यतः व्यायाम, स्वदेशी, धार्मिक उपदेश सुनना, इत्यादि था। वारीन्द्र कुमार घोष ने २२ मई १९०८ को जो बयान अदालत में दिया था, उसमें युवक आंदोलन का स्वरूप द्रष्टव्य है। उन्होंने कहा—"मेरा उद्देश्य था कि एक राष्ट्रीय मिशनरी की भाँति मैं भारतीय-स्वाधीनता-आंदोलन का प्रचार करूँ। मैं एक ज़िले से दूसरे ज़िले गया, और अखाड़े वग़ैरह स्थापित किये। नौ जवानों को इन अखाड़ों में कसरत सिखाई, तथा राजनीति में उनकी दिलचस्पी पैदा की जाती थी × × × मैं थोड़े दिन बाद इस नतीजे पर पहुँचा कि केवल शुद्ध राजनैतिक प्रचार कार्य से इस देश में कुछ न होगा। लोगों को आध्यात्मिक शिक्षा देनी चाहिए ताकि वे विपत्ति का सामना कर सकें। एक धार्मिक संस्था खोलने की योजना

भी मेरे मन में थी। स्वदेशी और बायकाट आन्दोलन भी इस बीच में आरंभ हो चुका था।" इत्यादि

कई युवक-आंन्दोलन

इस प्रकार क्रांतिकारी आन्दोलन का प्राण युवक होने पर भी वह गुप्त आन्दोलन रहा; आम युवक उस तक नहीं पहुँच सके। युवक-आन्दोलन को युवक-आन्दोलन का नाम देकर शुरू करने का श्रेय पं० जवाहरलाल नेहरू, के० एफ़० नरीमैन तथा सुभाष बाबू को ही है। किन्तु इसके पहिले ही ख़ान अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ां ने (Afghan Youth League) नाम की एक संस्था १९११ में क़ायम की थी, यह संस्था बाद में खुदाई ख़िदमतगारों में परिणत हो गयी। सुभाष, जवाहर की यूथ लीग के पहिले कर्मीसंघ नाम से कुछ संस्थाएँ बंगाल क़ायम हुई थीं, जो युवक-संघ ही थे। इसी समय पंजाब में भारतीय क्रांतिकारी दल के सुप्रसिद्ध नेता सर्दार भगतसिंह के प्रभाव में नौजवान भारत-सभाएँ भी क़ायम हुई थीं। यूथ लीगों की स्थापना का उद्देश्य बतलाते हुए पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्म कथा में लिखा है "Going beyond the congress" कांग्रेस से आगे जाना ही इनका उद्देश्य था। फ़िर भी ये यूथलीगें उग्र विचार के युवकों का ही एक प्लैट फ़ार्म रहीं। सारे युवक समाज की प्रतिनिधि संस्था न बन सकीं। केवल युवकों के जीवन की रोज़मर्रा की दिक़्क़तें तथा आम युवक की समस्याओं को लेकर एक पराधीन देश में शायद युवक संघों का बनना वाञ्छनीय भी न होता। इन यूथलीगों की ओर से उन बातों का प्रचार होता था जिनका प्रचार कांग्रेस के ज़रिये से न हो सकता था। यूथ लीगों के प्लैटफ़ार्म पर अकांग्रेसी नौजवान भी थे, इनकी सदस्यता के लिए ज़रूरी नहीं था कि कोई कांग्रेस का सदस्य ही हो। पंजाब की नौजवान भारत सभाएँ एक प्रकार से क्रांतिकारियों का खुला प्लैटफ़ार्म था, और उनके द्वारा क्रांतिकारी

प्रचार कार्य होता था। सूक्ष्म दृष्टि से देखने से पता लगता है कि १९२७—२८ की यूथ लीगों को एक वैज्ञानिक किन्तु विशेष (Scientific but Sectarian) रूप देकर ही कांग्रेस समाजवादी दल आदि दल पैदा होते गये।

यूथ लीगें क्यों न बढ़ीं?

इधर यूथलीगों का हाल यह था कि कांग्रेस से आगे बढ़ी हुई थीं, किन्तु उधर साधारण नवयुवकों का हाल यह था कि वे कांग्रेस से कहीं पिछड़े हुए थे। इनका यह पिछड़ापन राजनैतिक क्षेत्र में ही नहीं है, बल्कि सामाजिक क्षेत्र में भी वे विचारों में तो उतना नहीं, किन्तु कार्यरूप में बहुत पिछड़े हुए थे; नतीजा यह हुआ कि ये यूथलीगें कुछ आगे बढ़े हुए युवकों का प्लैटफ़ार्म रहीं, और उन आगे बढ़े हुए नौजवानों को अपने लिए इस संस्था की विशेष ज़रूरत नहीं थी, इसलिए ये यूथ-लीगें हमेशा कुछ टिमटिमाती सी ही रहीं।

नौजवान भारत सभाएँ ग़ैरक़ानूनी

आतंकवाद के दमन के युग में अर्थात् १९२९ में नौजवान भारत सभाएँ ग़ैरक़ानूनी क़रार दी गयीं, साथ ही लाहौर कांग्रेस में पं० जवाहरलाल के राष्ट्रपति होने तथा कांग्रेस द्वारा स्वतंत्रता का प्रस्ताव मान लिए जाने के कारण, तथा कांग्रेस के सामने संग्राम का कार्य-क्रम पेश होने के कारण यूथ लीगें एक तरह से प्राकृतिक मृत्यु से मर गयीं। जो बचीं वे ग़ैरक़ानूनी हो गयीं।

यूथलीगों पर से रोक उठी

१९३७ में कांग्रेस मंत्रिमंडलों के आ जाने से इन पर से रोक उठा ली गयी। तब श्री एम० एन० राय की अध्यक्षता में सीतापुर में यूथलीग कानफ़रेन्स हुई। इसके बाद से ज़ोरों के साथ संयुक्त प्रांत में यूथ लीग का संगठन होने लगा। क्रान्तिकारी क़ैदियों के छूट जानेसे

इन लीगों के संगठन में और तरक़्क़ी हुई। काकोरी क़ैदियों ने इन लीगों की कानफ़रेन्सों में सभापतित्व किया, कानफ़रेन्सें ख़ूब सफल भी रहीं, किन्तु फिर भी कुछ ज़िलों के अलावा इन यूथ लीगों का संगठन अच्छा न हुआ। हाँ, जिन हर साल एक प्रांतीय-कानफ़रेन्स हो जाती है, ज़िलों में भगतसिंह या आज़ाद दिवस मना लिया जाता है, किन्तु कुछ ढंग का काम नहीं होता। ढंग का काम तो तभी हो, जब कि हर एक यूथ लीग के साथ एक Gymnasium (अखाड़ा) तथा study circles (अध्ययन गोष्ठी) हो। बंगाल के सब भूतपूर्व यूथलीगर तथा आतंकवादी - क्रांतिकारी इस समय फ़ारवर्ड ब्लाक में हैं। १६३८ में संयुक्त प्रांत की यूथ लीग का अधिवेशन पं० परमानन्द की अध्यक्षता में हुआ था। इस अधिवेशन में एक मुख्य प्रस्ताव यह पास हुआ था, कि अब देश में आतंकवाद का अवसान होना चाहिए, बल्कि यह पास हुआ कि अब भी आतंकवादी संगठन जो लोग करते हैं, वे सामाजिक आर्थिक शक्तियों का विरुद्धाचरण करते हैं।

१९३९ का अधिवेशन उन्नाव के मकूर में श्री विश्वम्भरदयाल त्रिपाठी के संरक्षकत्व में। तथा श्री बटुकेश्वर दत्त की अध्यक्षता में हुआ।

और प्रांतों में यूथलीगों की कोई प्रांतीय कमेटी नहीं है या है तो संयुक्त प्रांत की तरह क़रीब क़रीब मरी हुई हैं; कोई विशेष काम वे नहीं करतीं।

——:०:——

भारतीय-विद्यार्थी-संघ

(Student Federation)

प्रारम्भिक-युग

विद्यार्थी भी उसी तरह का एक समुदाय है, जैसे युवक, बल्कि बहुत कुछ हद तक दोनों एक ही हैं। भारतवर्ष में विद्यार्थी-आन्दोलन का जन्म विद्यार्थी संघ के रूप में बहुत बाद को हुआ, किन्तु इसके बहुत पहिले ही विद्यार्थियों ने सामूहिक रूप से देश के आन्दोलनों में भाग लिया। १८८४ में आई० सी० एस० परीक्षा के विलायत में लिये जाने का विरोध भारतीय नेताओं तथा विद्यार्थियों ने किया था, इसका कारण स्पष्ट है। १९०५ के बंगभंग के युग में बंगाली छात्र सरकारी विद्यालयों से निकल आये। राष्ट्रीय शिक्षा तथा सरकारी स्कूलों के बायकाट का नारा पहिले पहल इसी ज़माने में दिया गया। इसी युग में पंजाब के छात्रों में लाला लाजपतराय तथा सर्दार अजीत सिंह ने खूब काम किया। सर्दार अजीतसिंह लायलपुर में शिक्षक थे, यह बात द्रष्टव्य है कि यहीं एक कानफ़रेंस होने के तुरन्त बाद ही सर्दार अजीतसिंह तथा लाला जी को देश निकाला दे दिया गया।

१९१९—२१

रौलट ऐक्ट के विरुद्ध जो आंदोलन हुआ, उस में भी छात्रों ने भाग लिया। ख़ास कर १९२१ में जब महात्मा जी ने असहयोग आं-

दोलन चलाया तो उसके कार्य-क्रम का एक अंग सरकारी स्कूलों का बायकाट था, इसमें हज़ारों की तादाद में छात्रों ने भाग लिया। लाहौर और अलीगढ़ में राष्ट्रीय कालेज स्थापित हुए, तथा बनारस, गुजरात और बिहार में विद्यापीठ स्थापित हुई। इसी ज़माने में पहिले पहल कुछ विद्यार्थी-संघ बने, किन्तु राष्ट्रीय आन्दोलन का उफ़ान नीचा पड़ते ही ये संघ ख़तम हो गये।

पहिला प्रांतीय संघ

१९२७ में सर्दार भगतसिंह, भगवती चरण, सुखदेव तथा एहसान इलाही ने एक पृथक् विद्यार्थी-संघ की आवश्यकता महसूस की, तदनुसार लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में इस समय पहिली लाहौर-विद्यार्थी-कानफ़रेन्स बुलायी गयी। इसकी सफलता से उत्साहित होकर दूसरे स्थानों में भी विद्यार्थी कान्फ्रेंसें बुलायी गयीं १९३० के आनदोलन में विद्यार्थियों ने राष्ट्र की पुकार सुनी, और सैकड़ों जेल चले गये। आंदोलन के ज़माने में पंजाब-विद्यार्थी-संघ तथा बंगाल और बम्बई के कुछ विद्यार्थी संघ ग़ैर क़ानूनी घोषित किये गये।

अखिल-भारतीय-संघ

१९३४ में देश के कोने कोने में विद्यार्थी-संघ बने। संघ इस नारा पर बनाये गये "विद्यार्थियो! एक होकर अपने हक़ों को पहिचानों तथा उनकी रक्षा करो।" बात यह है कि १९३०—३१ के विश्व-व्यापी आर्थिक-सङ्कट का भारतवर्ष पर विशेष कर मध्यवित्त श्रेणी पर व्यापक प्रभाव पड़ा। शिक्षित मध्यवित्त श्रेणी की हालत पहिले से ही गिर गयी थी, विद्यार्थियों में इसका प्रभाव भी स्वाभाविक था। संयुक्त प्रांत तथा कुछ और प्रांतों में प्रांतीय-विद्यार्थी-संघ स्थापित हो चुके थे; किन्तु संयुक्त प्रांत के श्री बदीउद्दीन और प्रेमनारायण भार्गव के उद्यम से ये संघ १९३६ में एक अखिल-भारतीय-संघ में परिणत हो

गये। इस संघ के साथ साथ मुसलिम-विद्यार्थी - संघ, हिन्दू विद्यार्थी-सभा तथा ईसाई छात्रों के भ्रातृत्व स्थापित हो गये; किन्तु आम विद्यार्थियों ने अपने को साम्प्रदायिकता के ज़हर से दूर रक्खा। यहां तक कि स्वयं अलीगढ़ की यूनिवर्सिटी यूनियन ने मुसलिम विद्यार्थी-संघ से अपना संबंध रखने से इनकार किया।

प्रथम अधिवेशन

अखिल-भारतीय-विद्यार्थी संघ का प्रथम अधिवेशन अगस्त १६३६ में लखनऊ में हुआ, ११ प्रांतों के प्रतिनिधि आये थे। पं० जवाहर-लाल नेहरू ने कानफ़रेंस का उद्घाटन किया, और मिस्टर जिन्ना इसके सभापति हुए। इस कानफ़रेन्स में सभी विचारों के विद्यार्थियों का एक संगठन उनकी नित्यप्रति की मुसीबतों, माँगों, ज़रूरतों के आधार पर स्थापित हुआ।

आन्दोलन का उद्देश्य

कानफ़रेंस ने संक्षेप में विद्यार्थी संघों के चार उद्देश्य गिनाए:—

(१) विद्यार्थियों की मुसीबतों को दूर करना।
(२) बेकारी का प्रतिषेध करना।
(३) सादा रहना तथा उच्च विचार का प्रचार करना।
(४) शिक्षा के सड़ेगले तरीक़े के विरुद्ध आन्दोलन।

Student's Tribune नाम से विद्यार्थियों का एक पत्र भी निकला।

नवम्बर १९३६ में श्रीशरत्चन्द्र बोस के सभापतित्व में अखिल-भारतीय-विद्यार्थी-संघ का दूसरा अधिवेशन हुआ। दूसरा अधिवेशन इतना जल्दी बुलाया गया, कि विधान पास करना तथा क्या क्या सङ्गठन हुए हैं, उनका हिसाब लेना था।

विद्यार्थियों का अधिकार-पत्र

इस कानफ़रेन्स के अवसर पर एक charter of student's rights

पास हुआ। इसमें ये बातें थीं—

(१) एक विद्यार्थी को हर प्रकार से देश सेवा का अधिकार है।

(२) शिक्षा केवल उपयोगिता की दृष्टि से न होकर सर्वतोन्मुखी विकास की दृष्टि से हो।

(३) ऐसी शिक्षा के वर्जन का अधिकार हो जो राष्ट्रीयता-विरोधी या साम्प्रदायिक वैमनस्य उत्पादन करने वाली हो।

(४) विद्यार्थियों का कर्त्तव्य केवल पिता, माता तथा अभिभावक के प्रति ही नहीं देश के प्रति भी है।

(५) प्रत्येक विद्यार्थी की आन्तरिक योग्यता का ख़याल शिक्षा में रक्खा जाय।

(६) कम से कम ख़र्च में पक्षपातहीन शिक्षा मिले, जिससे हर एक इससे लाभ उठा सके।

(७) शिक्षा में सरकार और अधिक ख़र्च करे, ताकि विद्यार्थी का भार हल्का हो।

(८) ऐसे शिक्षाकेन्द्र बनें जिनका उद्देश्य पैसा पैदा करना न हो।

(९) शिक्षकों को इतनी सुविधाएँ तथा तनख़्वाह दी जाय जिस से कि वे आधुनिक ज्ञान विज्ञान, से सम्बन्ध रख सकें।

(१०) शिक्षालय के भीतर तथा बाहर बोलने, लिखने, सभा करने की आज़ादी हो।

(११) विद्यार्थी-संघों के हक़ इस मामले में मान लिये जायँ कि वे विद्यार्थियों की मांगों तथा कष्टों के प्रतिनिधि हैं।

(१२) शिक्षालयों के छात्र-सम्बन्धी-इन्तज़ाम में छात्रों का उचित हाथ हो।

(१३) विद्योपार्जन के लिए यन्त्र तथा उपकरण बिना मुनाफ़ा लिए मिलें।

(१४) व्यायामशालाएँ, खेल, रेडियो, सिनेमा तथा पुस्तकालय छात्रों के लिए हों।

(१५) परीक्षा से मुक्ति, किन्तु जब तक यह न हो सके तब तक न्यायपूर्ण ढङ्ग से इस प्रकार परीक्षाएँ हों कि परीक्षार्थी को अपना पूरा ज्ञान दिखाने का मौक़ा मिले और यह न हो कि आये हुए प्रश्नों के अलावा सब जानते हुए भी छात्र फ़ेल हो जाय।

(१६) नौकरी का हक़ हो। इत्यादि

विद्यार्थी संघों की हर साल एक कानफ़रेन्स होती है। तीसरी कानफ़रेन्स में संघ के दो दल हो गये, किन्तु बाद को फिर दोनों दल एक हो गये।

विद्यार्थियों की हड़ताल

समय समय पर छात्रों को अपनी जायज़ बातें मनवाने के लिये हड़ताल भी करनी पड़ी है। ख़ालसा-कालेज, अमृतसर के कुछ राष्ट्रीयता वादी अध्यापकों को अधिकारीवर्ग हटाना चाहते थे, इस कारण उन्हें हड़ताल करनी पड़ी। फ़ैज़ाबाद के कुछ छात्र श्रीमती सरोजनी नायडू की वक्तृता सुनने गये थे, इस से उन पर जुर्माना किया गया, तो हड़ताल हुई। कानपुर डी० ए० वी० के छात्रों ने इसलिए हड़ताल कर दी कि प्रान्तीय असेम्बली के चुनाव में उनसे कोई भाग न लेने को कहा गया। दिल्ली के तिब्बिया कालेज के विद्यार्थियों ने इसलिए हड़ताल कर दी कि उन्हें हर एक चीज़ कालेज स्टोर से ख़रीदने को कहा गया। इलाहाबाद अग्रवाल-विद्यालय के छात्रों ने इस माँग पर हड़ताल की थी कि कुछ राष्ट्रीय विचारों के छात्रों के प्रिय अध्यापकों को अधिकारियों ने निकाल दिया, इलाहाबाद ईविंग-क्रिश्चियन कालेज के विद्यार्थियों ने इसलिए हड़ताल की थी कि अधिकारियों ने छात्रों के इच्छानुसार झंडा फहराने न दिया था। १९४० की फ़रवरी में इलाहाबाद-महिला-सेवा-

सदन की एक छात्रा ने अधिकारियों के विरुद्ध कुछ बहुत ही भयङ्कर आरोप लगा कर भूख हड़ताल कर दी थी, अभी तक इन आरोपों पर जांच हो रही है।

हड़ताल का अधिकार

हड़ताल एक छात्र का अधिकार है। कांग्रेस तथा गान्धी जी ऐसा ही मानते थे। १९२१ में छात्रों को कालेज से निकालने वाले वे ही थे, किन्तु कांग्रेस मंत्रिमंडलों के स्थापन के बाद से एकाएक कांग्रेस का रुख़ बदल गया। छात्रों ने इस नई रोशनी को न माना।

१९४० की कानफ़रेंस

जनवरी १९४० में दिल्ली में श्री सुभाषचन्द्र बोस के सभापतित्व में जो विद्यार्थी कानफ़रेन्स हुई, उसमें कई अजीब बातें हुईं। विद्यार्थी विभिन्न राजनैतिक दलों में बँटे हुए थे। इसलिए इसमें अजीब रंग आये। युद्ध पर एक प्रस्ताव पेश था। कुछ लोग चाहते थे कि इसमें रूस के समर्थन का एक वाक्य जोड़ा जाय; किन्तु कम्युनिस्टों ने इसका विरोध किया। इसका कारण पूछने पर वे बताते हैं कि यदि यह संशोधन पास हो जाता, तो बहुत से विद्यार्थी बिदक जाते। चर्खा के विरुद्ध जो प्रस्ताव था, कम्युनिस्टों ने उसका भी विरोध किया। कांग्रेस समाजवादियों ने भी ऐसा ही किया। इस पर भले ही कुछ लोग ख़ुश हो लें कि विद्यार्थी-संघने अपने सभापति श्रीयुत बोस के प्रभाव में आना स्वीकार किया; किन्तु वे इस प्रकार गांधीवाद के राजनैतिक दलबन्दी से अलग रहे, यह तो नहीं कहा जा सकता।

अन्त में यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिए कि विद्यार्थी-आन्दोलन अभी बचपन में है। अक्सर स्थानों पर यह एक जीवन्मृत संस्था है, जिस पर राजनैतिक दल मौक़े पर आबेहयात छिड़क कर काम निकाल लेते हैं।

क्रान्तिकारी दल

सूत्रपात

भारतवर्ष में क्रान्तिकारी आन्दोलन का सूत्रपात बंगभंग के समय में हुआ। यों तो चाफेकर बन्धु ने १८९७ में पूना में ही मिस्टर रैंड को मार कर एक आतंकवादी कार्य किया था; किन्तु उसे शायद षड्यन्त्र की मर्यादा नहीं दी जा सकती। १९०५ में बंगभंग के कारण बंगाल में बड़ा असन्तोष फैला। जगह जगह इसके विरोध में सारे बंगाल में सभाएँ हुईं, जुलूस निकाले गये, और "अनुशीलन समितियां" क़ायम हुईं, जिनमें कसरत के साथ साथ मानसिक उन्नति का ध्येय भी रक्खा गया। देशी पूँजीपति उस समय मिलें खोल रहे थे, स्वदेशी का नारा इनकी उन्नति के लिए बड़ा लाभ दायक सिद्ध हुआ। विदेशी कपड़ों की दूकानों पर पिकेटिंग करने का रिवाज भी पहिले पहल उसी समय पैदा हुआ। आम जनता ने इस आन्दोलन का ख़ूब साथ दिया। पहिले पहल तो सरकार ने इस आन्दोलन को यों ही देखा, किन्तु बाद को जब यह बढ़ गया तो सरकार ने घबरा कर इन समितियों को ग़ैर-क़ानूनी क़रार देना शुरू किया। फलस्वरूप यह समितियाँ गुप्त रूप में परिणत हो गयीं। इस प्रकार देखा गया कि गुप्त समितियाँ एकाएक किसी एक षड्यन्त्रकारी के दिमाग़ से पैदा नहीं हुईं, बल्कि उनकी उत्पत्ति ऐतिहासिक कारणों से हुई थी।

अलीपुर-षड्यन्त्र

अलीपुर-षड्यन्त्र ही भारतवर्ष का पहिला क्रान्तिकारी षड्यन्त्र था। १९०८ में इसका पता पता पुलिस को लगा। श्रीअरविन्द घोष के छोटे भाई श्री वारीन्द्रकुमार घोष इस षड्यन्त्र के नेता थे। उन्होंने जब देखा कि खुल्लम-खुल्ला काम करने से भारत की स्वाधीनता नहीं मिलती, क्योंकि सरकार खुले आन्दोलन को अधिक पनपने नहीं देती, तो उन्होंने बंगाल के ज़िले ज़िले का दौरा किया, अखाड़े स्थापित किए, नौजवानों की रुचि कसरत तथा राजनीति की ओर लगायी। उन्होंने यह भी सोचा कि केवल शुद्ध राजनैतिक कार्य से ही इस देश में कुछ नहीं होगा, इसलिए उन्होंने आध्यात्मिक शिक्षा देनी शुरू की। उन्होंने भूपेन्द्रनाथ दत्त के साथ 'युगान्तर' नामक एक अख़बार निकाला, जिसकी उस ज़माने में बड़ी धूम थी। उन्होंने कुछ अस्त्रों का भी संग्रह किया, इसके साथ ही बम बनाये गये।

कन्हाईलाल, खुदीराम

वारीन्द्रकुमार तथा उनके साथियों को आजन्म कालेपानी की सज़ा हुई। ३० अप्रैल १९०८ को किंग्सफ़ोर्ड के धोखे में मिसेज़ और मिस केनेडी की गाड़ी पर इसी षड्यन्त्र में खुदीराम नामक एक नौजवान ने बम फेंका, दोनों मर गयीं—यह घटना मुजफ़्फ़रपुर की थी। अलीपुर-षड्यन्त्र के सिलसिले में हवालात में बन्द कन्हाईलाल ने उस मुक़द्दमे के मुख़बिर नरेन गोसाईं पर गोली मार दी। खुदीराम तथा कन्हाई लाल दोनों को बाद में जाकर इन्हीं हत्याओं के सम्बन्ध में फाँसी हुई। कन्हाई की लाश के साथ अपार जनसमुद्र था। जब कन्हाई

यद्यपि यह दल बिलकुल ख़तम हो गया है; तथापि भारत की राजनीति में अधिक काल तक काम करते रहने के कारण पाठकों की जानकारी के लिए यहां दे रहे हैं।

की लाश जल गई तो हज़ारों ने उनकी राख गंडा-ताबीज़ बनाने के के लिए लूट ली। यह बात बिना किसी हिचकिचाहट के कही जा सकती है कि कन्हाईलाल तथा ख़ुदीराम बंगाल की चेतना के अंतरंगतम स्तर में प्रविष्ट हो गये।

पंजाब में क्रांति की लहरें

सर डेनज़िल इबटसन ने जो उन दिनों पंजाब के गवर्नर थे, १९०७ में एक रिपोर्ट दी, जिसमें कहा गया कि पंजाब प्रान्त में उग्र विचारों का बड़े ज़ोर से प्रचार हो रहा है। सर डेनज़िल ने यह भी लिखा कि—दो जगह गोरे अपमानित किये जा चुके हैं, और एक जगह, एक सम्पादक को सज़ा देने पर दंगा भी हो गया है। असली बात यह थी कि आर्थिक शोषण से लोग घबरा रहे थे। लाला लाजपतराय और सर्दार अजीतसिंह १९०९ को गिरफ़्तार कर लिए गये, और बैर्मा में निर्वासित किये गये। लाला जी के पास श्याम जी को लिखे हुए दो पत्र मिले। अजितसिंह बाद को ईरान भाग गये। प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि लालचंद फ़लक को इसी ज़माने में सज़ा हुई और भाई परमानन्द से मुचलका ले लिया गया।

अमीरचंद तथा हरदयाल

असन्तोष आम तौर से था, किन्तु कोई क्रान्तिकारी संगठन न था। दिल्ली वासी मास्टर अमीर चंद १९०६ में ही स्वदेशी आन्दोलन के प्रभाव में आ चुके थे; किन्तु लाला हरदयाल विलायत से जब लौट कर आये, और राजनैतिक शिक्षा में जुट गये, तभी वे क्रियाशील हुए। यहीं से दिल्ली षड्यंत्र का सूत्रपात हुआ। जब रासबिहारी उत्तर भारत में आये, उस समय इस षड्यन्त्र ने भयंकर रूप धारण किया। रास बिहारी ने लाला हर दयाल के शुरू किये हुए इस षड्यन्त्र में ख़ूब तरक्क़ी की। १९१२ में लार्ड हार्डिञ्ज पर इसी संगठन की ओर से बम फेंका गया था।

धींगरा द्वारा सर कर्ज़न की हत्या

हमें एक विशेष घटना के वर्णन के लिए थोड़ा पीछे जाना पड़ेगा। लंदन के प्रवासी छात्रों में वर्तमान हिन्दू-महा-सभा के नेता श्री सावरकर के नेतृत्व में १९०८ में एक राष्ट्रीय गुट्ट था, जिस की ओर से वहां उसी समय ग़दर दिवस मनाया गया था। इस की ओर से 'ऐ शहीदों' नाम का एक परचा भी निकला था और इंडिया हाउस में आने जाने वाले भारतीयों में, समय-समय पर उत्तेजक साहित्य भी बांटा जाता था; ताकि वे अपने भारतीय मित्रों को ये पर्चे भेज सकें। १९०९ की पहली जुलाई को मदनलाल धींगरा नामक एक पंजाबी छात्र ने सर कर्ज़न वाइली नामक एक अंग्रेज़ को गोली मार दी। ऐसा धींगरा ने इसलिए किया कि वह समझता था कि सर कर्ज़न वाइली,



(ला० हर दयाल)

भारतसचिव के अंगरक्षक होने पर भी, नाम के लिए भारतीय छात्रों पर ख़ुफ़ियों का काम करते थे। सरकार को ज्ञात हुआ कि सावरकर का इसमें हाथ है, अतः वे गिरफ़्तार कर लिए गये और कालेपानी की सज़ा

हुई। उनके बड़े भाई श्री गणेश सावरकर को भी एक कविता के लिए कालेपानी की सज़ा दी गयी थी।

दिल्ली दर्बार

१९११ के दिल्ली दरबार में बादशाह ने घोषणा की कि बंगालियों के असन्तोष का ख़याल कर बंगभंग रद्द किया जाता है, और कलकत्ता से राजधानी दिल्ली लाई जाती है। इस तरह बंगभंग रद्द कराकर सरकार ने सोचा था कि बंगाल का असन्तोष ख़तम हो जायगा; किन्तु यह बात न हुई। बंगाल का आन्दोलन बंगभंग से शुरू ज़रूर हुआ, किन्तु, अब वह स्वाधीनता के आंदोलन में परिवर्तित हो चुका था। कलकत्ते से राजधानी दिल्ली ले जाने का सबब यह भी था कि सिर पर लड़ाई के आसार मालूम हो रहे थे। बंगाल एक बाग़ी प्रांत था, समुद्र से दूर देश के बीच में राजधानी होना ही वाञ्छनीय था। किन्तु जैसा कि १९१२ में हुआ, जिन क्रांतिकारी बातों से सरकार बचना चाहती थी, वही दिल्ली में भी आ गयीं।

वायसराय पर बम

लार्ड हार्डिञ्ज बड़े समारोह के साथ दिल्ली में प्रवेश कर रहे थे। मीलों लम्बा जुलूस था। इतने में जुलूस जब चांदनी चौक में पहुंचा ही था कि किसी अज्ञात दिशा से वायसराय की सवारी पर एक भयंकर बम गिरा। निशाना चूक तो गया; किन्तु वायसराय का अंगरक्षक मर गया और वायसराय महोदय मूर्छित हो गये। जुलूस में भगदड़ मच गयी। पुलिस ने चौक को घेर लिया; किन्तु बम फेंकने वाले का पता न लगा। बाद को इस सिलसिले में अमीरचन्द, अवधबिहारी तथा बालमुकुंद को फाँसी की सज़ाएँ हुईं।

ग़दर दल तथा उत्तर भारत में षड्यंत्र

लाला हरदयाल भारतवर्ष से भाग कर अमेरिका गए, और वहां

के बसे हुए हिन्दुस्तानियों में अपना संगठन बढ़ाने लगे। 'ग़दर' नाम से एक अख़बार भी निकाला। इस अख़बार का सब काम—कम्पोज़ से लेकर छपाई तक, ये क्रांतिकारी ही करते थे। जो इस पत्र को चलाते थे, उनमें श्री कर्तारसिंह भी थे। जब महायुद्ध छिड़ा तो 'ग़दर' दल ने सोचा कि अब भारत में लौटकर ग़दर की वास्तविक तैयारी होनी चाहिए। सरकार विदेशों में भी इन लोगों पर निगरानी रख रही थी, इसलिए जो आता उसी को ये गिरफ़्तार कर लेते थे। फिर भी बहुत से लोग पुलिस की आँख बचाकर पहुँच ही गये, और उन्होंने अन्य क्रांतिकारियों के साथ मिलकर निश्चित किया कि २१ फ़रवरी १९१५ को सारे भारत में क्रान्ति की जाय। जनता को साथ न लेने के कारण तथा कच्ची हालत में रहस्य प्रकट हो जाने के कारण यह क्रान्ति-चेष्टा सफल न हो सकी। इस असफल क्रान्ति में भाग लेने के कारण सैकड़ों की तादाद में क्रान्तिकारियों को फाँसी तथा काले पानी की सज़ाएँ हुईं। बीसियों षड्यन्त्र चले। इन षड्यन्त्रों में बताया गया कि सरकार को उलट देने के इरादे से ही इन लोगों ने हथियार इकट्ठे किये, डाके डाले तथा फ़ौजों में प्रचार करके उन्हें बग़ावत करने के लिए तैयार किया था। छात्रों से पर्चों द्वारा अपील की गयी थी कि वे पढ़ना छोड़ कर क्रान्तिकारी कामों में भाग लें।

बनारस तथा मैनपुरी षड्यन्त्र

संयुक्त प्रान्त में बनारस षड्यंत्र चला, जिसके प्रमुख अभियुक्त श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल को कालेपानी की सज़ा हुई। इसके अतिरिक्त एक षड्यंत्र मैनपुरी में भी चला। यद्यपि यह भी राजनैतिक षड्यंत्र था, किंतु इसका सम्बन्ध और किसी षड्यंत्र से न था। पं० गेंदालाल जी दीक्षित इस षड्यंत्र के नेता थे। इन्हीं दिनों मेरठ छावनी में पिंगले भयंकर बम लेकर छावनी के सिपाहियों को भड़काने गये थे, उन्हें फांसी हो गई।

विदेशों में क्रांति—आयोजन

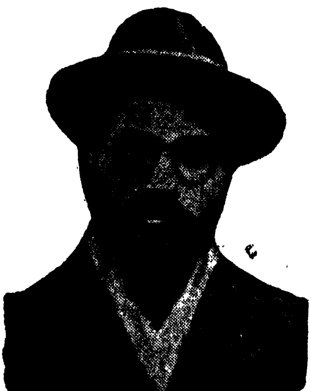
१९१७ के २२ नवम्बर को अमेरिका के सैनफ्रैंसिस्को में एक मुक़द्दमा चला, इस में यह बात ज्ञात हुई कि १९११ में ही लाला हरदयाल ने जर्मन एजंटों तथा भारतीय क्रांतिकारियों के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए एक बड़ा षड्यंत्र किया था। इस षड्यंत्र का विस्तार कैलिफ़ोर्नियां तथा ओरिगौन तक था। इसमें दिखलाया गया कि प्रचार यह किया जाता था कि जर्मनी की मदद से ही भारतवर्ष आज़ाद होगा। १९१४ के सितम्बर में चम्पकरमण पिल्ले नामक एक यूरोपप्रवासी तामिल छात्र ने जर्मन सरकार से यह अनुमति मांगी कि उन्हें जर्मनी से ब्रिटिशविरोधी साहित्य का प्रकाशन करने दिया जाय। कहना न होगा कि यह प्रस्ताव मंज़ूर कर लिया गया और वे परराष्ट्र दफ़्तर की देख-रेख में काम करने लगे। उन्होंने वहां क्रान्ति को सफल बनाने के लिए इंडियन नेशनल पार्टी नामक एक दल स्थापित किया। इसमें लाला हरदयाल, तारकनाथ दास, बरक़तउल्ला, चन्द्र चक्रवर्ती तथा हेरम्बलाल गुप्त भी थे। बरक़तुल्ला इस काम में लग गए कि जितने भी हिन्दुस्तानी फ़ौज के आदमी जर्मनी द्वारा क़ैद कर लिए जाते हैं उन्हें ब्रिटिश विरोधी बनाया जाय। हेरम्ब लाल गुप्त कुछ दिनों तक जर्मनी की ओर से अमेरिका में एजेंट थे।

१९१४ के अन्त में सरकार को पता लगा कि रामचन्द्र मजुमदार, अमरेन्द्र चटर्जी. यतीन मुकर्जी, अतुल और नरेन्द्र भट्टाचार्य (एम० एन० राय) यह षड्यन्त्र कर रहे हैं—कि एक बड़ी तादाद में विदेशों से आने वाले अस्त्र-शस्त्र रक्खे जाँय। इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए गार्डन रीच तथा बेलियाघाटा में दो डकैती डाल कर इन्होंने ४०,००० रुपये इकट्ठे किये। भोलानाथ चटर्जी इस षड्यन्त्र की ओर से बैंकर बनाकर इस कारण भेजे गए कि वे वहां के द्वारा विदेशों के साथ लेन देन करें। जितेन्द्र लाहिड़ी ने यूरोप से बम्बई

लौटने पर यह ख़बर दी कि भारतीय-क्रांतिकारी को एजेन्ट बनाकर बैटेविया भेजा जाय। तदनुसार नरेन्द्र भट्टाचार्य बैटेविया भेजे गये और अवनी मुकर्जी इसी उद्देश्य से जापान भेजे गये। इसी अस्त्र-शस्त्र पहुँचाने के उद्देश्य को पूरा करने के लिए जर्मनी ने 'मावेरिक' तथा 'हेनरी एस' नामक दो जहाज़ अस्त्र-शस्त्रों से भरकर रवाना किए थे। शंघाई में कुछ चीनियों की गिरफ़्तारी हुई, जिनके पास १२९ पिस्तौलें और २०,००० कार्तूसें थी; ये भारत के लिए भेजे जा रहे थे। लड़ाई के अन्तिम दिनों में राजा महेन्द्र प्रताप भी ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध क्रियाशील रहे।

बम तथा सिंगापुर में षड्यन्त्र

तुर्की-इटली युद्ध के सिलसिले में बीमारों की सेवा के लिए भारतीय मुसलमानों का एक मिशन तुर्की गया था। अली अहमद नामक एक भारतीय नौजवान को इस सिलसिले में अनवर पाशा का सत्संग करने का मौक़ा मिला। इस मिशन का काम ख़तम होने पर इन्होंने तुर्की का भ्रमण किया। अली अहमद लौट कर क्रान्तिकारी बने। इसी प्रकार अबू सैयद नामक एक रंगूनी मुसलमान भी तुर्की में गये थे, उन पर भी यही प्रभाव पड़ा। उसके अनुरोध पर तौफ़ीक़ बे, और फिर फ़हम अली भेजे गये। इस प्रकार तरुण तुर्क दल के नेतृत्व में बर्मा में एक षड्यन्त्र होने लगा। धीरे धीरे ग़दर दल के साथ इस षड्यन्त्र का सम्बन्ध स्थापित हो गया। तरुण तुर्क दल की ओर से



(राजा महेन्द्र प्रताप)

'जहान-इ-इस्लाम' नाम का एक अख़बार निकलता था, जब ग़दर दल, और तरुण तुर्क दल का एकीकरण हो गया तो अक्सर इस पत्र का सम्पादकीय लाला हरदयाल लिखने लगे।

फ़ौजों में विप्लव

नवम्बर १९१४ में १३० नम्बर बलूची फ़ौज सज़ा के तौर पर बर्मा भेजी गयी, इनको यह सज़ा इसलिए दी गयी कि बम्बई में रहते समय इन्होंने अपने एक अफ़सर की हत्या कर डाली थी। इनके यहां आते ही इनमें "ग़दर" फैलाया गया, और १९१५ तक ये क्रान्तिकारियों के साथ ग़दर करने को तैयार हो गये, किन्तु इसके पहिले ही कि वे अपनी इच्छा पूरी कर सकें उन्हें दबा दिया गया, और २०० सिपाहियों को सज़ा दे दी गयी। एक पकड़े हुए पत्र से सरकार को पता लगा कि सिंगापुर के Malay State Guides नामक पल्टन ग़दर के लिए तैयार है, ऐसा मालूम होते ही उस फ़ौज का तबादला कर दिया गया।

सोहन लाल

सोहनलाल सैनफ्रैंसिस्को की ग़दर पार्टी का दूत बन कर आये थे। वे एक दिन फ़ौज में क्रान्ति का प्रचार करते हुए पकड़े गए, और उन्हें फांसी हो गयी। फांसी के तख़्ते के पास ले जाकर सोहनलाल से कहा गया कि वे माफ़ी मांगें तो उनकी फांसी रद्द कर दी जाय, किन्तु वे इस शर्त पर राज़ी न हुए।

सिंगापूर में विप्लव

सिंगापुर के ग़दर आयोजन का पंजाब के ग़दर के साथ यद्यपि कोई दृश्यमान सम्बन्ध नहीं था, फिर भी २१ फ़रवरी १९१४ वहां के ग़दर के लिए नियत थी। पंजाब की तो यह तारीख़ ख़ाली गयी, किन्तु सिंगापुर में उस दिन ग़दर हो गया। इस ग़दर में प्रमुख क्रान्तिकारी हमीरपुर राठ के पंडित परमानन्द का हाथ था। हमारे राष्ट्र के बड़े बड़े

नेताओं को तमाम पैक्ट और कानफ़रेन्स हिफ़्ज़ हैं, किन्तु उन्हें नहीं मालूम कि सिंगापुर में ग़दरियों का सात दिन राज्य रहा। रूसी, जापानी तथा अंग्रेज़ी जहाज़ों के बेड़े की सहायता से बड़ी कठिनता से यह ग़दर दबाया जा सका। जब विद्रोहियों ने देखा कि अब पार पाना मुश्किल है, तो वे इधर उधर के जंगलों में भाग निकले।

रेशमी चिट्ठियों का षड्यन्त्र

सन् १९१६ में सरकार को पता लगा कि मुसलमानों का एक सरकार विरोधी षड्यन्त्र भारत में क्रियाशील है। योजना यह थी कि सीमान्त प्रदेश से भारत पर हमला हो, साथ ही भारत के मुसलमान विद्रोह में उठ खड़े हों। यह एक पैन-इस्लामिक षड्यन्त्र था, किन्तु मज़े की बात है कि परिस्थितियों की थपेड़ से इसी आन्दोलन का रुख़ बदल गया। १९१५ में ओबेदुल्ला फ़तह मुहम्मद, और मोहम्मद अली सरहद के उस ओर गये। ओबेदुल्ला चाहते थे कि भारत भर में सर्वइस्लामवाद (Pan Islamism) तथा ब्रिटिश विद्वेष का प्रचार किया जाय। ओबेदुल्ला को यह पता लगा कि इस प्रकार मुसलमानों तक इस आन्दोलन को सीमित करना ग़लत होगा, यह परिवर्तन इतना बड़ा हुआ कि ओबेदुल्ला ने स्वाधीन भारत की जो योजना बनाई उसमें एक हिन्दू क्रान्तिकारी राजा महेन्द्रप्रताप राष्ट्रपति होने वाले थे, बर्कतुल्ला प्रधान मन्त्री होते, और वे एक मंत्री मात्र होते। सच बात तो यह है कि इस प्रकार की एक अस्थायी सरकार बनायी गयी, और उसकी ओर से रूसी ज़ार को एक पैग़ाम भेजा गया कि वे अंग्रेज़ों के विरुद्ध दल को सहायता दें। इस षड्यन्त्र का केन्द्र बहुत दिनों तक क़ाबुल तथा मदीना रहा। मदीना से हजयात्रियों के हाथ इस के पैग़ाम हिन्दुस्तान में भेजे जाते थे; किन्तु चूँकि पत्र पकड़े जाने का डर था; इसलिए पीले रेशम पर पैग़ाम बहुत साफ़ तरीक़े से लिखा गया था। इन चिट्ठियों में ग़ालिब नामा, भारतीय अस्थायी सरकार, तथा क्रान्तिकारी ख़ुदाई फ़ौज

का उल्लेख था। ये चिट्ठियां सरकार के हाथ लग गयीं। फलस्वरूप सरकार ने एक बहुत बड़ी तादाद में गिरफ़्तारियाँ कीं, और यह षड्यन्त्र दबा दिया गया।

रौलट रिपोर्ट

लड़ाई के ज़माने में ही सरकार ने माननीय जस्टिस एस० ए० टी० रौलट के सभापतित्व में एक कमेटी बैठायी। इस कमेटी का उद्देश्य था (१) क्रान्तिकारी-आन्दोलन से सम्बन्ध रखने वाले दल तथा षड्यन्त्रों के विस्तार का पता लगाना और (२) इन षड्यन्त्रों को दबाने में जो दिक़्क़तें पेश आयीं उनका दिग्दर्शन कराना और तरीक़े बताना, जिन से ये दबाए जा सकें।

असहयोग की उत्पत्ति

बड़ी छानबीन अर्थात् पुलिस रिपोर्टों की छानबीन के बाद इस कमेटी ने एक रिपोर्ट पेश की, जिसमें सिफ़ारिश की गयी कि जनता के क़रीब क़रीब सब हक़ तथा नागरिकता के अधिकार छीन लिए जायँ। इन सिफ़ारिशों को मानना एक प्रकार से सी० आई० डी० राज्य का सूत्रपात करना होता। महात्मा गांधी ने इस बिल का प्रतिवाद किया। फिर कैसे इस बिल का विरोध करते समय जलियानवाला हत्याकांड हुआ, और किस प्रकार उसी से असहयोग की उत्पत्ति हुई—यह कांग्रेस के इतिहास में आ चुका है। भारतवर्ष के क्रान्तिकारी आन्दोलन से ही इस प्रकार असहयोग आन्दोलन का सीधा कार्य-कारण सम्बन्ध है। फिर भी ऐसा कहने से कि क्रान्तिकारी आन्दोलन से ही असहयोग, सत्याग्रह आदि आन्दोलनों की उत्पत्ति हुई, ग़लत होगी। इसके बजाय यह कहना ही ठीक होगा कि दोनों की उत्पत्ति एक ही कारण परम्परा से हुई।

असहयोग के बाद

असहयोग आन्दोलन तो चौरीचौरा घटना के बाद बन्द कर दिया

गया, लेकिन छिटफुट तरीके से क्रान्तिकारी आन्दोलन ने फिर भयंकर रूप धारण करना शुरू किया। ३ अगस्त १९२३ को शाँखारी-टोला में डाक लूटी गयी। दो एक वारदात और हुईं, फिर गोपीमोहन शाहा ने प्रसिद्ध पुलिस अफ़सर चार्ल्स टेगार्ट के (जिन्होंने सैकड़ों क्रान्तिकारियों को गिरफ़्तार करवाया था) धोखे में मिस्टर डे को मार दिया। इन सब बातों का बहाना लेकर सरकार ने रौलट ऐक्ट को एक दूसरे रूप में बङ्गाल में जारी कर दिया। नाम तो क्रान्तिकारियों के दमन का हुआ, किन्तु स्वराज्य-पार्टी के लोग यहां तक कि सुभाष बाबू भी गिरफ़्तार कर लिए गये।

काकोरी षड्यन्त्र

उत्तर भारत में फिर से क्रान्तिकारी षड्यन्त्र होने लगा। मुख्यतः दो तरह के लोग इसमें आये एक वे जो पहिले क्रान्तिकारी थे, जैसे सर्व श्री शचीन्द्र सान्याल, दामोदर सेठ, योगेश चटर्जी, मुकुन्दी-लाल, रामप्रसाद बिस्मिल इत्यादि, और दूसरे वे जो असहयोग अन्दो-लन में कूद पड़े थे किन्तु उसके ठंडा हो जाने पर चुप बैठना नहीं चाहते थे, जैसे विष्णुशरण दुबलिस, चन्द्रशेखर आज़ाद, रामदुलारे त्रिवेदी इत्यादि। शचीन्द्र बाबू इनमें से पुराने थे। उन्होंने हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन नामक एक संस्था बाक़ायदा स्थापित की। इस दल का उद्देश्य सशस्त्र संगठित क्रान्ति द्वारा भारत में प्रजातांत्रिक संघशासन की स्थापना करना था, जिसमें प्रत्येक बालिग़ तथा सही दिमाग़ वाले व्यक्ति को वोट का अधिकार प्राप्त होगा, तथा ऐसी समाज-पद्धति की स्थापना थी जिसमें मनुष्य का मनुष्य के द्वारा शोषण न हो सके। इस षड्यन्त्र में १९२५ की जनवरी में एक पर्चा बाँटा गया, और ९ अगस्त १९२५ को काकोरी के पास ट्रेन का ख़ज़ाना लूट लिया गया। इस षड्यन्त्र का फैलाव पंजाब से लेकर रंगून तक था। चन्द्रशेखर आज़ाद नामक पुस्तक में क्रान्तिकारी दल के विकास

का वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। संक्षेप में ध्येय के विकास की दृष्टि से उसमें क्रान्तिकारी आन्दोलन को निम्नलिखित समय-विभागों में बाँटा है—

(१) वह समय जब कि विद्रोह भाव के सिवा कोई विशेष विचार ही नहीं थे, १८९३–१९०५।

(२) वह समय जब स्वाधीनता की एक धुंधली धारणा थी १९०५–१९१४।

(३) वह समय जब स्वाधीनता की धारणा स्पष्ट हो गयी और इसमें प्रजातन्त्र की भी धारणा निश्चित रूप से सम्मिलित हो गयी १९१४–१९१९।

(४) वह समय जब कि प्रजातान्त्रिक स्वाधीनता के साथ साथ एक अस्पष्ट आर्थिक समानता क्रान्तिकारियों के मन में आदर्श के रूप में आयी १९२१–१९२८। बीच में १९१९ से १९२१ दो वर्ष तक आन्दोलन बन्द सा रहा। देश में एक दूसरा प्रयोग जारी था।

(५) उपर्युक्त बातों के अलावा इसके बाद के युग में वर्गबुद्धि भी आ गयी—

काकोरी मुक़द्दमे में इन चार व्यक्तियों को फाँसी हुई।

(क) पं० रामप्रसाद बिस्मिल—शाहजहांपुर
(ख) रोशन सिंह — ,,
(ग) अशफ़ाक़ुल्ला — ,,
(घ) राजेन्द्रनाथ लहरी — बनारस

दूसरे लोगों को विभिन्न सज़ाएँ हुईं।

कानपुर-षड्यन्त्र

नरेन्द्र भट्टाचार्य जिन्होंने यूरोप में जाते ही एम० एन० राय का नाम धारण किया, धीरे धीरे साम्यवादी हो गये, और कम्युनिस्ट

इन्टरनेशनल की ओर से भारतवर्ष में प्रचार-कार्य करने लगे। इस मुक़द्दमे का विशद ज़िकर हम कम्युनिस्ट आन्दोलन के अध्याय में कर चुके हैं।

बब्बर अकाली आन्दोलन

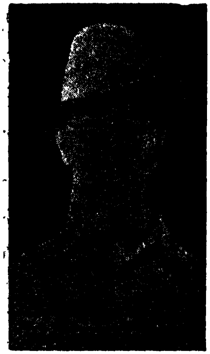
बब्बर अकाली आन्दोलन एक तरह से पंजाब के खेतिहर सिक्कों का आन्दोलन था। इस आन्दोलन के नेता किसनसिंह गड़गज्ज थे। इस दल के लोगों ने बहुत दिनों तक पंजाब की पुलिस की नाक में दम कर रक्खा था। धन्नासिह एक बम समेत गिरफ़ार कर लिए गये, तो उन्होंने बम को ऐसे फटा दिया कि ख़ुद भी मरे, किन्तु साथ में पाँच पुलिसवालों को भी लेते गए, जिनमें से एक मि० हार्टन अंग्रेज़ थे। इसी प्रकार कई जगह बब्बर अकालियों ने पुलिसवालों तथा मुख़बिरों को मारा। ९१ आदमी गिरफ़ार हुए, जिनमें से तीन जेल ही में मर गये। बाक़ी ८८ में से ५ को फांसी तथा बाक़ी को विभिन्न सज़ाएँ हुईं। अपील करने पर ५ के बजाय छै को फांसियाँ हुईं। ठीक होली के दिन २७ फ़रवरी १९२६ को इन्हें फांसी हुई।

अन्य मुक़द्दमे

मणीन्द्र नाथ बनर्जी ने १९२८ की १३ जनवरी को डि० एस० पी० जितेन्द्र बनर्जी पर पिस्तौल से हमला किया। हमला के फलस्वरूप मि० बनर्जी न मरे। देवघर में एक षड्यंत्र चलाया गया, इसके अभियुक्तों को विभिन्न सज़ाएँ हुईं। साइमन कमीशन को बम से उड़ाने के इरादे से ले जाते हुए बम फट गये। मार्कंडेय नामक एक क्रांतिकारी मरे, और मनमोहन गुप्त तथा हरेन्द्र को सज़ाएँ हुईं। बंगाल के दक्षिणेश्वर में एक बम का कारख़ाना निकला। जब इसी मुक़द्दमे के लोग क़ैद होकर अलीपुर जेल में पहुँचे तो उन्होंने राय बहादुर भूपेन्द्र चटर्जी नामक एक प्रसिद्ध पुलिस अफ़सर को मशहरी के डंडों से मार डाला। इस संबंध में अनन्तहरि मित्र तथा प्रमोद चौधरी को फाँसी हो गयी।

लाहौर-षड्यंत्र

काकोरी से लाहौर षड्यन्त्र का सीधा सम्बन्ध पड़ जाता है, जिस दल को काकोरी वाले H. R. A. या हिन्दुस्तान प्रजातांत्रिक संघ कहते थे, उसी को विकसित कर लाहौर षड्यन्त्र के नेता सरदार भगतसिंह ने H. S. R. A या हिन्दुस्तान साम्यवादी प्रजातान्त्रिक संघ नाम रक्खा। काकोरी के बाद श्री चन्द्रशेखर आज़ाद ने (जो काकोरी षड्यंत्र में फ़रार थे) संगठन का काम जारी रक्खा। उनके नेतृत्व तथा सहयोगिता में उत्तर भारत के कई प्रान्त संगठित किये गए। कुछ काकोरी क़ैदियों को जेल से भगाने का प्रयत्न किया गया, किन्तु असफल रहा। अक्टूबर १९२५ में दशहरे के अवसर पर बम फटे, इस संबंध में सरदार भगतसिंह पर मुक़द्दमा चलाया गया; किन्तु वे बरी हो गए। पहिले ही बताया जा चुका है कि शासन-सुधार के सम्बन्ध में जाँच करने के लिए साइमन कमीशन के नाम से एक कमीशन आया। मुल्क में इसका बायकाट हुआ। ३० अक्टूबर को जब यह कमीशन लाहौर पहुँचा तो इसके बायकाट का नारा बुलन्द करते हुए प्रवीण नेता श्री लाजपतराय पर पुलिस की लाठी पड़ी, और इसी चोट से वे कुछ दिन बिस्तरे पर पड़े रहे, और मर गये। देश में जो खलबली मची, उसे कार्य रूप में परिणत करते हुए, सर्व श्री चन्द्रशेखर आज़ाद, भगत सिंह, शिवराम, राजगुरु और जयगोपाल ने मि० सैंडर्स की हत्या कर डाली। भगतसिंह फ़रार रहे, किन्तु उन्होंने लौट कर १९२९ के ८ अप्रैल को बटुकेश्वर दत्त के सहयोग में एसेम्बली में एक बड़े ही मनोवैज्ञानिक मुहूर्त में बम



(सरदार भगतसिंह)

फेंका। उस दिन ट्रेड डिस्प्युट बिल पास हो चुका था, और पब्लिक सेफ्टी बिल पर राय दी जानेवाली थी, इस दिन से ये दोनों नाम भारतवर्ष के बच्चे बच्चे की जीभ पर हो गए। भगतसिंह ही "इनक़लाब ज़िन्दाबाद" नारे के प्रवर्तक हैं। भगतसिंह तथा दत्त ने एक संयुक्त वक्तव्य दिया। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने यह जो लिखा है कि भगतसिंह की ख्याति का कारण केवल यह है



(श्री यतीन्द्र नाथ दास)

कि वे एक मनोवैज्ञानिक परिस्थिति में सार्वजनिक रंगमंच पर आए, यह बात सम्पूर्ण सत्य नहीं है। भगतसिंह के बयान से मालूम हो गया कि क्रांतिकारी-समिति सही माने में जनता के लिए लड़ रही है। भगतसिंह के पीछे एक रोमांटिक-पश्चात्-भूमि थी, इससे जो कुछ उन्होंने कहा वह भी महत्वपूर्ण था। उन्होंने

बतलाया कि वर्गहीन समाज ही उनका ध्येय है। सिंह, दत्त तो एसेम्बली भवन में गिरफ़ार हुए, किन्तु बाद को और लोग भी गिरफ़ार हुए और यही लाहौर षड्यन्त्र के नाम से मशहूर हुआ। भगत-सिंह, राजगुरु तथा सुखदेव को फांसी हुई, अन्य लोगों को आजन्म कालेपानी से लेकर तीन वर्ष तक की सज़ाएँ हुईं। इसी मुक़द्दमे में गिरफ़ार श्री यतीन्द्रनाथ दास राजनैतिक क़ैदियों के प्रति राजनैतिक व्यवहार की मांग रख कर अनशन करते हुए शहीद हो गए। इन्हीं के त्याग की बदौलत जेलों में ए० बी० श्रेणियां बनी हैं, यद्यपि यह बता देना उचित है कि यतीनदास कुछ और ही चाहते थे, वे चाहते थे कि सब राजनैतिक क़ैदियों को विशेष व्यवहार मिलें।

अन्य वारदात

प्रथम लाहौर षड्यन्त्र के बाद भी क्रान्तिकारी सङ्गठन जारी रहा, अभी आज़ाद, भगवतीचरण, यशपाल, भाभी, दीदी कई सुयोग्य कार्य-कर्ता बाहर मौजूद थे। २३ दिसम्बर १९२९ को वायसराय की गाड़ी के नीचे सुरंग लगा कर विस्फोटन कर दिया गया, लार्ड इर्विन बाल-बाल बचे। २८ मई १९३० को बम का प्रयोग करते समय श्री भगवतीचरण शहीद हो गए। ३ मई १९३१ को शालीमार बाग़ में पुलिस की गोली से श्री जगदीश मारे गए। दिल्ली में तथा लाहौर में षड्यन्त्र चले। २ दिसम्बर १९३० को शालिग्राम शुक्ल कानपुर में पुलिस की गोली से शहीद हो गए।

आज़ाद की शहादत

श्री चन्द्रशेखर आज़ाद काकोरी, लाहौर, दिल्ली सभी षड्यन्त्रों

में फ़रार थे, उन पर कई फांसियां झूल रही थीं। १९३१ की २७ फ़रवरी को इलाहाबाद के अलफ्रेड पार्क में पुलिस द्वारा घेर लिए जाने पर गोली का जवाब गोली से देते हुए शहीद हो गये। चंद्रशेखर आज़ाद का जीवन एक परम वीरता का जीवन था। एक तरह से उत्तर भारत के क्रान्तिकारी-आन्दोलन की यहीं समाप्ति हुई, किन्तु यह समाप्ति आज़ाद की मृत्यु के कारण नहीं, बल्कि आर्थिक सामाजिक ऐतिहासिक कारणों से हुई—ऐसा कहना ही ठीक होगा।



(चन्द्रशेखर आज़ाद)

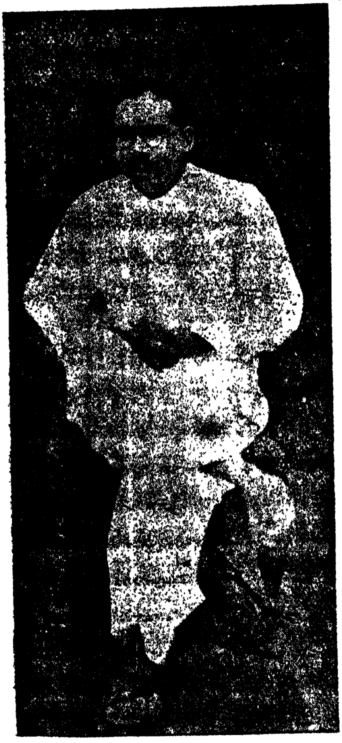
बङ्गाल का आन्दोलन

१८ अप्रैल १९३० को चटगांव में ७० नौजवानों ने एक साथ रात १० बजे के समय पुलिस लाईन, टेलिफ़ोन एक्सचेंज आदि सामूहिकरूप से महत्वपूर्ण स्थानों पर धावा कर क़ब्ज़ा कर डाला। मैगज़ीन लूट कर अस्त्रों का संग्रह किया गया। सरकार को इन क्रान्तिकारियों को दबाने के लिए बन्दूक़ के अतिरिक्त तोप से काम लेना पड़ा। जब क्रान्तिकारी हारने लगे, तो वे पहाड़ों में भाग गए। १९ क्रान्तिकारी जलालाबाद की पहाड़ी में गोली से मारे गए। अन्य स्थानों पर भी क्रान्तिकारियों के साथ गोली चली और वे मारे गए। जो लोग गिरफ़्तार हो सके उन पर मुक़द्दमा चला और सब को लम्बी सजाएँ हुई। बंगाल में इसके बाद असनुल्ला, पुलिस के इंस्पेक्टर जनरल लोमैन, जेल के इंस्पेक्टर जनरल कर्नल सिमसन आदि बीसियों अफ़सर मारे गये।

आन्दोलन का अवसान

इतने दिनों की विपत्ति, त्याग तथा फांसी, कालेपानी आदि से

जब लक्ष्य आता नहीं दिखाई दिया तब क्रान्तिकारियों ने सोचना शुरू किया। यह प्रक्रिया बड़ी दीर्घ है, कुछ दुःखद भी है; इसलिए इसका वर्णन इस निबन्ध में संभव नहीं। इतना ही बतला देना यथेष्ट है कि आतङ्कवाद के युग का अवसान हो चुका है। बंगाल के आज अधिकतर भूतपूर्व क्रान्तिकारी फ़ारवर्ड ब्लाक में हैं, कुछ कांग्रेस समाजवादी दल में हैं, कुछ और दलों में हैं। यह समझना भूल होगी कि फांसी तथा जेलखाने के असर के कारण ही यह हुआ, सच बात तो यह है कि फाँसी तथा जेलखाने के कारण ही इस विकास में विलम्ब हुआ, नहीं तो कभी का यह आन्दोलन एक दूसरा रास्ता धारण करता। बंगाल से लेकर पंजाब तक चाहे वह काकोरी क़ैदी हों, चाहे नज़रबन्द, चाहे मद्रास के क़ैदी, सब ने यह कहा है कि आतंकवाद का समय नहीं रहा, अब इसके पुनरुज्जीवन से देश को घोर नुक़सान होगा। जन-आन्दोलन से ही देश का उद्धार होगा।



(मन्मथनाथ गुप्त)

गांधी-सेवा-संघ

संघ का महत्व

गांधी-सेवा-संघ-महात्मा जी के कट्टर अनुयायिओं का गुट्ट है, आये दिन हम फ़ारवर्ड ब्लाक, कांग्रेस समाजवादी दल आदि कितने ही दलों का नाम सुना करते हैं, किंतु सब से कम हम गांधी-सेवा-संघ का नाम सुनते हैं। यह हमारे यहां के अख़बारों की महिमा है, गांधी-सेवा-संघ-वाले चुपके-चुपके अपने में सब अधिकार ले लेना पसन्द करते हैं, चिल्लाना नहीं। भारतवर्ष की सब पार्टियों में बलशाली यही गांधी-सेवा-संघ है। न केवल कांग्रेस पर ही इसका आधिपत्य है, बल्कि अखिल-भारतीय-चर्खा-संघ, हरिजन-सेवक-संघ, ग्रामोद्योग-संघ आदि कई बलशाली संघों पर इसका अखंड प्रभुत्व है। राजा जी, सरदार पटेल, भूलाभाई, पट्टाभि, डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद इसके सदस्य हैं। इस दल के पास वे सभी बातें हैं, जिनसे दल मज़बूत बनता है यानी, नेता, रुपये, अनुशासन, और अपने ढंग की प्रगतिशीलता।

राजनैतिक दल

त्रिपुरी कांग्रेस के पहिले जो वाद-विवाद हो रहा था, उसके दौरान में सुभाष बाबू ने कहा था कि यदि सब वामपंथी मिलकर एक दल बनाते हैं, तो इसमें कोई हरज की बाद नहीं; क्योंकि क्या दूसरे लोगों की गांधी-सेवा-संघ नाम से एक पार्टी नहीं है। इस पर विहार-रत्न राजेन्द्र बाबू ने फ़ौरन ही एक बयान दिया जिसमें कहा "स्पष्ट है कि सुभाष बाबू गांधी-सेवा-संघ के विधान के विषय में कुछ नहीं जानते। उन्हें जानकर आश्चर्य होगा कि राष्ट्रपति के निर्वा-

चन के अवसर पर संघ के कुछ सदस्यों ने उनको वोट दिया था। यह दलबन्दी वाली राजनीति में भाग नहीं लेता। इसका मुख्य काम रचनात्मक है, किंतु कांग्रेस-मंत्रि-मंडलों के आ जाने के बाद से इसने अपने सदस्यों को यह स्वतंत्रता दे दी कि वे परिस्थिति का फ़ायदा उठाकर रचनात्मक कार्य करें।"

संघ-सदस्यों ने कैसे सुभाष को वोट दिये

डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने जो कहा कि कुछ गांधी-सेवा-संघ के सदस्यों ने सुभाष बाबू को वोट दिया, यह बिल्कुल ठीक था; किंतु यह कहना कि संघ के सदस्य वोट देने के विषय में आज़ाद थे, ग़लत है। सच बात तो यह है कि सदस्यों ने अपनी बुद्धि का इस्तेमाल कर वोट दिया था, किन्तु बाद को जब यह बात मालूम हो गयी, तो उस पर बाक़ायदा जाँच की गयी, पता नहीं बाद को किसी सदस्य पर अनुशासन की कार्रवाई की गयी कि नहीं।



(डा० राजेन्द्र प्रसाद)

संघ की गश्ती चिट्ठी

संघ के अध्यक्ष किशोरी लाल घसरूँवाला ने सुभाष बाबू के चुनाव के बाद सदस्यों के नाम जो गश्तीचिट्ठी निकाली थी वह इस प्रकार है:—

"सदस्य दफ़्र में निम्नलिखित विषयों पर जल्दी से जल्दी ख़बर भेजें—

(क) क्या आप इस साल किसी कांग्रेस-कमेटी के सदस्य हैं ? यदि हैं तो किस कमेटी के हैं और क्या हैं, लिखिये ?

(ख) आप इस कमेटी के सदस्य कैसे हो गये, किसी चुनाव को लड़कर, न लड़कर, या और किसी तरह ?

(ग) आप किसी धारा-सभा, म्युनिसिपल बोर्ड, स्थानीय-बोर्ड या उनके द्वारा नियुक्त कमेटी के सदस्य हैं ?

(घ) आप इन में कांग्रेस टिकट पर गये, या और किसी तरह ?

(ङ) क्या आपने रियासती प्रजाओं के आन्दोलन में भाग लिया ? यदि हां तो किस प्रकार ? इस भाग लेने में आप को कोई सज़ा तो नहीं भुगतनी पड़ी ?

(च) यदि कोई सदस्य जेल में है, तो उसकी भी ख़बर दीजिए।"

राष्ट्रपति का चुनाव

इस गश्ती चिट्ठी में राष्ट्रपति के चुनाव के सम्बन्ध में ये बातें थीं:—

"कुछ सदस्यों के साथ राष्ट्रपति के चुनाव के सम्बन्ध में पत्र व्यवहार से मुझे यह मालूम हुआ है कि जब तक गांधी जी ने यह नहीं कहा कि पट्टाभि की हार मेरी हार है, तब तक सदस्यों को मालूम ही नहीं हुआ कि इस चुनाव से गांधी जी के सिद्धांतों का कोई सम्बन्ध था। इसलिए अब वे कह रहे हैं कि पहिले ही यह बात क्यों न कही गयी। यदि संघ के सदस्य नहीं हैं, और ऐसे लोगों को यह धोखा होता तो यह समझा जा सकता था; किन्तु संघ के सदस्यों के लिए ऐसी ग़लत फ़हमी की कोई गुंजाइश ही नहीं। सदस्य जानते हैं कि वर्किंग कमेटी के उन सात सदस्यों में जिन्होंने पट्टाभि की सिफारिश की थी, छै (सर्दार वल्लभ भाई, श्री राजेन्द्र बाबू, शंकरराव देव, जमुनालाल जी, जयरामदास जी, कृपलानी) संघ के सदस्य हैं। यदि सदस्यों को

'क्या करना चाहिये' जानना था, तो इसी से उनका कर्त्तव्य स्पष्ट था। यदि फिर भी उन्हें इसके औचित्य के बारे में कोई सन्देह था, तो वे मुझ से पूछ-ताछ कर सकते थे। मैं नहीं जानता सदस्यों में से किन ने पट्टाभि का विरोध किया। यदि आप ने किया तो आप लिखें, क्या सोचकर आपने ऐसा किया। और अब आप के क्या विचार हैं।"

दल का अनुशासन कठोर है

"सदस्यों को जानना चाहिए कि संघ के बाहर के चुनावों में एक सदस्य न तो दूसरे के विरुद्ध खड़ा हो सकता है और न कोई सदस्य किसी दूसरे के विरुद्ध कोशिश ही कर सकता है। यदि उसके मत से चुनाव के लिये खड़ा सदस्य अयोग्य है, या उसके मुक़ाबले में या अपने प्रतिद्वंद्वी के मुक़ाबले में अयोग्य है तो यह बात आपसी बातचीत के द्वारा तय हो जानी चाहिये। यदि ऐसा नहीं हो सकता। तो मुझे लिखना चाहिए। किन्तु संघ का सदस्य रहते हुए दूसरे सदस्य का विरोध अवाञ्छनीय तथा संगठन के सिद्धांतों के विरुद्ध है।"

सर्दार के विरुद्ध प्रचार नहीं

"संघ के सदस्य जानते होंगे कि कुछ दिनों से सर्दार वल्लभ भाई के विरुद्ध बहुत ही ज़हरीला प्रचार कार्य देश में फैल रहा है। हमारे कानों में यह ख़बर आई है कि हमारे कुछ सदस्य इस सम्बन्ध में निर्दोष नहीं हैं। यदि यह बात सच हो तो बड़े ही दुःख की बात है। यह मालूम हो जाना चाहिए कि सर्दार के कामों में बापूजी का या तो हाथ रहता है या सर्दार के कामों को बाद को बापूजी जांचकर ठीक पाते हैं। जहां ज़रूरत पड़ी वहां सर्दार ने मुझे भी सन्तोष जनक-उत्तर दिया। फिर भी यदि किसी सदस्य को सन्देह है तो वह मुझे या सर्दार जी को पूछ सकता है। अख़बारों की रिपोर्ट पर सर्दार पर कोई अपना मत निर्माण करे, तो ग़लती है। इसके विपरीत प्रत्येक सदस्य का यह कर्तव्य है कि वह इस ज़हर को फैलने से रोके।"

त्रिपुरी के लिए हिदायत

"सदस्य यह समझ लें कि त्रिपुरी-कांग्रेस के बारे में वे राजेन्द्रबाबू तथा सर्दार वल्लभभाई के विरुद्ध नहीं जा सकते। यदि वे उनके परामर्श के विषय में सन्देश रखते हैं तो वे मुझसे पूछें; किन्तु ऐसा करने के पहिले वे उन्हीं के बताए गए मार्ग पर चलें। क्या सदस्यों को यह बता देना आवश्यक है कि प्रत्येक ज़रूरी विषय पर वे बापूजी की सलाह से ही अपनी राय क़ायम करते हैं।"

संघ राजनैतिक

ऊपर की गश्ती चिट्ठी से पता लगता है कि संघ एक राजनैतिक संस्था ही नहीं, कट्टर राजनैतिक संस्था है। यह जो कहा गया था कि संघ केवल रचनात्मक है, इस पर और ९ अप्रैल १९३९ के 'नेशनल फ्रान्ट' में पूछा भी गया था कि "सुभाष बाबू के निर्वाचन से इस रचनात्मक कार्य-क्रम को कैसे धक्का लगा और त्रिपुरी में सर्दार पटेल के पीछे सदस्यों को चलने के लिए कह कर कौन से रचनात्मक काम को ख़तरे से बचा लिया गया ? हमारी तो कुछ समझ में नहीं आता। यह गश्ती चिट्ठी उस बात का पर्दा-फ़ाश कर देती है कि संघ का उद्देश्य रचनात्मक है। सच बात तो यह है कि संघ एक सुसंगठित गुट्ट की तरह कांग्रेस के अन्दर क्रियाशील है। संघ की ओर से जो प्रश्न पूछे गए हैं, उसके उत्तर से शायद पता चले कि संघ के सदस्य कांग्रेस में सब चाभी की जगहों पर अधिकार जमाये बैठे हैं। यह आश्चर्य की बात है कि ऐसी कड़ी पार्टी के सदस्य इस बात पर नाराज़ी प्रकट करें कि वामपक्षी कांग्रेस के अन्दर दल बनावें। कांग्रेस समाजवादी दल को इसलिए गालियां दी गयीं कि उसने कांग्रेस के

अंदर दल बनाए; किन्तु गांधी-सेवा-संघ तो इसके पहिले से ही मौजूद है।"

सेवा-संघ पर पंडित नेहरू

पंडित नेहरू ने एक लेख में लिखा था 'गांधी-सेवा-संघ के नये रंग-ढंग से मुझे बड़ी अशान्ति हुई। यह देख कर दुःख होता है कि गांधी-सेवा-संघ नीचे उतर कर चुनाव लड़ने लड़ाने के समतल पर आ गया है।"

संघ की बातें क़रीब क़रीब गुप्त होती हैं। हाँ, हर साल एक अधिवेशन अवश्य होता है। कई साल से श्री किशोरी लाल घसरूँ वाला इसके सभापति थे।

मालिकान्दा-अधिवेशन

फ़रवरी के अन्तिम सप्ताह में मालिकान्दा में इसका जो अधिवेशन हुआ है, उसमें श्री याजी सभापति थे। इस अधिवेशन में एक बात यह पास हुई है कि संघ के सदस्य राजनीति से पृथक् रहें।

इस प्रस्ताव में बताया गया है कि पिछले अनुभव से यह स्पष्ट हो गया है कि गाँधी-सेवा-संघ के सदस्यों के लिए राजनीति में भाग लेना ठीक न होगा। इसलिए संघ के जो सदस्य राजनैतिक संस्थाओं से सम्बन्धित हैं, उन्हें संघ की सदस्यता से इस्तीफ़ा दे देना चाहिए। कहा जाता है कि यह निश्चय इसलिए किया गया है कि संघ के कुछ सदस्यों के राजनीति में भाग लेने से आपसी शत्रुता की भावना पैदा हो गयी है। गांधी-सेवा-संघ की राय है कि देश का भला रचनात्मक कार्य-क्रम से हो सकता है, इसलिए भविष्य में संघ सिर्फ़ रचनात्मक कार्य-क्रम ही अख़्तियार करेगा। आर्थिक कार्यों और 'सर्वोदय' नामक मासिक पत्र चलाने के अलावा संघ के और सब काम बन्द कर दिए जायँ। नई कार्यकारिणी-समिति के अतिरिक्त संघ के सब सदस्य संघ

की सदस्यता से अलहदा हो जायँ तथा नयी कार्यकारिणी-समिति को संघों के सम्बन्ध में पूर्ण अधिकार दे दिए जायँ। इस प्रस्ताव के पास हो जाने पर अब उक्त संघ सिर्फ़ कार्यकारिणी-समिति के ही रूप में परिवर्तित हो गया है।

प्रस्ताव का उद्देश्य

इस प्रस्ताव का असली उद्देश्य क्या है, यह उसके समर्थन में दी गयी वक्तृताओं से समझ में नहीं आता। जो सदस्य राजनीति के शिखर पर हैं; उन्होंने—यहां तक कि सर्दार पटेल ने राजनीति से इस्तीफ़ा न देकर संघ से ही इस्तीफ़ा दिया। इसका अर्थ यदि यह लगाया जाता है कि उनका संघ से कोई सम्बन्ध न रहा या वे कम गांधीवादी हो गये, तो यह ग़लत होगा। एक अनुमान यह है कि यदि आन्दोलन चला तो उसे राजनैतिक संस्था होने के बहाने से सरकार कहीं ग़ैर-क़ानूनी क़रार न दे दे तथा उसका मालमत्ता ज़ब्त न कर ले, इसलिए यह क्रम रचा गया है। कुछ जानकार यह भी कह रहे हैं कि बंगाल के कुछ चुनावबाज़ लोगों ने गांधी-सेवा-संघ का बेजा फायदा उठाया है, इसलिए यह चाल चली गयी है जिससे कि कल वह कोई बदनामी का काम करें या आन्दोलन के समय दुम दबा जायँ तो उससे संघ को बदनामी न आवे। जो कुछ भी हो इस प्रस्ताव का असली उद्देश्य बाद को प्रकट होगा।

सही क़दम

महत्मा गांधी ने 'हरिजन' में सही क़दम नाम से एक लेख लिखा है, उसमें उन्होंने गांधी-सेवा-संघ को तोड़ कर पुनर्निर्माण करने का कारण बतलाया है।

वे लिखते हैं कि "गत दो सालों से हम सेवासंघ के संगठन-कर्ता उद्देश्यहीन तरीक़े से चल रहे हैं। संघ ने अपने आदर्शों के अनुसार

काम नहीं किया, यह हमने महसूस कर लिया। यह कभी भी दलबन्दी तथा राजनैतिक प्रभाव से मुक्त न था। कांग्रेस के कार्य-क्रम के रचनात्मक अंश का समर्थन तथा जनप्रिय बनाने के लिए ही इसका जन्म हुआ था।

वे कहते हैं "यदि केवल रचनात्मक कार्य करना ही संघ का उद्देश्य हो तो अखिल-भारतीय-चर्खा-संघ, हरिजन-सेवक-संघ, अखिल भारतीय-ग्रामोद्योग-संघ, तालीमी संघ—यह तो हैं ही, फिर संघ क्या करे?"

उपसंहार में उन्होंने कहा है कि योग्य व्यक्ति मिलेंगे, इसी उम्मीद में संघ को ज़िन्दा रक्खा गया है।"

गांधीजी के मन में क्या है यह वही जानें, किन्तु शायद संघ की ज़रूरत अब जाती रहने के कारण उन्होंने इस प्रस्ताव की आड़ में संघ को दफ़ना दिया है।



हिंदू-महासभा

हिंदू-महासभा का जन्म मुसलमानों की बढ़ती हुई सांप्रदायिकता के कारण हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक इस सांप्रदायिकता का



(श्रीविनायक दामोदर सावरकर)

कोई चिन्ह देश में नहीं दिखाई देता था। १८५७ के बलवे में हिन्दू और मुसलमान एक साथ कंधा मिला कर विदेशियों के विरुद्ध खड़े हुए थे। दोनों ही ने दिल्ली के बहादुर शाह को अपना बादशाह चुन रक्खा था। इसके बाद कॉंग्रेस के प्रथम १५ वर्ष के जीवन में भी कहीं इस देश में हिंदू-मुस्लिम प्रश्न की चर्चा नहीं सुनाई दी थी। किंतु ज्यों ही लार्ड कर्ज़न का ज़माना आया और बगंभंग का सवाल उठा कि मुसलमानी सांप्रदायिकता की चिनगारी भी यत्र-तत्र उठने लग

गयी। इसके बाद लार्ड मिन्टो ने इस आग को और भड़काया। उन्होंने मुसलमानों को अपना संगठन अलग करने और अपने अधिकारों की माँग अलग से पेश करने के लिए ख़ूब प्रोत्साहित किया। फलस्वरूप मुसलमानों का एक डेपुटेशन सर आग़ा ख़ाँ की अध्यक्षता में लार्ड मिन्टो से बाक़ायदा जाकर मिला और उनके सामने अपने सांप्रदायिक अधिकारों की माँग पेश की। इसी समय आल-इंडिया-मुसलिम-लीग की भी स्थापना कर दी गयी, जिसने अपना सांप्रदायिक ज़हर देश भर में उगलना शुरू किया। पश्चात् सन् १९०९ के मार्ले-मिन्टो सुधार ने मुसलमानों को पृथक् निर्वाचन का हक़ देकर इस सांप्रदायिकता की जड़ को स्थायी रूप से जमा दिया। अब यहाँ के पढ़े-लिखे मुसलमानों को मेम्बरी के वोट प्राप्त करने के लिए हिन्दुओं को संतुष्ट रखने की ज़रूरत नहीं रही। निदान अब उन्होंने जी खोल कर हिंदुओं को बुरा-भला कहना और मुसलमानों के मज़हबी जोश को उभाड़ना शुरू कर दिया। गोरे अधिकारियों ने भी इस काम में इनकी पीठ ठोंकी और अधगोरे पत्रों ने इनकी तारीफ़ का ढोल बजाया। बस, फिर क्या था, ज़हर बढ़ने लगा और अपना असर दिखाने लगा। स्थान-स्थान पर हिंदुओं की लूट-पाट शुरू हो गयी और उनके स्त्री-बच्चे भगाये जाने लगे। अंत में हिंदुओं को भी अपनी आत्मरक्षा की चिंता करनी पड़ी और उन्होंने भी हिंदू सभाएँ और हिंदू-संघटन का काम शुरू कर दिया।

आरंभ काल

जिस साल मुसलिम लीग की स्थापना ढाका में की गयी, उसी वर्ष पूर्वीय बंगाल में कितनी ही हिंदू विधवाओं को भगाने और अनेकों हिंदुओं पर भाँति-भाँति के अत्याचार होने की ख़बर आयी। इससे वहाँ के हिंदुओं में बड़ी हलचल मची, और कई नगरों में आत्मरक्षा के

लिए हिंदू नवयुवकों की ओर से "अनुशीलन-समितियाँ" क़ायम की गयीं। इसके बाद सन् १९०७ में बंगाल की जो राजनैतिक-कान्फ़्रेंस हुई थी, उसमें भी दो प्रस्ताव ऐसे पास हुए थे, जिनसे सिद्ध होता है कि हिंदुओं में आत्मरक्षा का सवाल इस समय काफ़ी महत्वपूर्ण हो चुका था। इनमें से एक प्रस्ताव बंगाली हिंदुओं की घटती हुई जनसंख्या के सम्बन्ध में था, जिसकी जाँच करके कारण मालूम करने और उपाय बतलाने के लिए एक कमेटी नियुक्त की गयीं थी और दूसरा प्रस्ताव अछूतोद्धार के संबंध में था।

किंतु हिंदू सभा की वास्तविक स्थापना पहिले-पहिल पंजाब से शुरू हुई। यहाँ आर्य-समाज का बड़ा ज़ोर था और पंजाबी हिंदुओं में इसने काफ़ी जागृति फैला रखी थी। निदान जनवरी सन् १९०७ में यहाँ एक "पंजाब-हिंदू-सभा" की नींव रखी गयी, जिसका उद्देश्य "बिना किसी पक्ष को हानि पहुँचाए केवल हिंदू-हितों की रक्षा करना" बतलाया गया। मार्ले-मिंटो सुधार के समय (जून सन् १९०९ में) इस सभा की ओर से वायसराय लार्ड मिंटो के पास एक बड़ा लम्बा मेमोरियल भेजा गया था जिसमें पंजाबी हिंदुओं की निम्न लिखित शिकायतों की ओर सरकार का ध्यान दिलाया गया थाः—

(१) हिंदुओं के विरुद्ध सरकारी पक्षपात पूर्ण नीति।

(२) "पंजाब एलियनेशन आफ़ लैंड ऐक्ट (Punjab Alienation of Land Act)" और "पंजाब हक़ शफ़ा क़ानून (Punjab Pre-emption Act)" के द्वारा हिंदुओं के साथ अन्याय।

(३) नये सुधार की प्रथक्-निर्वाचन-योजना में हिंदुओं के साथ ज़्यादती।

किंतु जहाँ सरकार जानबूझ कर भेद-नीति पर तुली हो, वहाँ ऐसे मेमोरियलों का प्रभाव ही क्या पड़ सकता था।

सन् १९०९ के अक्टूबर महीने में इस सभा की ओर से लाहौर में पंजाब-हिंदू-कान्फ़रेंस का पहला जलसा किया गया, जिसमें पंजाब के प्रायः सभी मुख्य-मुख्य हिंदू नेता उपस्थित थे। लाला लाजपत राय, लाला हंसराज, श्री भगत ईश्वरदास, लाला रामसरन दास, पं० दीनदयाल, लाला हरीचंद, लाला शादीलाल, पं० रामभज दत्त, पं० ठाकुरदत्त, वैद्य, और लाला गंगाराम सभी इस अधिवेशन में शामिल हुए थे। सभापति का आसन पंजाब हाईकोर्ट के रिटायर्ड जज सर प्रतुलचंद्र चटर्जी ने ग्रहण किया था और स्वागताध्यक्ष रायबहादुर लाला लालचंद थे। मुसलमानों की बढ़ती हुई सांप्रदायिकता तथा आत्मरक्षार्थ हिंदुओं के संगठन की ज़रूरत पर इसमें विशेष रूप से ध्यान दिलाया गया। सन् १९११ में दूसरी कान्फ़रेंस अमृतसर में की गयी जिसमें रा० ब० लाला लालचन्द्र सभापति हुए। लाला लालचंद्र पंजाब के प्रमुख हिंदू नेताओं में गिने जाते थे और अपनी सेवाओं के कारण जनता के अत्यंत प्रीतिपात्र हो गये थे। किंतु सन् १९१२ में इनका देहांत हो गया। इसके बाद तीसरी हिंदू-कान्फ़रेंस दिल्ली में, चौथी फ़ीरोज़पुर में और पाँचवीं अम्बाला में की गयी। इसके अतिरिक्त लाहौर में एक विशेष अधिवेशन भी हुआ, जिसमें मुलतान, झँग और मुज़फ़्फ़रगढ़ के ज़िलों में मुसलमानों द्वारा हिंदुओं पर किए गये भीषण अत्याचारों के संबंध में जाँच करने के लिए एक कमेटी नियुक्त की गयी। इस कमेटी के सदस्य श्री बख़्शी सोहनलाल, फ़क़ीरचंद और मेहता बहादुर चंद थे। इसने मौक़े पर जाँच करके अपनी जो रिपोर्ट प्रकाशित की उससे पश्चिमी पंजाब के हिंदुओं की नाज़ुक दशा का भली भाँति परिचय मिलता है।

योरोपीय महायुद्ध का समय

इस समय योरोप में विश्व-व्यापी संग्राम छिड़ चुका था और देश

की सारी शक्ति उसमें सहायता पहुँचाने के लिए लगायी जा रही थी। पंजाब में सरकार इस समय बड़ी सख्ती से काम ले रही थी, जिससे प्रायः सभी प्रकार के जातीय या राष्ट्रीय आन्दोलन वहां धीमे पड़ गये थे। पंजाब हिंदू-सभा का भी काम इसीलिए इन दिनों शिथिल रहा और सन् १९१७ तक इसमें कोई महत्वपूर्ण बात नहीं हुई।

अखिल-भारतीय-हिंदू-सभा का जन्म

एक अखिल-भारतवर्षीय-हिंदू-सभा की आवश्यकता सन् १९१० से ही महसूस की जाने लगी थी। उस साल के दिसम्बर महीने में इलाहाबाद में कुछ मुख्य-मुख्य हिंदू नेताओं की एक मीटिंग में इस प्रकार की एक अखिल-भारतीय-हिंदू-महासभा स्थापित करने का निश्चय कर लिया गया था। और उसके उद्देश्य तथा नियम भी बना लिये गये थे। महासभा का प्रधान-कार्यालय इलाहाबाद में रखा गया था। किंतु फिर न जाने क्यों यह काम आगे न बढ़ सका। इसके बाद सन् १९१२ में दिल्ली में जो पंजाब-हिंदू-कान्फ़रेंस की बैठक हुई थी, उसमें भी सभापति की हैसियत से भाषण देते हुए सर शादीलाल ने एक अखिल-भारतीय-हिंदू-महासभा की आवश्यकता की ओर लोगों का ध्यान दिलाया था। अंत में सन् १९१६ के लखनऊ कांग्रेस के समय जो हिन्दू-मुस्लिम समझौता हुआ, उसे देख कर पंजाब के प्रतिनिधि पं० देवरत्न शर्मा के हृदय को गहरी चोट पहुँची। इस समझौते में उन्हें हिंदू-स्वत्वों का अनुचित रूप से बलिदान होता जान पड़ा। निदान पंजाब लौटते ही वह हिंदू-संगठन के काम में एक बारगी जुट गए, जिसके फलस्वरूप सन् १९१८-१९ में हम उनको अखिल-भारतीय-हिंदू-सभा के सेक्रेटरी की हैसियत से काम करते हुए देखने लगे।

अखिल-भारतीय-हिंदू-महासभा के जन्म और प्रारंभिक जीवन के विषय में पुराने कागज़ों से केवल इतना ही प्रकट होता है कि साल में

एक बार हरद्वार में किसी मेले के अवसर पर इसका वार्षिक अधिवेशन मात्र हो जाया करता था, जिसमें शुद्धि, संगठन, अछूतोद्धार आदि विषयों पर हिंदू विद्वानों के भाषण करा दिये जाते थे। महासभा का हेडआफ़िस हरद्वार में ही रखा गया था।

दिल्ली का अधिवेशन

इसका पाँचवां अधिवेशन ता० २६, २७ और २८ दिसम्बर सन् १९१८ को दिल्ली में किया गया था, जिसमें माननीय राजा सर रामपाल सिंह सभापति थे। इस अधिवेशन में भिन्न-भिन्न प्रांतों से प्रतिनिधि आये हुए थे, और मुख्यतः निम्नलिखित विषयों पर प्रस्ताव पास किये गये :—

(१) भारत में उत्तरदायी शासन की मांग।

(२) पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन का विरोध। यह प्रस्ताव इस प्रकार था :—

"यह परिषद् नई सुधार-योजना के अनुसार धारासभाओं और सरकारी नौकरियों के विषय में जाति-भेद और वर्ण-भेद की नीति जारी करने का ज़ोरदार विरोध करती है और आग्रह करती है कि इस संबंध में केवल व्यक्तिगत योग्यता पर ही ध्यान दिया जाना चाहिए। लेकिन अगर इस सिद्धांत को छोड़ना ही हो तो फिर हिन्दुओं को उनकी संख्या के हिसाब से प्रतिनिधित्व दिया जाय।

"इसके अतिरिक्त परिषद् यह भी चाहती है कि अगर कहीं किसी अहिंदू जाति को अल्प-संख्यक होने के कारण कोई विशेष अधिकार दिये जाते हैं, तो वे ही अधिकार हिंदुओं को भी, जहां वे अल्प-संख्यक हों, मिलने चाहिएँ।

"यह परिषद् साम्प्रदायिक निर्वाचन की पृथक्ता और बाहुल्य के सिद्धांत को स्थानीय म्युनिसिपल-संस्थाओं तक में व्यापक करने की तीव्र

निंदा करती है, और युक्त प्रांतीय-धारासभा की समिति द्वारा किये गए उस प्रस्ताव का विरोध करती है, जिसके द्वारा इन नियमों को डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के निम्मार्ण में भी लागू करने की सिफ़ारिश की गयी है, कारण कि इससे मुसलमानों को उनकी संख्या से तिगुनी जगहें इन डिस्ट्रिक्ट बोर्डों में मिल जायँगी।"

(३) हिंदू और मुसलमान नेताओं की राय लेकर इस देश में गोवध बंद करने का सरकार से अनुरोध।

(४) जर्मनी में संस्कृत की जो प्राचीन हस्त-लिपियां और पुराने हिंदू औज़ार मौजूद हैं, उन्हें भारतीयों की महायुद्ध-सेवा के लिए पुरस्कार स्वरूप वापस दिलाने की बृटिश सरकार से मांग।

हिंदुओं की उदासीनता

इसके पश्चात् तीन साल तक इस महासभा का कोई ज़िक्र नहीं सुनाई पड़ा। वास्तव में हिंदू मनोवृत्तियाँ इस विषय में मुसलमानी मनोवृत्तियों से सदा भिन्न दिशा में दिखाई देती रही हैं। हिंदू मनोवृत्तियों का बहाव आरंभ से ही राष्ट्रीयता की ओर रहता आया है। वे हिंदुओं और मुसलमानों को सदा भारतीय रूप में देखती रहीं और उनके पृथक् अस्तित्व को कभी विशेष महत्व नहीं दिया। हिंदुओं की सारी शक्ति, सारा ध्यान केवल भारतीयों की राजनैतिक स्वतंत्रता-प्राप्ति में ही लगा रहा। सांप्रदायिक प्रश्नों को तो वे केवल घरेलू झगड़े अथवा आर्थिक प्रश्न बतला कर बिलकुल तुच्छ समझते रहे। किंतु मुसलमानी विचार-धारा सदा दूसरी ओर को बहती रही है। उनकी धार्मिक कट्टरता उन्हें सांप्रदायिक घेरे से बाहर देखने को मना करती है। केवल दीन और इस्लाम के नारे ही उनके हृदयों को हिला सकते हैं। देश और देश की आज़ादी में उन्हें ज़्यादा दिलचस्पी नहीं। निदान जब से कांग्रेस की स्थापना हुई, मुसलमान उससे प्रायः अलग ही रहे,

और जब उन्हें राजनैतिक अधिकारों का विचार भी आया तो भारतीयों के लिए नहीं, बल्कि केवल मुसलमानों के लिए। अस्तु, कांग्रेस के मुक़ाबले में उन्होंने अपनी एक मुसलमानी सांप्रदायिक-संस्था 'मुसलिम लीग' खड़ी कर दी।

अब मुसलमानों में सांप्रदायिकता का प्रचार एक संघटित रूप से होने लगा और यह उनकी मनोवृत्ति के बिल्कुल अनुकूल बैठा। परिणाम में मुसलमानों की अलहदगी हिंदुओं से दिन पर दिन बढ़ने लगी। हिंदुओं में कांग्रेसी मनोवृत्तियां काम कर रही थीं, जो मुसलमानों को अपने राजनैतिक आन्दोलन में साथ लेने के लिए बेचैन थीं, मुसलमानों ने उनकी इस कमज़ोरी से लाभ उठाना आरंभ किया और अपने सहयोग की क़ीमत दिन पर दिन ऊंची करने लगे। कांग्रेस ने उनकी क़ीमत को अदा करने की कई बार कोशिश भी की और अब भी करती जाती है, किन्तु उनका सहयोग मृगमरीचिका की भांति सदैव दूर ही सरकता गया।

हाँ, कुछ हिन्दुओं ने अवश्य कांग्रेस की इस भूल को महसूस किया और हिन्दुओं की रक्षा के लिए हिन्दू-सभा तथा संगठन का काम शुरू कर दिया, किंतु अधिकांश हिंदुओं की मनोवृत्ति एक अजीब झूले में झूलती रही। कभी वह झोंका खा कर हिंदू-सभा की ओर जाती थी और कभी कांग्रेस की ओर लौट आती थी। जिन दिनों हिंदू मुसलिम झगड़ा देश में ज़ोर पकड़ता और हिंदुओं के लुटने-मरने और बेइज़्ज़त होने की ख़बरों से यहां का वातावरण भर उठता, उस समय हिंदू-सभा और हिंदू संगठन के कार्यों में तेज़ी आ जाती, किंतु ज्योंही वातावरण शांत होता या मुसलमानों का सौदा कांग्रेस के साथ पटता हुआ नज़र आता, त्योंही हिन्दू-सभा के कार्यों में शिथिलता दिखाई देने लगती।

सन् १६१८ के बाद तीन-चार वर्षों तक हिंदू-सभा के काम में यही शिथिलता दिखाई दे रही थी। इस समय देश का वातावरण राजनैतिक

घटनाओं से परिपूर्ण था। नये सुधार-शासन का जन्म हो रहा था। साथ ही रौलट ऐक्ट तथा पंजाब-हत्याकांड भी दिखाई पड़ा, जिसके कारण असहयोग का देशव्यापी आन्दोलन उठाया गया। इसी समय ख़िलाफ़त के मज़हबी सवाल ने मुसलमानी दिलों को भी हरकत दी। कांग्रेस और महात्मा गांधी तो मुसलमानों को कांग्रेसी पक्ष में लाने के लिए बेचैन थे ही; निदान उन्होंने अपने स्वराज्य-प्रश्न के साथ ही साथ ख़िलाफ़त के प्रश्न को भी जोड़ लिया, जिससे क्षणिक काल के लिए देश में हिन्दू-मुसलिम एकता का दृश्य दिखाई देने लगा। हिंदू जनता के ध्यान में इस समय यही दृश्य समा रहा था। अतएव वह हिन्दू सभा की ओर से बिल्कुल उदासीन थी। सभा का काम केवल कुछ इने-गिने व्यक्तियों में ही परिमित था।

इस बीच में अखिल-भारतीय-हिन्दू-महासभा का केवल छठवां अधिवेशन सन् १९२१ में हरिद्वार में किया गया था, जिसमें सभापति महाराज क़ासिम बाज़ार थे और प्रस्ताव मुख्यतया नानकाना-हत्याकांड, गोरक्षा, उत्तर-पश्चिमी-सीमाप्रांत के हिन्दुओं की दुर्दशा, तथा सरकारी भेद नीति पर पास किये गए थे।

नवीन जाग्रति

इसके बाद ही देश में परिस्थितियां बदलने लगीं, और ऐसे कारण एकत्र हो गये, जिन्होंने हिंदुओं में एक नवीन स्फूर्ति और आत्म-रक्षा के भाव को फिर से जगा दिया।

मोपलाओं का ज़ुल्म

मालाबार प्रांत के धर्मान्ध मोपला मुसलमानों ने ख़िलाफ़त राज की घोषणा करके वहां की हिन्दू जनता पर आक्रमण कर दिया और उन पर अनेकों रोमांचकारी एवं पशुतापूर्ण अत्याचार किये। इस समाचार से देश भर में सनसनी दौड़ गयी। चारों ओर से इन पीड़ित

हिन्दुओं के लिए सहायता का प्रबंध होने लगा। आर्यसमाजियों ने इस काम में सब से ज़्यादा मदद की। डा० मुंजे भी घटनास्थल पर गये थे। उन्होंने वहां जो हाल देखा या सुना उससे उनके हृदय को बड़ी चोट पहुंची और उसी समय से उन्होंने हिन्दुओं को संघटित करने का पक्का निश्चय कर लिया।

मुल्तान दुर्घटना

इसके बाद वही दृश्य मुल्तान में दोहराया गया। हिंदुओं के जान-माल और स्त्री-बच्चों पर मुसलमानों ने बेहद ज़ुल्म किये। उसकी जाँच के लिए काँग्रेस की ओर से एक कमेटी नियुक्त की गयी जिसमें पं० मदनमोहन मालवीय, बा० राजेन्द्र प्रसाद, हकीम अजमल ख़ाँ तथा कुछ अन्य हिंदू मुस्लिम नेता सदस्य थे। यहाँ के दृश्य ने मालवीय जी के हृदय को ठेस पहुँचाई और उन्होंने भी हिंदू-संगठन की ज़बर्दस्त आवश्यकता महसूस की। मुल्तान में ही एक सभा में बोलते हुए उन्होंने अपने ये विचार बड़े मर्म-भेदी शब्दों में प्रकट किये थे।

इसी के बाद सहारनपुर में भी वही दृश्य उपस्थित हुआ, जिसने हिंदू संगठन की आवश्यकता को और भी पुष्ट कर दिया। उधर ख़िलाफ़त का सवाल भी ख़त्म हो चुका था और तुर्की के ख़लीफ़ा स्वयं अपने ही देशवासियों द्वारा देश से बाहर निकाल दिये गये थे। अतएव मुसलमानों का अब काँग्रेस से कोई स्वार्थ नहीं रह गया, जिससे अब वे फिर उससे अलग जा खड़े हुए और अपनी सांप्रदायिक डफ़ली अलग बजाने लगे।

मलकाना राजपूतों की शुद्धि

इसी समय एक और ऐसी घटना हो गयी जिसने हिंदू चेतना में अद्भुत् स्फूर्ति पैदा कर दी। सन् १९२३ के शुरू जनवरी में एक समाचार प्रकाशित हुआ कि "साढ़े चार लाख मुसलमान मलकाना राज-पूतों ने हिंदू धर्म में वापस लिए जाने की प्रार्थना की है और उनकी

प्रार्थना हिंदू-महासभा ने स्वीकार कर ली है।" इस ख़बर के छपते ही देश भर के मुसलमान चिहुँक उठे और चारों ओर हाहाकार मच गया। दर्जनों मौलवी और मुल्ला इन राजपूतों को समझाने के लिए दौड़ पड़े; किंतु सब बेकार हुआ। ता० १३ फ़रवरी १९२३ को स्वामी श्रद्धानन्द के सभापतित्व में एक शुद्धि-सभा स्थापित हुई और ता० २० फ़रवरी को एक बहुत बड़ी भीड़ के सामने इन तमाम राजपूतों को हिंदू जाति में मिला लिया गया।

इस घटना से देश के तमाम मुसलमान हिंदू नेताओं पर एकबारगी बरस पड़े और जी भर के गालियाँ बकने लगे। साथ ही हिंदू जनता में भी इस घटना से काफ़ी दिलचस्पी पैदा हो गयी।

बनारस का महत्वपूर्ण अधिवेशन

इसी वैद्युतिक वातावरण के बीच अगस्त सन् १९२३ में अखिल-भारतीय-हिंदू-महासभा का ७ वाँ अधिवेशन बनारस में किया गया। सभापति पं० मदनमोहन मालवीय थे। प्रतिनिधियों की संख्या १५०० तक पहुँची थी और दर्शक तो सहस्त्रों की संख्या में उपस्थित थे। इसमें सिख, जैन, बौद्ध, पारसी, सनातनी, आर्य-समाजी सभी जाति और वर्ण के लोग शामिल हुए थे। मद्रास से लेकर काश्मीर तक के प्रतिनिधि आये थे। स्वागताध्यक्ष स्वयं महाराजा बनारस थे। शुद्धि, संगठन, वालंटियर दल का निर्माण, स्वदेशी वस्तु व्यवहार आदि सामयिक विषयों पर महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किए गये, और अछूतोद्धार, शुद्धि आदि आवश्यकीय प्रश्नों पर अपने विचारपूर्ण निर्णय देने के लिए कमेटियाँ भी बनायी गयीं।

इसी समय से स्थान-स्थान पर प्रांतीय हिंदू-सभाओं और शाखा-सभाओं की भी स्थापना होने लगी। जगह-जगह पर हिंदू-कान्फ़्रेंस की गयीं और हिंदू-संगठन को हर प्रकार से पुष्ट किया गया। शुद्धि के काम में भी इसी समय से बड़ी तेज़ी आ गयी।

बंगाल पैक्ट

इतने ही में बंगाल के मुसलमानों से देशबंधु सी० आर० दास ने एक समझौता किया जिसके अनुसार म्युनिसिपल नौकरियों में मुसलमानों के लिए ६०फ़ी सदी स्थान सुरक्षित कर दिया गया। यह भी मुसलमानों को अपने पक्ष में लाने का कांग्रेस की ओर से एक ग़लत प्रयत्न था, जिसका प्रतिवाद तमाम हिंदू सभा के नेताओं ने किया। स्वयं लाला लाजपत राय ने भी इस संबंध में देशबंधुदास को एक पत्र लिखा था।

कोहाट हत्याकांड

इसके बाद ही कोहाट का भयंकर हत्याकांड हुआ, जिसमें क़रीब २० हज़ार हिंदुओं की बस्ती लूट-मार कर उजाड़ बना दी गयी। इस घटना ने पिछली तमाम दुर्घटना को मात कर दिया। श्री मालवीय जी तथा भाई परमानन्द आदि घटना स्थल पर सहायता के लिए गये और कुल हालत अपनी आँखों से देखी। लाला लाजपत राय इस समय विलायत से भारत लौट रहे थे। उन्हें यह समाचार जहाज़ पर मिला, जिससे वह भी विचलित



(भाई परमानंद)

हो उठे और भारत पहुँचते ही हिंदू सभा और संगठन के काम में जुट गये। उनके आ जाने से हिंदू-सभा के काम में दूना बल पैदा हो गया। सन् १९२५ में महासभा का आठवाँ वार्षिक अधिवेशन हुआ, जिसके सभापति लाला जी ही चुने गये। इसमें मुख्य प्रस्ताव सांप्रदायिक निर्वाचन के विरोध में पास किया गया था।

इसके बाद लाला जी का बर्मा और आसाम से लेकर बम्बई, गुजरात और मध्य प्रांत तक एक तूफ़ानी दौरा हुआ, जिसमें हिन्दू-संगठन और प्रांतीय-हिन्दू-सभाओं की स्थापना का कार्य अपूर्व सफलता के साथ किया गया। इसी वर्ष महासभा का प्रधान दफ़्तर लाला जी की सुविधा के लिए दिल्ली में खोल दिया गया।

ख़्वाजा हसन निज़ामी के दांव-पेंच

इसी समय ख़्वाजा हसन निज़ामी का नाम उसकी पुस्तक "दाइए इस्लाम" के कारण बड़ा प्रसिद्ध हो उठा था। इस व्यक्ति ने अपनी उक्त पुस्तक में हिन्दू विधवाओं, कन्याओं और अनाथ बच्चों को तरह-तरह की धूर्ततापूर्ण तरकीबों से फँसा कर मुसलमान बनाने की विधियां मुस्लिम जनता को सुझायी थीं। इस पुस्तक का अनुवाद जब हिन्दी में किया गया, तब हिन्दुओं की आँखें खुलीं और उन्हें मालूम हुआ कि जो स्थान-स्थान से नित्य हिन्दू, स्त्रियों और कन्याओं के ग़ायब होने के समाचार मिलते रहते हैं, उनका असली कारण क्या है।

दिल्ली में नवां अधिवेशन

अप्रैल सन् १९२६ में महासभा का दिल्ली में नवां अधिवेशन हुआ। सभापति का आसन लाहौर के श्रीयुत राजा नरेन्द्र नाथ ने ग्रहण किया था। इसमें मुख्य प्रस्ताव जिसमें सब से अधिक दिलचस्पी दिखाई गयी, धारासभाओं के भावी चुनाव के संबंध में था। भाई परमानंद हिन्दू-सभा की ओर से कांग्रेस के विरुद्ध उम्मीदवार खड़े

करना चाहते थे, किन्तु लाला जी इसके विरोधी थे। बहुत वाद-विवाद के पश्चात् यह तय हुआ कि केवल उन्हीं कांग्रेसी उम्मीदवारों का विरोध किया जाय, जिनसे हिन्दू हितों को हानि पहुँचने की संभावना हो। चुनाव के परिणाम स्वरूप असेम्बली में हिन्दुओं की तीन पार्टियां दिखाई देने लगीं:(१) पं० मोतीलाल के नेतृत्व में स्वराजिस्ट पार्टी; (२) श्री जयकर और पं० मालवीय के नेतृत्व में रिस्पान्सविस्ट पार्टी; और (३) लाला जी के नेतृत्व में इन्डिपेन्डेन्ट पार्टी। पहिली पार्टी कॉंग्रेसी थी और शेष दोनों हिन्दूसभा की।

मुस्लिम-सांप्रदायिकता और हिंदू नेताओं की हत्या

इन दिनों देश भर में सांप्रदायिकता का वातावरण अत्यंत घना हो उठा था। कलकत्ते में भयंकर हिंदू-मुसलिम दंगा हुआ। उसके बाद देश भर में जगह-जगह ये दंगे होने लगे। दिसम्बर सन् १९२६ के अंतिम सप्ताह में, जिस समय गौहाटी में कॉंग्रेस का जलसा हो रहा था, दिल्ली में अब्दुल रशीद नाम के किसी मुसलमान गुंडे ने स्वामी श्रद्धानंद जी की हत्या कर डाली। इस गुंडे को जब फाँसी दे दी गयी, तो उसकी अर्थी के संग में ५०,००० मुसलमानों का जलूस निकला, जिसने रास्ते में अनेकों हिंदुओं को मारा, पीटा और लूटा। इसी से जान पड़ता है कि मुसलमानों की धर्मान्धता किस हद तक पहुँच चुकी थी।

स्वामी जी की स्मृति में शुद्धि और संगठन का काम चलाने के लिए दस लाख रुपये का एक फंड खोला गया, जिसका प्रबंध अनेकों प्रतिष्ठित नेताओं से बने हुए एक ट्रस्ट के सुपुर्द किया गया। इसके बाद स्थान-स्थान पर मुसलमानों द्वारा कितने ही अन्य आर्य सामाजी कार्य कर्ताओं की हत्या होने लगी, जिनमें से सबसे प्रसिद्ध 'रंगीला रसूल, के प्रकाशक महाशय राजपाल की हत्या थी। इस प्रकार

मुसलमानी साम्प्रदायिकता देश भर में अपना नग्न तांडव दिखाने लगी, जिसकी प्रतिक्रिया के रूप में हिन्दू-सभा का भी ज़ोर दिन पर दिन बढ़ने लगा। कांग्रेस की ओर से इस बढ़ते हुए हिन्दू-मुस्लिम भेद-भाव को मिटाने के लिए आयोजन किया गया, किन्तु कोई विशेष मतलब न निकला।

साइमन कमीशन और फिर गोलमेज़ कान्फ़रेंस

सन् १९२८ में साइमन कमीशन का भारतवर्ष में दौरा हो रहा था। कांग्रेस के साथ हिन्दू-सभा ने भी उसका बायकाट किया। परंतु पंजाब के हिन्दुओं ने उससे सहयोग करना अपने लिए ज़रूरी समझा और उसके सामने गवाहियां दीं। इसके पश्चात् १९३० के नवम्बर मास से गोलमेज़ कान्फ़रेंस का ज़माना आया। इस कान्फ़रेंस में मुसलमानों ने अपनी साम्प्रदायिकता का जैसा परिचय दिया था, उसका उल्लेख अन्यत्र कांग्रेस के इतिहास में किया जा चुका है। यहां तक कि उन्होने हिन्दुओं को नीचा दिखाने के लिए गोरों और अधगोरों तक से मैत्री करने और उनकी देश-द्रोही नीति में सहायक होने से भी गुरेज़ न किया। हिन्दुओं की ओर से उसमें डाक्टर मुंजे प्रतिनिधि थे तथा राजा नरेन्द्र नाथ, पं० नानक चन्द, और मिस्टर जयकर भी उसमें व्यक्तिगत रूप से बुलाये गए थे।

साम्प्रदायिक प्रश्न पर जैसी कि आशा थी, इसमें कोई समझौता नहीं हो सका। अतएव विलायत के प्रधानमंत्री ने इस विषय में स्वयं निर्णायक की ड्यूटी बजाई और अपना सांप्रदायिक निर्णय (Com munal award) देकर मुसलमानों को आशा से अधिक संतुष्ट कर दिया। इस निर्णय की निन्दा में हर दिशा से आवाज़ें सुनाई पड़ीं, यहां तक कि मुस्लिम नेता डा० अन्सारी ने भी इसे एक "ज़हर का प्याला" बतलाया, फिर भी यह भारतीयों के सिर ज़बर्दस्ती मढ़ दिया गया।

महासभा के अन्य अधिवेशन

महासभा के अब तक कुल २१ अधिवेशन हो चुके हैं। इसके पुराने नेताओं में से पं० मालवीय अत्यधिक वृद्धता के कारण रिटायर्ड हो गये हैं। स्वामी श्रद्धानन्द जी पहिले ही बलिदान हो चुके। सन् १९२८ में लाला जी भी चल बसे। अस्तु, अब इसके मुख्य कर्णधारों में से केवल श्रीयुत भाई परमानन्द और डाक्टर बी० एस० मुंजे ही रह गये है।

श्रीयुत लाला जी और मालवीय जी के समय में महासभा केवल सामाजिक और साम्प्रदायिक मामलों में ही स्वतंत्र नीति का व्यवहार किया करती थी। राजनैतिक मामलों में बहुत कुछ उसे कांग्रेस के साथ रखने का प्रयत्न किया जाता था, किन्तु भाई जी और डा० मुंजे का समय आते ही महासभा का संबन्ध कांग्रेस से बिलकुल टूट गया और अब वह राजनैतिक मामलों में भी अपना स्वतंत्र मार्ग पकड़ने लगी। साथ ही उसकी नीति में भी अब अधिक तीव्रता, तेजस्विता और जुझाऊपन का भाव पैदा हो गया।



(डा० मुंजे)

अप्रैल सन् १९२७ में महासभा का दसवां अधिवेशन पटना में डा० मुंजे के सभापतित्व में किया गया था। जिसमें वीरोत्सव मनाने

का निश्चय हुआ और हिन्दू स्त्रियों को अपनी रक्षा के लिए हथियार रखने की सलाह दी गयी। सन् १९२८ में ग्यारहवां अधिवेशन जबलपुर में श्रीयुत केलकर की अध्यक्षता में हुआ और बारहवां अधिवेशन सन् १६२९ में माडर्न रिव्यू के प्रसिद्ध सम्पादक श्री रामानन्द चटर्जी के सभापतित्व में किया गया। इस अधिवेशन में हिन्दू-संगठन पर विशेष रूप से ज़ोर दिया गया और एक हिन्दू नव-युवक-संघ स्थापित करने का भी विचार हुआ। तेरहवाँ अधिवेशन १९३१ में अकोला में और चौदहवां १९३२ में दिल्ली में हुआ। इसमें हरिजनों के संबन्ध में महात्मा गांधी के 'पूना पैक्ट' पर संतोष प्रकट किया गया, तथा ब्रिटिश प्रधान मंत्री के 'सांप्रदायिक निर्णय' (Communal award) की बुराइयां दिखाई गयीं। अजमेर का पंद्रहवां अधिवेशन अक्टूबर सन् १९३३ में हुआ और इसके सभापति स्वयं भाई परमानन्द जी थे। इसमें भी सांप्रदायिक निर्वाचन की निन्दा की गयी और सिंध को अलग प्रान्त बनाने का विरोध किया गया। साथ ही इस अधिवेशन में प्राचीन आर्य-सभ्यता के नाते चीन, जापान, श्याम तथा लंका आदि देशों के बौद्ध निवासियों से भी संबंध जोड़ने का प्रस्ताव पास हुआ। इसके बाद सन् १९३५ में कानपुर के सोलहवें अधिवेशन के समय सभापति का आसन एक बौद्ध सज्जन श्रीयुत भिक्षु उत्तम को दिया गया। इस अधिवेशन में नवीन-शासन-सुधार-सम्बन्धी 'इंडिया बिल' (जो उस समय पार्लिमेंट में पेश था) को अस्वीकार करने का प्रस्ताव पास हुआ। किंतु इंडिया बिल पास होकर क़ानून बन गया। अतएव इसी वर्ष दिसम्बर महीने में फिर अधिवेशन किया गया, जो पूना में हुआ और जिसके सभापति मालवीय जी बनाए गये। इसमें नवीन सुधार क़ानून और सांप्रदायिक निर्णय की कड़ी आलोचना की गयी तथा डाक्टर मुंजे द्वारा स्थापित हिंदुओं की सैनिक शिक्षा के लिए नवीन 'भोंसला-मिलिटरी-स्कूल' का हार्दिक

स्वागत किया गया। महासभा का अठारहवां अधिवेशन अक्टूबर सन् १६३६ में जगद्गुरु श्री शंकराचार्य के सभापतित्व में लाहौर में हुआ, जिसमें मुस्लिम देशी रियासतों में तथा कुछ हिन्दू रियासतों में भी हिन्दुओं की दुर्दशा पर ध्यान दिलाया गया और मथुरा के पवित्र स्थानों में गोहत्या के विरुद्ध आंदोलन करने तथा मालाबार एवं केराला प्रांतों में हिन्दुओं को मुसलमानी हथकंडों से बचाने के प्रश्नों पर भी विचार किया गया।

वीरवर सावरकर का पदार्पण

सन् १९३७ से हिंदू-महासभा के इतिहास में श्री वीरवर विनायक दामोदर सावरकर के पदार्पण से एक नये युग का प्रारंभ होता है। १९३७ में महासभा का १९ वाँ अधिवेशन अहमदाबाद में हुआ था, जिसमें सावरकर जी सभापति बनाये गये थे। इसके बाद नागपुर के बीसवें और कलकत्ते के २१ वें अधिवेशनों का सभापतित्व भी सावरकर जी को ही दिया गया। इस समय यद्यपि सावरकर जी को महासभा के कार्य क्षेत्र में आये अभी केवल तीन ही वर्ष हुए हैं, किंतु इस थोड़े से समय में ही उन्होंने इसे जो हिंदू-राष्ट्रीयता के साँचे में ढालने का प्रयत्न किया है और अपने भाषणों द्वारा जो अपूर्व रूप रेखा इस नवीन राष्ट्रीयता की खींची है, उससे हिन्दू जाति का भविष्य अति उज्ज्वल दिखाई देने लगा है। सभापति की हैसियत से उनके दिये हुए ये भाषण हिन्दू जातीयता के इतिहास में अपना अनोखा स्थान रखते हैं, जिनकी खूबियां केवल उन्हें पढ़ने से ही विदित हो सकती हैं। वास्तव में इसे हिन्दू-महासभा और हिन्दू जाति का अहोभाग्य ही कहना चाहिए कि उसे सावरकर जैसे अद्भुत् व्यक्तित्व का नेता इस संकटकाल में प्राप्त हो गया है।

महासभा की शाखाएँ

इस समय तक महासभा की शाखाएँ देश के प्रायः सभी प्रांतों में खुल चुकी हैं। पंजाब में, जैसा कि पहिले कह आये हैं, यह सन् १९०८ में महासभा से भी पहिले स्थापित हो चुकी थी। दिल्ली में यह सन् १९१८ में खुली। संयुक्त प्रांत में सन् १९१९ में; बिहार में १९२२ में; मध्यप्रांत में १९२३ में, बम्बई में १९२४ में, महाराष्ट्र में १९२४ में, बरार में १९२४ में, बगाल में भी १९२४ में, सिंध में १९२६ में, राजस्थान में और आसाम में १९२७ में स्थापित हुईं। इनके अतिरिक्त साँगली, कोल्हापुर, रत्नागिरि, मीराज आदि में भी अलग-अलग हिन्दू-सभाएँ काम कर रही हैं।

उद्देश्य

हिन्दू महासभा का उद्देश्य इस प्रकार रखा गया है :—

"हिन्दू जाति, हिन्दू संस्कृति तथा हिन्दू सभ्यता का संगोपन-संरक्षण एवं संवर्धन करते हुए, हिन्दुस्तान को वैध मार्ग से पूर्ण स्वराज्य अर्थात् पूर्ण स्वातंत्र्य से संपन्न कर अपने हिन्दू राष्ट्र को उत्कर्षगामी एवं ऐश्वर्य-सम्पन्न करना हिन्दू महासभा का उद्देश्य है।"

मंतव्य

महासभा के मंतव्य इस प्रकार कहे गये हैं :—

क— हिन्दू समाज के सभी अंगों को संगठित करके एक सूत्र में आबद्ध करना।

ख— जहां और जब आवश्यकता हो हिन्दू हितों को आगे बढ़ाना और उनकी रक्षा करना।

ग—अस्पृश्यता का निवारण करना और हिन्दू समाज में दलित कही जाने वाली—जातियों की स्थिति को सुधारना।

घ—हिन्दू नारीत्व के उच्च आदर्शों को पुनर्जाग्रत करना तथा उन्हें आगे बढ़ाना।

ङ—गोरक्षा को प्रोत्साहित करना।

च—हिन्दुओं की शारीरिक शक्ति को बढ़ाना और सैनिक शिक्षा के लिए सैनिक स्कूलों और सैनिक स्वयं सेवक-मंडलियों की स्थापना कर हिन्दुओं में सैनिक भाव भरना।

छ—जिन लोगों ने हिन्दू धर्म को छोड़ दिया है, उन्हें हिन्दुत्व की गोद में वापस लेना तथा दूसरों को भी हिन्दू-धर्म वा जाति में प्रविष्ट करना।

ज—निराश्रित स्त्रियों तथा अनाथ बच्चों के लिए अनाथालयों तथा बनिताश्रमों की स्थापना करना।

झ—हिन्दू जाति के धार्मिक, शिक्षा-संबंधी, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक हितों और अधिकारों की रक्षा और पोषण के लिए आवश्यक उपाय करना।

ञ—भारत के हिन्दू, भूतपूर्व हिन्दू तथा अन्य धर्मावलम्बी समाजों में सद्भाव उत्पन्न करना, और स्वयं शासन करने वाले एक सम्मिलित भारतीय राष्ट्र को बनाने की दृष्टि से उनके साथ मित्रता का बर्ताव करना।

आवश्यक—धार्मिक व्यवहारों के मामले में महासभा हिंदू-समाज की किसी जाति या सम्प्रदाय का पक्षपात या विरोध न करेगी और न उनमें किसी तरह हस्तक्षेप करेगी।

सदस्य बनने के लिए प्रतिज्ञा

महासभा के हर एक सदस्य से वार्षिक चंदा पांच आना लिया जाता है और सदस्य बनने के समय निम्नलिखित प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर कराया जाता है :—

"भारतभूमि (हिन्दुस्तान) मेरी अपनी पितृ-भूमि एवं पुण्य भूमि है; तथा उसी परम पूज्य भारत माता एवं परमेश्वर को स्मरण कर मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि हिन्दू जाति, हिन्दू संस्कृति तथा हिन्दू सभ्यता का संगोपन, संरक्षण एवं संवर्द्धन करते हुए हिन्दुस्तान को वैध मार्ग से स्वराज्य अर्थात् पूर्ण स्वातन्त्र्य से संपन्न कर अपने हिन्दू राष्ट्र को उत्कर्ष-गामी एवं ऐश्वर्य-सम्पन्न करने के निमित्त, मैं तन-मन-धन से जीवन भर प्रयत्न शील रहूंगा।

हिंदू-राष्ट्रीय-झंडा

सन् १९३६ के लाहौर अधिवेशन में महासभा के लिए एक राष्ट्रीय झंडे की आवश्यकता वीरवर सावरकर ने ही सुझाई थी, और इसका स्वरूप भी उन्हीं के उपजाऊ मस्तिष्क से आविर्भूत हुआ। यह झंडा रंग में केसरिया और आकार में त्रिकोण है। इसके बीच में विजय और मंगल का सूचक स्वस्तिक चिन्ह, नीचे की ओर शक्ति और अभ्युदय का सूचक कृपाण, बगल में योग और अध्यात्म-सूचक कुंडलिनी तथा इसके ऊपरी सिरे पर परमात्मा का नाम 'ॐ' दिखाई पड़ता है। उक्त अधिवेशन में महासभा ने इसे एक प्रस्ताव द्वारा सम्पूर्ण हिन्दू जाति की राष्ट्रीयध्वजा स्वीकार कर ली है।

हिंदुत्व की परिभाषा

वीरवर सावरकर ने अपने अहमदाबाद के भाषण में हिन्दू शब्द की परिभाषा निम्नलिखित श्लोक द्वारा की थी :—

'आसिन्धु-सिन्धुपर्यन्ता, यस्य भारत भूमिका।
पितृभूः पुण्यभूश्चैव स वै हिंदुरितिस्मृतः॥"

अर्थात् "जिस मनुष्य की सिंधु नदी से लेकर समुद्र पर्यंत भारत की भूमि पितृ-भूमि और पुण्यभूमि हो, वही हिन्दू समझा जाता है।" इस

से मतलब यह है कि भारतवर्ष केवल हमारी पितृ-भूमि ही न हो, बल्कि पुण्य-भूमि भी हो, अर्थात् हमारे तीर्थ स्थान भी इसी में हों, तभी हम हिन्दू कहला सकते हैं। इस प्रकार हम सब एक देशीयता, एक जातीयता, और एक ही सभ्यता के कारण हिन्दू कहलाते हैं। सावरकर जी की यह परिभाषा महासभा में सर्वमान्य बन गयी है।

महासभा का हेड आफ़िस दिल्ली में अपने निज के एक विशाल भवन में स्थित है, किन्तु इस समय इसे धन की बहुत आवश्यकता है। अतएव सावरकर जी का ध्यान इसकी स्थिति को मज़बूत बनाने के लिए इस समय धन संग्रह की ओर आकृष्ट हो रहा है।

-:o:—

सेन्ट्रल-हिन्दू-युवक-सभा

हिंदू-नवयुवक-संगठन

हर एक देश और जाति के भविष्य का आधार-स्तंभ उसका नवयुवक समाज ही हुआ करता है। अतएव प्रायः जितनी नवीन क्रांतियां और नये आन्दोलन उठाये जाते हैं, उन सबों की सहायता में इन्हीं होनहार नवयुवकों के उमड़ते हुए उत्साह और उफ़नाती हुई गर्मी का आह्वान किया जाता है। जिस प्रकार एक इंजिन के वाष्प का उपयुक्त रीति से व्यवहार करने पर समूची ट्रेन को चाल मिलती है उसी प्रकार इन नव-जवान हृदयों की बल बलाती हुई गर्मी के भी उचित व्यहार से प्रत्येक आन्दोलन की प्रगति हुआ करती है। अस्तु, हिन्दू-संगठन के आन्दोलन में भी हिन्दू नवजवानों की ज़रूरत आ पड़ी और सन् १९२८ से एक 'हिन्दू-नवयुवक-संघ'' स्थापित करके इन्हें आकर्षित करने की चेष्टा होने लगी।

यह संघ (The Order of the Hindu youths) पहिले-पहल लाहौर में श्री भाई परमानन्द जी द्वारा पंजाब-हिन्दू-सभा की संरक्षकता में स्थापित किया गया था। दो वर्ष बाद इसका नाम बदल कर "सेन्ट्रल-हिन्दू-युवक-सभा" रख दिया गया और १९३५ से यह अखिल-भारतीय-हिन्दू-महासभा द्वारा अपना लिया गया। यद्यपि महाराष्ट्र में भी सन् १९२९ और १९३७ में युवक परिषदें की गयी थीं, किन्तु वे केवल प्रांतीय थीं। सेन्ट्रल हिन्दू-युवक-सभा सार्वदेशिक है।

उद्देश्य

इस सभा का उद्देश्य हिन्दू-नव-युवकों का संगठन करके अंधकार में पड़ी हुई हिन्दू जनता में और विशेष कर हिन्दू नौजवानों के पास हिन्दू राष्ट्रीयता का संदेश पहुँचाना है और उन्हें राष्ट्रीय कामों के लिए तैयार करना है।

अधिवेशन

इस सभा के दिसम्बर सन् १९३८ तक तीन अधिवेशन हो चुके हैं। पहिला अधिवेशन अखिल-भारतीय-हिन्दू-नवयुवक-कान्फ़रेंस के नाम से सन् १९३२ में करांची में किया गया था, जिसमें प्रायः सभी प्रांतो के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। सभापति स्वयं भाई परमानन्द जी थे। देश के अनेकों हिन्दू नेताओं के अतिरिक्त श्री बाबा साहब गणेश दामोदर सावरकर भी इसमें पधारे थे। दूसरा अधिवेशन सन् १९३६ में लाहौर में किया गया, जिसमें डाक्टर राधा कुमुद मुकर्जी (लखनऊ युनिवर्सिटी) सभापति थे। प्रो० दीवान चंद शर्मा स्वागताध्यक्ष और श्रीयुत इन्द्र प्रकाश मन्त्री बने थे। हिन्दू सभा के कुल नेता इसमें मौजूद थे। तीसरा अधिवेशन दिसम्बर सन् १९३८ में नागपुर में हुआ। सभापति श्रीमंत षष्ट्रीय जगद्गुरु जी थे।

सभा के अध्यक्ष लाहौर डी० ए० वी० कालेज के प्रोफ़ेसर दीवान चंद जी हैं और प्रधानमंत्री श्री इन्द्र प्रकाश जी।

शाखाएं

इस समय तक इसकी २३ शाखाएँ पंजाब और संयुक्त प्रांत में फैल चुकी हैं और अन्य प्रांतों में भी नयी शाखाएँ खोलने का काम जारी है। इनके अलावा कई प्रांतों की स्थानीय हिन्दू-युवक-संस्थाएँ भी इससे सम्बद्ध हैं, यथा:—(१) आर्डर-आफ़-हिन्दू-यूथ्स, करांची; (२) हिन्दू-युवक-संघ, नागपुर; (३) नौजवान-सभा, सक्खर; (४) हिन्दू-यूथ-लीग, मद्रास; (५) महाराष्ट्र-प्रांतीय-हिन्दू-यूथ-लीग, पूना; (६) हिन्दू-युवक-सभा, पेशावर; और (७) हिन्दू-युवक-संघ, नईदिल्ली;। अफ्रीका के मारीशस द्वीप तथा नेपाल में भी कुछ संस्थाएं और कार्य-कर्ता इसकी ओर से काम कर रहे हैं।

सन् १९३८ के सितंबर महीने से इसका हेड आफ़िस नई दिल्ली में हिन्दू-महासभा के भवन में आ गया है।

प्रकाशन

इस सभा की ओर से बड़े-बड़े हिन्दू नेताओं की लिखी हुई अनेकों पुस्तकें भी छपवा कर देश भर में और विदेशों में भी सस्ते मूल्य पर एवं मुफ़् बंटवायी जा रही हैं।

अक्टूबर सन् १९३६ में इस संस्था की ओर से हिन्दू महासभा को लाहौर अधिवेशन के समय श्री भाई परमानन्द जी का एक पूरे साइज़ का चित्र २००) रु० की लागत से तैयार करा कर भेंट किया गया था।

—:o:—

हिन्दू-सेवा-आश्रम

यह संस्था पूना के सर्वेन्ट्स-आफ़-इन्डिया-सोसाइटी The Servants of India society) के ही ढङ्ग पर निर्मित की गयी है। जिस प्रकार नरम-दल के उद्देश्यों के अनुसार आजीवन सामाजिक और राजनैतिक कार्य करने वाले तैयार करने के लिए सर्वेन्ट्स-आफ़-इंडिया सोसाइटी की स्थापना की गयी थी, और जिस प्रकार राष्ट्रीय-विचार के कांग्रेसी सेवक तैयार करने के लिए सर्वेन्ट्स-आफ़-दि-पीपुल्स सोसाइटी की नींव डाली गयी, उसी प्रकार हिन्दू राष्ट्रीयता को ध्येय मानकर आजीवन हिन्दू-जाति की सेवा का व्रत लेने वालों के लिए यह हिन्दू-सेवाश्रम खोला गया है। इसकी उपज श्री भाई परमानन्द जी के मस्तिष्क से हुई थी और वे ही इसके जन्मदाता एवं सर्वेसर्वा हैं।

जन्म

अक्टूबर सन् १९३३ में हिंदू-महासभा के अजमेर अधिवेशन के समय सभापतित्व का भार श्री भाई परमानन्द जी ने ग्रहण किया था। उसी समय भाई जी ने इस आश्रम को स्थापित करने की पूरी योजना महासभा की कार्य समिति के सामने रखी थी; जिसका वहां बड़े उत्साह के साथ स्वागत किया गया।

इसके पश्चात् स्थान का सवाल आया। स्वर्गीय श्री सर गंगाराम जी के सुपुत्र रायबहादुर लाला सेवकराम का अनुरोध था कि यह

लाहौर में रावी नदी के किनारे पर स्थापित किया जाय और इसके लिए स्वयं सारी भूमि मुफ़ में देने का वादा किया, किन्तु अन्य नेताओं की राय दिल्ली के पक्ष में थी। भाई जी को भी दिल्ली ही भारत की राजधानी होने के कारण अधिक उपयुक्त जान पड़ी। निदान इधर उधर खोज करने के बाद उन्होंने रीडिंग रोड पर एक जगह पसंद की और उस ज़मीन को लीज़ पर लेने के लिए सरकार के पास अर्ज़ी भेजी। इस समय हिंदू-महासभा का प्रधान दफ़्तर भी पंचकुंई रोड पर किराये के एक छोटे से दुमंज़ले मकान में लगा करता था, जो महासभा की प्रतिष्ठा और बढ़ते हुए कार्य के लिए अपर्याप्त जान पड़ा। निदान यह ज़मीन तीन प्रकार के प्रयोजनों को ध्यान में रखकर ली गयी।

—महासभा के हेड-आफ़िस के लिए, आश्रम के लिए, और निवास-स्थान के लिए। अब तो इस स्थान पर एक विशाल इमारत खड़ी है, जिसमें महासभा का प्रधान दफ़्तर लगता है। उसी के एक भाग में उपर्युक्त सेवा-आश्रम की भी इमारत है, जो बन चुकने पर भाई जी के हाथ में छोड़ दी गयी है।

आश्रम के लिए भाई जी का त्याग

इस आश्रम की इमारत के लिए भाई जी ने २०,०००) रु० चंदे से एकत्रित किया और इसके नित्य-व्यय के लिए स्वयं अपने पास से १०० शेयर पंजाब सुगर मिल्स के दान कर दिये। बाज़ार भाव से इन शेयरों की क़ीमत इस समय क़रीब ३५,०००) रुपये होती है और ४०००) रु० साल की इनसे आमदनी है।

प्रबंध करने के लिए भाई जी के अतिरिक्त श्री सेठ जुगुल किशोर बिड़ला, राजा नरेन्द्र नाथ, डा० सर गोकुल चंद नारंग, लाला नारायण

दत्त, महासभा के सभापति तथा कई अन्य सज्जनों का एक ट्रस्ट क़ायम हो गया है।

उद्घाटन

आश्रम का उद्घाटन सन् १९३५ में अप्रैल महीने के प्रथम सप्ताह में हुआ था। उद्घाटन मद्रास के श्री विजय राघवाचारियर के हाथों से कराया गया था। इस अवसर पर डा० मुंजे, राय बहादुर लाला मूल राज, लाला नारायण दास इत्यादि प्रमुख नेता वहाँ उपस्थित थे।

समाचार-पत्र

इस आश्रम से दो समाचार-पत्र भी निकलने लगे हैं—एक अंग्रेज़ी में "हिन्दू आउटलुक" (Hindu Out look) और दूसरा हिन्दी में "हिन्दू।" ये दोनों पत्र साप्ताहिक हैं और अपने निज के प्रेस में छपते हैं। इनके द्वारा हिन्दू महासभा के उद्देश्यों एवं कार्यों का प्रचार किया जाता है।

धन की ज़रूरत

अभी आश्रम की यह योजना पूरी तौर से कार्यरूप में नहीं आयी है। काम को देखते हुए इसके लिए अभी धन की बहुत अधिक ज़रूरत है। भाई जी इसके लिए कम से कम पाँच लाख रुपये एकत्र करना चाहते हैं। और इसके लिए देश और विदेशों में दौरा करने वाले भी थे। आश्रम के निवासियों के साथ भाई जी स्वयं आश्रम में एक वानप्रस्थी बन कर रहना चाहते हैं।

राष्ट्रीय-स्वयं-सेवक-संघ

यह एक अखिल-भारतवर्षीय-संस्था है और इसकी स्थापना सन् १९२५ में विजयादशमी के अवसर पर डाक्टर के० बी० हेजवार (Dr. K. B. Hedgewar L. M. S.) के द्वारा केवल थोड़े से उत्साही नवयुवकों की सहायता से नागपुर शहर में की गयी थी।

उद्देश्य

इस संघ का उद्देश्य "हिंदू जाति, हिंदू धर्म और हिंदू-सभ्यता की रक्षा करते हुए प्राचीन हिन्दू-राष्ट्र की सर्वांगीन उन्नति करना" निश्चित किया गया है। भाव यह है कि हिंदुओं में जाति-पाँति और पेशे का भेदभाव छोड़ कर सामूहिक जीवन का विचार पैदा किया जाय और उनकी छिपी हुई शक्तियों को बाहर लाकर एक विशाल हिन्दू राष्ट्र के निर्माण में सहायक बनाया जाय।

शाखाएँ

इस अभीष्ट की पूर्ति के लिए जो कार्य-विधि निश्चित की गयी, उसके अनुसार देश के एक छोर से दूसरे छोर तक राष्ट्रीय-स्वयं-सेवक-संघ की शाखाओं का एक व्यापक जाल बिछाना आवश्यक जान पड़ा। इस कार्य में इसे आशातीत सफलता हुई है। इन पंद्रह वर्षों के अंदर इसने तीन सौ से भी अधिक शाखा-संघ स्थापित कर लिए हैं, जिनके कुल सदस्यों की संख्या क़रीब ४०,००० तक पहुँचती है।

ये शाखायें मुख्यतः मध्य प्रांत, बरार और बम्बई प्रांत में फैली हुई हैं, और संयुक्तप्रांत तथा पंजाब में भी इन्हें फैलाने का आयोजन आरंभ कर दिया गया है।

ट्रेनिंग

समस्त शाखाओं का कार्यक्रम समान रूप से चलाने और उनके कार्यों को ठोस एवं प्रभावकारी बनाने के लिए तथा जिन प्रांतों में अभी शाखाएँ नहीं खुली हैं, वहां शाखाएँ खुलाने वाले कार्य-कर्ता तैयार करने के लिए नागपुर, पूना और लाहौर में प्रतिवर्ष एक "आफ़िसर्स - ट्रेनिङ्ग कैंप" भी लगा करता है, जहां कार्य - कर्ताओं को गर्मी के दिनों में ४० दिन तक इसकी पूरी ट्रेनिंग दी जाया करती है।

कार्यक्रम

संघ एवं उसकी हर एक शाखा-संघ का दैनिक कार्य-क्रम बड़ा चित्ताकर्षक रहता है। प्रतिदिन संध्या समय तमाम सदस्य एक निश्चित स्थान पर क़रीब घन्टे भर के लिए आकर एकत्रित होते हैं और सब प्रकार के शारीरिक व्यायाम तथा सैनिक क़वायदें किया करते हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें अपने व्यक्तित्व को राष्ट्र के विशाल सामूहिक जीवन में मिला देने के लिए उचित नैतिक शिक्षाएँ भी दी जाती हैं।

इस दैनिक कार्य-क्रम के अलावा गुरुपूर्णिमा, रक्षा बंधन, विजया दशमी, मकरसंक्रांति इत्यादि हिन्दू त्यौहारों को विशेष रूप से मनाने तथा समय-समय पर बाहरी स्थानों की सैर, यात्रा, फ़ौजी कैम्प इत्यादि करने का आयोजन भी किया जाता है, जिसमें (सैनिकों की तरह) नियमों की पाबंदी पर अत्यधिक ध्यान दिया जाता है।

आदि-हिन्दू-सभा

अछूत हिन्दू सभ्यता के लिए कलंक

भारतवर्ष में अछूतों की संख्या क़रीब-क़रीब उतनी ही है जितनी मुसलमानों की; किन्तु उनको मुसलमानों के मुक़ाबले में कुछ भी राजनैतिक महत्व प्राप्त नहीं है। यह सब ऊँची जातिवालों की मेहरबानी है। सात करोड़ आदमियों के साथ क़रीब-क़रीब पशुओं का सा व्यवहार यह भारतीय संस्कृति की एक देन है जिसकी मिसाल दुनियां में कहीं भी मौजूद नहीं। इतने दिनों के आन्दोलन के बाद भी आज अछूतों के साथ उच्च जातियों के व्यवहार में कोई विशेष प्रभेद नहीं आया। जब तक अछूतों के साथ उच्च जातियों का रोटी बेटी का आम तौर से व्यवहार नहीं होता, तब तक ऊँची जातियों को कोई अधिकार नहीं कि अछूतों की संख्या के राजनैतिक फ़ायदे उठावें। मुझे तो डर है कि उच्च जाति के जो बड़े से बड़े सुधारक हैं, उनका अभिप्राय कभी भी बेटी के व्यवहार में अछूतों को लेना नहीं था, वे केवल बहुत हुआ खान-पान में अछूतों को मिलाना चाहते थे। महात्मा गांधी ने एक भंगिन को लड़की करके पाला, किन्तु सवाल तो यह है कि उन्होंने अपने लड़के की या अपने कुल के और किसी लड़के की शादी उससे की?

अछूतों की समस्या के दूसरे पहलू

अछूतों की समस्या मूलतः एक आर्थिक समस्या अवश्य है. किन्तु अब उसी से उद्भूत होकर और भी बहुत सी बातें उसमें सम्मिलित हो गयी हैं। सब से बड़ी बात इस सम्बन्ध में यह है कि अछूतों को एक वर्ग या जाति मानने में प्रबल आपत्ति इसलिए है कि वे भी एक दूसरे से बेटी का ही नहीं रोटी तक का भी व्यवहार नहीं करते। इस अवस्था में वे सारे उच्च वर्ण- वालों के विरुद्ध जो मोर्चा पेश करते हैं, उसका खोखलापन स्पष्ट हो जाता है तथा यह भी साफ़ हो जाता है कि कुछ अछूत पढ़े लिखे चालाक लोग अछूतों का राजनैतिक फ़ायदा उठाकर बड़े बनना चाहते हैं। अछूतों की सब से पहिली ज़रूरत आर्थिक उन्नति, दूसरी उच्च शिक्षा है, कौन्सिल की ३० सीटों से कहीं ज़्यादा महत्वपूर्ण कालेज में ३०० अछूतों की निःशुल्क शिक्षा उनके लिए है। ये दो बातें हो जायँ तो फिर सब ख़ुद ही हो जायँगी।

अछूत संगठन शुरू

न मालूम किसने यह सिद्धान्त चला दिया कि अछूत वे लोग हैं जिनको आर्यों ने बाहर से आकर जीता और शूद्र नाम रखकर ग़ुलाम बना दिया। हो सकता है, इस बात में कुछ सत्य हो, किन्तु यह सत्य नहीं, क्योंकि सब शूद्र अनिवार्य रूप से अछूत नहीं हैं। जो कुछ भी हो यह सिद्धान्त चल निकला, और कहीं प्राचीन हिन्दू-सभा के नाम से कहीं आदि द्रविड़ सभा, कहीं दलित जाति-सभा, (Depressed classes association) के नाम से संस्थाएँ क़ायम हुईं। प्राचीन-हिन्दू-सभा अपने को एक अखिल-भारतीय-संस्था बताती थी यद्यपि उसकी शाखायें बहुत कम थीं। सन् १९२५ में इन का एक सम्मिलित अधिवेशन राय बहादुर एम० सी० राजा के सभापतित्व में हुआ। यह दूसरा अधिवेशन माना गया। बाद के अधिवेशनों में

जो बातें हुईं, उनका अलग-अलग वर्णन करना असंभव है, इन अधिवेशनों में क्या हुआ यह आदि हिन्दू-सभा के उद्देश्यों से पता लगता है, वे यों बनाए गए हैं :—

(१) ७ करोड़ आदि हिन्दुओं (कथित दलित जातियों) की अवस्था की उन्नति करना जो राजनैतिक ईर्ष्या के कारण अछूत, शूद्र आदि कहे जाते हैं, किन्तु जो असल में भारत की मौलिक शासक जातियों के वंशज हैं।

(२) सरकार के साथ राजभक्तिमूलक सहयोग देकर आदि हिन्दुओं के राजनैतिक अधिकार प्राप्त करना।

(३) आदि हिन्दुओं में सद्भाव का स्थापन करना जिनमें राजनैतिक उद्देश्यों से पाँच हज़ार वर्ष पहिले आपस में बिगाड़ पैदा कर दिया गया था।

(४) ऊँची जाति के हिन्दू जिनका छूआ पानी नहीं पीते या खाना नहीं खाते वे ही दलित जातियां हैं।

(५) आदि हिन्दुओं का हित इसमें है कि उच्च जातियों के हिन्दुओं से उनका पृथक् निर्वाचन हो।

इन बातों से स्पष्ट है कि यह आदि-हिन्दू-सभा जिसको डिप्रेस्ड क्लासेस-एसोसिएशन भी कहते हैं, एक तरह से अछूतों की मुस्लिम लीग है। ये लोग डाक्टर अम्बेडकर को अपना नेता मानते हैं। राय बहादुर एम० सी० राजा, दीवान बहादुर श्रीनिवासन, राय साहब नानकचन्द धूसिया, माननीय मिस्टर मुकुन्दबिहारी मल्लिक, हंसराज, राय साहब श्यामलाल आदि इस के अन्य नेता हैं। इनके नामों के आगे राय साहब आदि शब्द से ही स्पष्ट है कि ये कांग्रेस-विरोधी हैं, इनके प्रचारकों के उपदेशों में वही मज़ा आता है जो मिस्टर फ़ज़लुल हक़ की स्पीचों में। हम शुरू में ही कह चुके हैं कि हम इसके क़तई विरुद्ध हैं कि उच्चवर्ण के हिन्दू अछूतों की संख्या के राजनैतिक

फ़ायदे उठावें, जब कि वे उनके साथ सब तरह से भाई सा व्यवहार करने के लिए तैयार नहीं हैं, यहां तक कि उनका उद्देश्य भी ऐसा नहीं है; किन्तु साथ ही हम इसके भी विरुद्ध हैं कि कुछ शिक्षित तथा अर्धशिक्षित अछूत इनकी संख्या का फ़ायदा उठावें, केवल यही नहीं। इनकी संख्या तथा प्रतिनिधित्व की आड़ लेकर देश की उन्नति के मार्ग में रोड़े अटकावें।

१९४० को कान्फ़रेंस

गोलमेज़ के अवसर पर तथा अन्य अवसरों पर डाक्टर अम्बेडकर ने बराबर ग़लत दृष्टिकोण अख़्तियार किया। इसमें सन्देह नहीं कि अछूतों की भलाई दूसरे भारतीयों के साथ मिली हुई है, अतएव इन चेष्टाओं का विरोध अछूतों की ओर से हुआ, और जारी है।

फ़रवरी १०, ११, १२ को आदि हिंदू-सभा की एक अखिल-भारतीय-कान्फ़रेंस बंगाल के मंत्री श्री मुकुन्द बिहारी मल्लिक के सभापतित्व में हुई। इनके प्रस्तावों से स्पष्ट है कि ये क्या चाहते हैं—इनके प्रस्तावों को हम नीचे संक्षेप में देते हैं—

(१) कान्फ़रेंस सम्राट् के प्रति अविचलित श्रद्धा प्रकट करती है और सम्राट् तथा सम्राज्ञी के दीर्घ जीवन के लिये प्रार्थना करती है।

(२) यह कान्फ़रेंस डिक्टेटर शासित देशों की आक्रमणात्मक नीति की निन्दा करती है, और समझती है कि मित्र पक्ष प्रजातंत्र तथा स्वतन्त्रता के लिए लड़ रहे हैं, उनको हर तरह से सहायता देना कर्तव्य है।

(१) अछूतों का एक रेजिमेन्ट बनाया जाय।

(४) यदि सरकार कुछ सुधार दे, तो उसमें दो बातें अवश्य हों, एक तो केन्द्रीय मंत्रि-मंडल में अछूत हो, दूसरी प्रान्तीय-मन्त्रि मंडल में कोई न कोई अछूत हो।

(५) यह कान्फ़्रेन्स विधान-सम्मेलन का विरोध करती है, क्योंकि उच्च जाति के हिन्दुओं की संख्या अधिक होने के कारण वे अल्पसंख्यकों की ग़ुलामी को दृढ़ करेंगे। साथ ही कान्फ़्रेन्स सर मारिस ग्वायर द्वारा बताये हुए चुने हुए लोगों की कान्फ़्रेन्स (जिसमें अछूत हों) स्वागत करती है।

(६) यह कान्फ़्रेन्स अछूतों के लिए हरिजन शब्द का विरोध करती है, क्योंकि हरिजन शब्द से देवदासियों के पुत्रों का बोध होता है।

(७) कान्फ़्रेन्स पूना पैक्ट का विरोध करती है, क्योंकि इससे उच्च हिन्दुओं के दब्बैल अछूत ही चुने जाते हैं, अछूतों के असली प्रतिनिधि नहीं।

(८) यह कान्फ़्रेन्स डाक्टर अम्बेडकर में पूर्ण विश्वास करती है।

इसमें संदेह नहीं कि राष्ट्रीय दृष्टि से यह एक प्रतिक्रियावादी संस्था है, किन्तु यह मानना पड़ेगा कि इस प्रतिक्रिया के ज़िम्मेंदार उच्च वर्ण के हिन्दुओं की हठधर्मी, ढोंग, मक्कारी तथा हज़ारों वर्षों का अन्याय है जिसके दूर किये जाने पर यह प्रतिक्रिया स्वयं ख़तम हो जायगी।

दूसरी संस्थाएँ

आदि-हिंदू-सभा के अतिरिक्त अछूतों की और भी संस्थाएँ है, जैसे डिप्रेस्ड क्लासेज़ लीग। इस लीग का पहिला अखिल-भारतीय-अधिवेशन जुलाई १९३० में मेरठ में हुआ। इसका दृष्टिकोण राष्ट्रीय है। यू० पी० में इसके नेता डाक्टर धर्मप्रकाश हैं। हिंदू-समाज में प्रचलित वर्णव्यवस्था को एकदम ग़लत समझते हैं। ये उसे जन्म और कर्म से दोनों तरह से भेद बढ़ाने वाली, विनाशकारिणी तथा हिंदू-समाज को रसातल पहुँचाने वाली समझते हैं। ये लोग यह प्रचार करते रहते हैं कि देश में राष्ट्रीयता और अछूत समाज में एक जातीयता का प्रचार हो।

इनके अतिरिक्त रविदास - महासम्मेलन आदि संस्थाएँ हैं, किन्तु इनका राजनैतिक महत्व कुछ भी नहीं है। ये अछूत संस्थायें सब मिल कर यदि अछूतों में आपस में ही रोटी बेटी का व्यवहार स्थापित कराने में समर्थ हों तो देश का भारी कल्याण होगा। जब तक वे यह नहीं करा पाते तब तक ऊँची जातियों को छूआछूत के लिए कोसना कोई ख़ास महत्व न रक्खेगा।

मुसलिम-लीग

भारतवर्ष का साम्राज्य मुसलमानों के हाथ से अंग्रेज़ों के हाथ लगा, यह बात सत्य है, किन्तु उस माने में सत्य नहीं है जिस माने में कि



(मि० मोहम्मद अली जिन्ना)

आम मुसलमान इसे लेते हैं। अंग्रेज़ों के पहले के शासकवर्ग मुख्यतः मुस्लिम धर्मावलम्बी थे, किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि जो लाखों या करोड़ों मुसलमान थे, वे किसी भी तरह शासक थे याने उन्हें शासकवर्ग की रियायतें प्राप्त थीं। एक मुसलमान किसान, मज़दूर या दुकानदार धार्मिक बातों की आज़ादी के अतिरिक्त किसी भी मामले में एक हिन्दू किसान या मज़दूर से अच्छा नहीं था। शोषण का डंडा उस पर भी उसी तरह बरसता था, जिस प्रकार उस श्रेणी के हिन्दुओं पर। हमारे स्कूल तथा कालजों में जो इतिहास पढ़ाया जाता है, और जिसे हम आज

सच समझ बैठे हैं, उसमें यही त्रुटि है कि हम इतिहास की इन बारीकियों को सामने रखकर नहीं पढ़ते हैं, नतीजा यह होता है कि हम ग़लत साध्यों को लेकर शुरू करते हैं, और हमारा सारा दृष्टिकोण ही ग़लत हो जाता है।

प्रारम्भिक रूप

जो कुछ भी हो अंग्रेज़ों का राज्य हो जाने पर वे अधिकांश मुसलमान, जिनको राज्य में कभी कोई हिस्सा नहीं मिला था, और जो उतने ही पददलित, शोषित और निपीड़ित थे जितने कि उच्च श्रेणियों के हिन्दू, अंग्रेज़ों से रुष्ट हो गये। अंग्रेज़ी सरकार ने भी इस अविश्वास तथा रोष का जवाब उसी ढङ्ग से दिया। इन बातों का नतीजा यह हुआ कि मुसलमानों ने अंग्रेज़ी शिक्षा को नहीं अपनाया। हिन्दू मध्यवित्त श्रेणी ने बड़े ज़ोरों से नई शिक्षा को अपनाया, सब नौकरियाँ, पेशे उन्हीं को मिलने लगे। मुसलिम मध्यवित्त श्रेणी कई सालों तक साम्राज्य को लौटा पाने का स्वप्न देखती रही, किन्तु अंत में वह स्वप्न भी टूट गया। दिन ब दिन साम्राज्यवाद तगड़ा होता जा रहा था। अब जो थोड़े से मुसलमान शिक्षित हो गये थे या शिक्षा और नौकरी के संबंध को समझते थे, चौकन्ने होने लगे, और उन्होंने मुसलमानों के हक़ों की रक्षा करने के लिए अर्थात् मुस्लिम मध्यवित्त श्रेणियों की नौकरी आदि के लड़ने के लिए यह नारा लगाया "मुसलमान अंग्रेज़ी शिक्षा अपनावें।" इस नारे से दो चीज़ों की उत्पत्ति हुई, एक तो अलीगढ़ विश्व-विद्यालय, दूसरा मुसलिम लीग। मुसलमान इस नौकरी की शिक्षा में हिन्दुओं से पिछड़े हुए थे, अतएव सर सैयद अहमद ख़ाँ ने इसके लिए अलीगढ़ कालेज बनाया। सवाल एक और था कि नौकरी की योग्यता के बाज़ार में हिन्दू मध्यवित्त श्रेणी का बोल बाला था। योग्यता में जीत कर हिन्दुओं को वे पा नहीं सकते

थे। इसलिए उन्होंने आवाज़ लगायी कि मुसलमान बाबुओं को तरजीह दी जाय, फिर तो मदु मशुमारी के तारतम्य का सिद्धान्त और पिछड़ी हुई क़ौमों को आगे बढ़ाने का सिद्धान्त और जाने क्या क्या निकला। आज तक इन सिद्धांतों का निकलना जारी है, किन्तु सचमुच यदि देखा जाय कि यह जो कथित हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा है, यह केवल हिन्दू मध्यवित्त श्रेणी तथा मुस्लिम मध्यवित्त श्रेणी का नौकरियों तथा कौंसिल की सीटों के लिए आपसी झगड़ा है, इससे हिन्दू जनता (mass) या मुस्लिम जनता का कोई सम्बन्ध नहीं है। अवश्य यह मध्य तथा उच्च श्रेणी के लोग बड़े चालाक होते हैं, उनकी आंख तो कहीं और है, किन्तु जनता की सहानुभूति का उद्रेक करने के लिए वे कहीं मसजिद के सामने बाजा, शहीदगंज, गोरक्षा, आरती आदि जो बातें उनकी मांगों तथा उद्देश्यों से कोई सम्बन्ध नहीं रखतीं, छेड़ देते हैं। एक किसान को इससे क्या कि एक हिन्दू आई० सी० एस० कम हो, या एक मुसलमान आई० सी० एस० कम हो, न वह होगा, न उसका लड़का या पोता होगा, न उसके समधर्मी के होने से उसको कोई लाभ होगा। यह सारा झगड़ा ही मध्यवित्त श्रेणी का झगड़ा है।

लीग का जन्म

९ नवम्बर १९०६ के दिन नवाब सलीमुल्ला ख़ां ने प्रतिष्ठित उच्च श्रेणी के मुसलमानों की सलाह से एक गश्ती चिट्ठी भेजी, जिसमें "हिन्दुस्तान के मुसलमानों की एक राजनैतिक संस्था संगठित करने" की तरफ़ दृष्टि आकर्षित की गयी। इसी उद्देश्य को रख कर अखिल-भारतीय-मुस्लिम एजुकेशनल-कानफ़रेन्स की सालाना बैठक बुलाने के लिए कहा गया। तदनुसार ३० दिसम्बर १९०६ को हिन्दुस्तान के विख्यात मुसलमानों की सभा ढाके में हुई, और यहीं नवाब बक़ारुल्मुल्क के सभापतित्व में अखिल-भारतीय-मुस्लिम-लीग क़ायम की गयी। उसके उद्देश्य यों थे—

(१) हिन्दुस्तान के मुसलमानों के दिल में ब्रिटिश सरकार के प्रति "वफ़ादारान ख़्यालात" (राजभक्ति के भाव) उत्पन्न करना, और सरकार की कार्रवाई के बारे में जो ग़लतफ़हमियां हो जायँ उन्हें रफ़ा करना।

(२) मुसलमानों के राजनैतिक हक़ों तथा हितों पर निगरानी रखना और उनकी आवश्यकताओं तथा इच्छाओं को नम्रता के साथ सरकार के सामने पेश करना।

(३) लीग के दूसरे उद्देश्यों को नुक़सान पहुंचाए बग़ैर हिन्दुस्तान के मुसलमानों में दूसरी जातियों के प्रति सद्भाव रखना।

लीग और बङ्गभंग

बंगवासियों से विरोध होने पर, उनकी शक्ति को कम करने के लिए लार्ड कर्ज़न (भारत के वायसराय) ने दिसम्बर सन् १९०३ में ऐलान किया कि कमिश्नरी चटगांव, ढाका और मेमनसिंह को बंगाल प्रांत से अलग करके आसाम में सम्मिलित कर दिया जाय। इसके विरोध में बंगालियों ने हज़ारों जल्से करके और लाखों दस्तख़त करा कर अर्ज़ियाँ सरकार के पास भेजीं और देश में एक ज़बरदस्त आन्दोलन खड़ा कर दिया। लार्ड कर्ज़न की इस तजवीज़ को उस समय के ढाका के नवाब ख़्वाजा अलीमुल्ला ख़ां साहब ने भी बुरा कहा।

लार्ड कर्ज़न इस विरोध पर बहुत बिगड़े और फ़रवरी १९०५ में कलकत्ता यूनिवर्सिटी के जल्से में हिंदुस्तानियों के विषय में कहा कि वे सच्चे नहीं होते। इस पर बंगालियों ने एक तूफ़ान सा खड़ा कर दिया और ११ मार्च सन् १९०५ को एक बड़ा भारी जलसा करके उनकी और उनकी पालिसी की निन्दा की। इस पर लार्ड कर्ज़न बेहद बिगड़े और ढाका पहुँच कर एक आम जलसा किया और मुसलमानों को सम्बोधित करके कहा कि बंगाल के बटवारे से उनका

आशय यह न था कि बंगाल के सरकार के भार को कम किया जाय किंतु उसे मुसलमानी सूबा बनाना था जिसमें मुसलमानों का आंतक रहे।

आख़िर १६ अक्टूबर सन् १९०५ को बंगाल की तक़सीम का ऐलान हो गया। इससे विरोधी बंगालियों ने पूर्णरीति से विदेशी सामान का बायकाट किया।

सन् १९०६ के लीग के अधिवेशन में नवाब वक़ारुल्मुल्क मंत्री और नवाब मुहसिनुल्मुल्क उपमंत्री नियुक्त हुए। चार प्रस्ताव पास हुए, उसमें एक यह भी था कि बंगभंग मुसलमानों के हक़ में अच्छा है और जो लोग इसके विरुद्ध आन्दोलन उठाते हैं। वे बेजा करते हैं और उनका आन्दोलन मुसलमानों को नुक़सान पहुँचाने वाला है। भारतवर्ष में एक तरह से जन-आन्दोलन का सूत्रपात बंगभंग आन्दोलन से ही होता है, और मुसलिम लीग इसके विरुद्ध थी, यहाँ तक कि लीग के १९०८ के अधिवेशन में यह तजवीज़ पास की कि काँग्रेस ने जो बंगभंग विरोध में प्रस्ताव पास किया है, वह स्वीकृति के योग्य नहीं है। मुस्लिम लीग का इस प्रकार शुरू से ही रवैया राष्ट्रीय आन्दोलन के विरुद्ध था। इसके बाद सन् १० तक इसके चार अधिवेशन हुए, जिनमें कोई ख़ास बात नहीं हुई।

बंगभंग के संबंध में देश का विरोध बहुत बढ़ गया था। अतः जब दिसम्बर सन् १९११ में शाही दरबार हुआ तो बंगभंग को रद्द करने का ऐलान किया गया, इस पर लीगी लोग बहुत असन्तुष्ट हुए। १९१२ में लीग की सालाना बैठक नवाब सलीमुल्ला ख़ाँ के सभपतित्व में ढाके में हुई। इसमें नवाब साहब ने अपने अभिभाषण में "हिंदुओं की शोरिशों, और सरकार की बेमुरव्वतियों" का बड़े ज़ोरदार शब्दों में चित्र खींचा। हिज़ हाईनेस आग़ा ख़ाँ इस प्रकार सरकार को बेमुरव्वत कहने को भी तैयार न थे, उनका दृष्टिकोण यह

था कि जब सरकार ने किया था तब ठीक ही होगा। इस पर मौलाना शिबली ने उन्हें इस प्रकार फटकारा—"हिज़ हाइनेस सर आग़ा ख़ाँ को हम ज़रूर बदगुमानी की नज़र से देखते हैं, इसलिए नहीं कि उनका कोई प्राइवेट फ़ेल (कृत्य) हमको पसंद नहीं, लेकिन इसलिए कि उनके राजनैतिक विचार संगत नहीं मालूम होते थे।

लीग के उद्देश्यों में परिवर्त्तन

२२, २३ मार्च सन् १९१३ को लीग का अधिवेशन सर मुहम्मद शफ़ी के सभापतित्व में लखनऊ में हुआ। इस अधिवेशन में लीग के उद्देश्यों में तबदीली की गयी, जिनमें "मुसलमानों में ब्रिटिश साम्राज्य की वफ़ादारी के ख़यालों का प्रचार, मुसलमानों के राजनैतिक अधिकार की रक्षा तथा ब्रिटेन की अधीनता में सेल्फ़ गवर्नमेंट प्राप्त करना" मुख्य थे।

लखनऊ पैक्ट

इसके बाद वार्षिक अधिवेशन होते रहे, किन्तु कोई ख़ास बात न हुई। केवल बम्बई के इजलास में चुनाव सम्बन्धी निम्न-लिखित बातें स्वीकृत हुई जो लखनऊ पैक्ट सन् १९१६ के नाम से मशहूर हुई :—

केन्द्रीय असेम्बली में ४/९ निर्वाचित सदस्य हों जिनमें १/३ मुसलमान। प्रान्तीय कौन्सिलों में ४/५ निर्वाचित सदस्य हों और १/५ नामज़द। मुसलिम अल्पसंख्यकों के चुनाव बाक़ी रहे और प्रतिनिधित्व की संख्या भिन्न २ सूबों में नियत कर दी गयी।

लीग के बुरे दिन

१९१८ में लीग की बैठक दिल्ली में हुई, इसके स्वागताध्यक्ष डा० अन्सारी थे, १९१७ में ये ही जाकर कांग्रेस के सभापति हुए। १९२० में ये मुसलिम लीग के सभापति हुए थे। लीग की १९२१ की

बैठक बहुत ही महत्त्व पूर्ण हुई, कहना चाहिए कि लीग का जीवन यहाँ कुछ ख़तरे में पड़ गया। यह इजलास मौलाना फ़ज़लुल हसन के सभापतित्व में अहमदाबाद में हुआ, इस बैठक में महात्मा जी, विजय-राघवाचार्य, मिस्टर पटेल, हकीम अजमल ख़ाँ आदि भी आये थे। देश में बड़ा जोश था, किन्तु लीग में जैसे नवाब वग़ैरह भरे पड़े थे, वे भला क्यों असहयोग का प्रस्ताव पास होने देते, यह प्रस्ताव पास न हो सका। किन्तु मुल्क की तथा मुसलमानों की मांग थी कि असहयोग पास हो, इसलिए जब 'यह प्रस्ताव पास न हुआ तो लीग लोगों की आंखों में गिर गई' और इसकी हेटी हुई।

ख़िलाफ़त का आन्दोलन सारे हिन्दुस्तान में छा गया। ये नवाब लोग जो कि मुसलमानों की भलाई के ठेकेदार बने हुए थे तथा उठते और बैठते इसलाम के नाम पर क़समें खाते थे, इसलाम की इस विश्व-व्यापी विपत्ति के समय के साथ न चलने वाले साबित हुए और घर बैठ रहे। १९२२ में लीग की कोई बैठक ही नहीं हुई। १९२३ के मार्च को लीग की बैठक लखनऊ में ग़ुलाम मुहम्मद भरगिरी की अध्यक्षता में बुलाई गयी, किन्तु कोरम पूरा न होने की वजह से सभा विसर्जित कर दी गयी। हिन्दू-मुस्लिम एका तथा सहयोग की दृष्टि से ये दो तीन साल बहुत ही सफल रहे, ऐसे समय में भला मुस्लिम लीग कैसे पनपती, ख़िलाफ़त आन्दोलन का राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ महात्मा जी ने जो गँठबन्धन किया था उसी का यह नतीजा था किन्तु एका स्थायी न हो सका।

१९२४ की मई में लाहौर में उन मुसलमानों की एक सभा हुई जिन्होंने गत दो-तीन वर्षों में चलने वाले ख़िलाफ़त तथा आज़ादी के आन्दोलन में कोई भाग नहीं लिया था, और हज़ारों की तादाद में जो मुसलमान जेल गये थे, उनसे अलग रहे। इस सभा के सभापति

मिस्टर जिन्ना थे। इस प्रकार लीग की गाड़ी फिर से चल निकली, तब से वह बराबर चल ही रही है।

लीग के दो टुकड़े

दिसम्बर १९२७ में सर मुहम्मद याक़ूब के सभापतित्व में लीग का अधिवेशन कलकत्ते में हुआ, जिसमें साइमन कमीशन के बायकाट का प्रस्ताव पास हुआ। और यह भी तय हुआ कि कांग्रेस के साथ मिल कर एक विधान बनाया जाय, जिसमें मुसलमानों के हक़ की रक्षा हो और सिन्ध अलहदा किया जाय।

इसी वर्ष लीग के पृथक् और सम्मिलित चुनाव के प्रश्न पर मुसलिम लीग में विरोध हो गया। और शफ़ी लीग और जिन्ना लीग के नाम से इसके दो टुकड़े हुए। सर मुहम्मद शफ़ी और मुहम्मद इक़बाल ने पृथक् निर्वाचन का पक्ष लिया, और मि० जिन्ना और अलीबिरादरान ने चन्द शर्त्तों के साथ सम्मिलित चुनाव के प्रतिनिधित्व का पक्ष लिया। परिणाम यह हुआ कि दिसम्बर १९२७ में एक ही तारीख़ में लीग के दो जलसे हुए—शफ़ी लीग का लाहौर में, और जिन्ना लीग का कलकत्ते में।

दोनों लीगों का मेल

सन् १९२८ में लीग का कोई अधिवेशन नहीं हुआ और २८ मार्च १९२९ में मि० मुहम्मद अली जिन्ना के सभापतित्व में दिल्ली में हुआ, जिसमें पृथक् निर्वाचन और मुसलिम लीग की १४ शर्त्तों का ऐलान किया गया। इससे शफ़ी लीग और जिन्ना लीग एक हो गयीं। यहीं से सांप्रदायिक वैमनस्य का दूसरा रूप शुरू होता है। हां, स्वतंत्र विचार वाले मुसलमानों ने अपनी 'मुसलिम नेशनलिस्ट पार्टी अवश्य बनाली—

मि० जिन्ना की १४ शर्तें:—

१—केन्द्र में संघ-शासन हो।

२—प्रांतों में पूर्ण स्वायत्त-शासन हो और सब प्रांतों के अधिकार बराबर हों।

३—सभी धारा-सभाओं में अल्प संख्यकों को अपनी संख्या से ज़्यादा सीटें मिलें, लेकिन किसी प्रांत में बहुसंख्या वाली क़ौम को घटाकर अल्प संख्यक या बराबर न कर दिया जाय।

४—केन्द्रीय धारा-सभा में मुसलमानों को कम से कम एक तिहाई प्रतिनिधित्व मिले।

५—चुनाव का तरीक़ा सांप्रदायिक हो, हाँ, यदि कोई जाति चाहे तो इस अधिकार का त्याग कर सकती है।

६—प्रांतों के विभाजन में कोई ऐसा परिवर्त्तन न किया जाय, जिससे सीमाप्रांत, पंजाब और बंगाल की मुसलिम बहुसंख्या पर कोई असर पड़े।

७—यह कि ज़मीर की पूरी आज़ादी, धार्मिक, शिक्षा-संबंधी-संगठन एवं तंजीम और तबलीग़ की पूरी आज़ादी हो।

८—अगर किसी धर्म के ¾ प्रतिनिधि किसी बिल को अपने धर्म के लिए हानिकारक बतलाएँ, तो वह धारा-सभा में पेश न हो सकेगा।

९—सिन्ध को बम्बई से अलग करके एक स्थायी सूबा बना दिया जाय।

१०—बलूचिस्तान और सीमाप्रांत में और प्रांतों की तरह शासन-सुधार हों।

११—नौकरियों में और लोगों के मुक़ाबले में मुसलमानों को विशेष हिस्सा मिले।

१२—विधान में ऐसी धाराएँ हों, जिनके अनुसार मुसलिम - संस्कृति

तथा शरीयत के अनुसार मुसलमानों के साथ न्याय किया जाय।

१३—किसी भी मंत्रि-मंडल में चाहे वह केन्द्रीय हो या प्रांतीय, कम से कम एक तिहाई मंत्री मुसलमान रहेंगे।

१४—विधान में तब तक कोई परिवर्त्तन न हो सकेगा जब तक कि संघ के तमाम अंग यानी समस्त प्रांत और रियासतें इसे मानने के लिए तैयार न हों।

दिसम्बर सन् १९३० में डा० सर मुहम्मद इक़बाल के सभापतित्व में इलाहाबाद में अधिवेशन हुआ, जिसमें सभापति के भाषण से 'पाकिस्तान' की योजना रक्खी गयी।

गोलमेज़ और लीग

गोलमेज़ कान्फ्रेंस में भेजे गए हिन्दू और मुसलमानों ने अपनी पृथक् पृथक् मांगें रक्खीं। इस पर जब कोई समझौता न हुआ तो १७ अगस्त सन् १९३२ को मि० रेमज़े मेकडानल्ड (उस समय के प्रधान मंत्री) ने साम्प्रदायिक निर्णय दिया।

साम्प्रदायिक-निर्णय

यह फ़ैसला मुसलमानों को पसन्द न आया; क्योंकि बंगाल और पंजाब में उनकी बहुसंख्या है और मनुष्य गणना के हिसाब से कौंसिलों में उन्हें इतनी सीटें मिलेंगी कि वे सब सम्प्रदायों के एक हो जाने पर भी बहु-संख्यक बने रहेंगे, किन्तु ऐसा न हुआ।

बंगाल में मुसलमानों की आबादी २ करोड़ ५४ लाख है, जो तमाम हिन्दुस्तान के मुसलमानों की आबादी के ३७½ फ़ी सदी है और बंगाल की कुल क़ौमों की आबादी का ५३ फ़ी सदी है। लेकिन साम्प्रदायिक-निर्णय में इन्हें केवल ४७½ फ़ी सदी सीटें दी गयीं और उन्हें सम्पूर्ण रूप से यूरोपियनों के ऊपर निर्भर रक्खा। सच बात तो यह है कि इस

निर्णय के अनुसार बंगाल की सरकार को गोरे प्रतिनिधियों पर ही छोड़ दिया गया।

पंजाब में मुसलमान ५५ फ़ी सदी हैं मगर उन्हें ४९ सीटें दी गयीं। साथ ही सम्मिलित चुनाव की थोड़ी सी सीटों में इन्हें भाग्य परीक्षण का मौक़ा दिया। असल में साम्प्रदायिक-निर्णय के अनुसार मुसलमानों को जितना वह मांगते थे, कहीं-कहीं उससे भी ज़्यादा दिया गया; किन्तु इस बात को छिपाने के लिए वे आंदोलन करने लगे कि हमें कुछ नहीं मिला। इस फ़ैसले में एक ख़ास बात यह थी कि सब से पहिले अछूत लोग भी एक पृथक् सम्प्रदाय माने गये।

इस साम्प्रदायिक-निर्णय से मुसलिम लीग संतुष्ट न हुई और उसने अपनी रक्षा के लिए जलसे करने शुरू किये। सन् १९३२ में लीग का अधिवेशन हवड़ा में हुआ और २५ नवम्बर १९३३ को नई देहली में ख़ां बहादुर हाफ़िज़ हिदायत हुसेन के सभापतित्व में हुआ जिसमें तय हुआ कि साम्प्रदायिक निर्णय मान लिया जाय और अल्प संख्यकों के मिनिस्टर नियुक्त किये जाएँ।

वर्त्तमान-परिच्छेद

४ मार्च सन् १९३४ को एक जलसा फिर देहली ही में हुआ जिसमें अब्दुल अज़ीज़ बैरिस्टर सभापतित्व से अलग हो गये और मि० जिन्ना मुसलिम लीग के स्थायी, सभापति नियुक्त हुए। यहीं से मुसलिम लीग का वर्तमान-परिच्छेद शुरू होता है।

मुसलिमलीग-मंत्रि-मंडल

साम्प्रदायिक निर्णय के अनुसार जो नये चुनाव हुए, उसमें बंगाल तथा पंजाब में मुसलमानों का बहुमत हो गया, किन्तु मज़ेदार बात यह है कि बंगाल में मुसलिम लीग को, बंगाल की मुसलिम सीटों की केवल एक चौथाई सीटें मिलीं, पंजाब में तो सर सिकन्दरहयात ख़ां की यूनिनिस्ट

पार्टी का ही बहुमत रहा। अब यही दो प्रांत मुसलिम लीग के प्रांत कहलाते हैं। इस संबंध में और भी एक द्रष्टव्य बात यह है कि मि० फ़ज़लुलहक़ जो इस समय बंगाल के प्रधान मंत्री हैं, वे मुसलिम लीग के टिकट पर चुने तो गये ही नहीं थे, बल्कि उन्होंने तथा उनकी पार्टी ने मुसलिम लीग को बुरी तरह हरा कर चुनाव जीता था। बाद को यही मि० फ़ज़लुलहक़ तथा सर सिकन्दर हयात ख़ां अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए तथा मुसलमानों की धर्मान्धता का फ़ायदा उठा कर हमेशा मंत्री बने रहने के लिए उसी मुसलिम लीग में शामिल हो गये। और अब तो वे मि० जिन्ना के दाएँ और बाएँ हाथ हैं। इस सम्बन्ध में और भी एक ख़ास बात यह है कि सीमा प्रांत में जो कि इन दोनों प्रांतों से कहीं अधिक मुसलिम प्रांत है, लीगी मंत्रि-मंडल क़ायम न हो सका और कांग्रेस-मंत्रि-मंडल क़ायम हुआ। सिन्ध भी एक मुसलिम बहु-संख्या का प्रांत है, जो १९३५ के नये विधान के अनुसार अलग प्रांत बना दिया गया। उसमें भी लीगी-मंत्रिमंडल क़ायम न हो सका।

मुसलिम लीग और कांग्रेस

सन् १९३४ में केन्द्रीय एसेम्बली के चुनाव हुए और नई एसेम्बली में मि० जिन्ना की पार्टी ने कांग्रेस के साथ मिल कर हुकूमत को बार-बार हराया और इस प्रकार दो वर्ष तक मुसलिम लीग और कांग्रेस में ख़ूब मेल रहा।

१९३६ में लीग का वार्षिक अधिवेशन बम्बई में हुआ, जिसमें मुसलिम पार्लिमेंटरी बोर्ड क़ायम हुआ और उसका एक मेनीफ़ेस्टो (घोषणा-पत्र) प्रकाशित हुआ, जिसमें स्पष्ट लिखा था कि—

१—समस्त दमनकारी क़ानून रद्द कर दिये जाएँ।

२—देश की आर्थिक लूट को रोका जाय।

३—मुल्क के ख़र्च के भारी बोझ को घटाया जाय।

४—फ़ौज के ख़र्च घटा कर इसे क़ौमी बनाया जाय।

५—दस्तकारी और उद्योग-धन्धों की उन्नति की जाय।

६—मुद्रा और विनिमय ठीक ढंग पर लाया जाय।

७—किसानों के ऋण को हलका किया जाय।

८—प्रारंभिक शिक्षा मुफ़ की जाय।

९—मुसलमानों के मज़हब, भाषा और लिपि की रक्षा की जाय। और देश में इसके संबंध में जन-मत पैदा किया जाय।

इस घोषणा-पत्र में मुसलमानों ने मुसलमानों की ख़ास मांगों में केवल मज़हब, भाषा की रक्षा और लिपि दर्ज है। इसके बाद देशोन्नति के कार्यों तथा जन साधारण के लाभ के बारे में मुसलिम लीग ने कांग्रेस के प्रोग्राम को कुछ अपनाया था। परिणाम यह हुआ कि एसेम्बली के चुनाव में मुसलिम लीग के उम्मीदवारों को कांग्रेस ने हर जगह मदद दी।

लीग की कांग्रेस से अनबन

१ अप्रैल सन् १९३७ को कांग्रेस ने नये शासनसुधार के विरोध में आम हड़ताल का दिन नियत किया था, किन्तु मि० जिन्ना ने अपनी मर्ज़ी से ऐलान कर दिया कि मुसलमान इस हड़ताल में शामिल न हों। यद्यपि मुसलिम-लीग ख़ुद नये शासनसुधार को ख़राब बता चुकी थी, इस ऐलान से मुसलमानों में विरोध पैदा हो गया और अधिकांश मुसलमानों ने हड़ताल में भाग लिया।

अक्टूबर १९३७ को मि० जिन्ना के सभापतित्व में मुसलिम लीग का वार्षिक अधिवेशन लखऊन में हुआ, जिसमें सबसे ज़्यादा इस बात पर ज़ोर दिया कि लीग का संदेश मुसलमान जनता तक पहुँचा दिया जाय और इन्हें कांग्रेस से अलग रक्खा जाय।

दिसम्बर सन् १९३८ में पटना में मि० जिन्ना के सभापतित्व

में लीग का फिर अधिवेशन हुआ जिसमें सत्याग्रह का प्रस्ताव इस रूप में आया कि "सिर्फ़ पंजाब और बंगाल और सी० पी० में मुसलिम-लीग की वर्किंग कमेटी जब और जहां मुनासिब समझे, सत्याग्रह की कार्य-वाही की आज्ञा दे सकती है, साथ ही यह भी ऐलान हो गया कि चाहे हमारा ध्येय कुछ भी हो, लेकिन हम सत्याग्रह की किसी अवैध कार्यवाही को जायज़ नहीं रख सकते।"

मुसलिम लीग राजनैतिक संस्था है या सांप्रदायिक ?

'मुसलिम लीग' नाम ही यह प्रकट करता है कि यह दल सांप्रदायिक आधार पर खड़ा किया गया है; क्योंकि प्रत्येक देश में राजनैतिक दल का निर्माण राजनैतिक एवं आर्थिक सिद्धांतो के कार्य-क्रमों के अनुसार होता है।

अक्टूबर १९३७ में जो लखनऊ में मुसलिम लीग का वार्षिक अधिवेशन हुआ था उसके अध्यक्षपद से मि० जिन्ना ने कहा था—"मुसलिम लीग भारत में पूर्ण राष्ट्रीय-लोक-तंत्रवादी स्वायत्त-सरकार की स्थापना चाहती है।" किन्तु आगे इसी भाषण में कहा:—"अखिल-भारतीय, मुसलिम-लीग नियम पूर्वक मुसलमानों के हितों एवं अधि-कारों की रक्षा के लिए है। यह उसका सिद्धांत है इससे स्पष्ट है कि वह राजनैतिक से अधिक सांप्रदायिक संस्था है।

मि० जिन्ना की नई शर्त्तें

जब से देश को १९३५ के नये सुधार मिले, तभी से मुसलिम लीग के मुँह में पानी भर आया और अपने अधिकारों के बढ़ाने के साथ साथ कांग्रेस को हर तरीक़े से नीचा दिखाने की कोशिश करती रही। यद्यपि कांग्रेस ने समय-समय पर समझौते की बहुत कोशिशें कीं, लेकिन सब बेकार हुईं:—मि० जिन्ना ने १४ शर्त्तों के अतिरिक्त ७ शर्त्तें और पेश की हैं, जो इस प्रकार हैं:—

समझौते की ७ नई शर्तें:—

१—मुसलिम लीग का अस्तित्व अलग स्वीकार किया जाय, उसे कांग्रेस के साथ मिलने की आज़ादी रहेगी।

२—मुसलमानों को काँग्रेस में शामिल करने की जो लहर शुरू की गयी है, वह बंद कर दी जाय और मुसलमानों को कांग्रेस का सदस्य न रहने दिया जाय।

३—एसेम्बली में सांप्रदायिक प्रश्नों पर मुसलिम लीग को कांग्रेस के साथ मिलने न मिलने का अधिकार रहेगा।

४—लोकल बाडीज़ के चुनाव हर अवस्था में अलग हों। संयुक्त चुनाव कहीं भी जारी न किया जाय।

५—कांग्रेस अपने तिरंगे झंडे के साथ-साथ मुसलिम-लीगी झंडे को भी फहराया करे, ये दोनों इकट्ठे रहें।

६—कांग्रेस की सभाओं में "वन्दे मातरम्" गीत न गाया जाया करे।

७—कांग्रेस की ओर से हिन्दी के पक्ष में जो आन्दोलन किया जाता है, वह बन्द कर दिया जाय। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से कांग्रेस का कोई संबंध न रहे। वह उर्दू का प्रचार करे।

युद्ध और मुसलिम-लीग

पोलैंड के मामले में जर्मनी और ब्रिटेन से युद्ध छिड़ गया और इस बिना पर कि अंग्रेज़ सरकार कहती थी कि कमज़ोर राष्ट्रों की स्वतंत्रता की रक्षा की जाय। साथ ही बिना प्रान्तीय-सरकारों की स्वीकृति के हिन्दुस्तान से युद्ध में हर प्रकार की सहायता तथा सहयोग लेने का भी निश्चय कर लिया। कांग्रेस ने इसी अवसर पर युद्ध-घोषणा के उद्देश्यों को भी स्पष्ट करने के लिए कहा। परिणाम स्वरूप इस पर कोई ढङ्ग का उत्तर न मिलने पर भारतवर्ष के आठों प्रांतों के मंत्रि-मंडलों ने इस्तीफ़े पेश कर दिये। किन्तु मुस्लिम-लीग ने गवर्नमेंट

से सहयोग करने का वचन दिया और कांग्रेस-मंत्रि-मंडलों के इस्तीफ़ों पर हर्ष प्रकट किया। इस सम्बन्ध में अखिल-भारतवर्षीयमुसलिम लीग की वर्किंग कमेटी ने गवर्नमेंट से सहयोग करने के लिए जो प्रस्ताव ता० १८ सितम्बर ३९ को नई दिल्ली में पास किया था, उसका सारांश इस प्रकार है :—

भारत में मुसलमानों का पिछली कई दशाब्दियों से विचित्र और विशेष स्थान रहा है। उन लोगों ने यह आशा की थी कि देश के राष्ट्रीय जीवन और शासन में उन्हें सम्मान पूर्ण स्थान मिलेगा, जिसमें वे बहुसंख्यक संप्रदाय के साथ अपने धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा आर्थिक अधिकारों की पूर्ण रक्षा का विश्वास रखते हुए बराबर से भाग लेंगे, परन्तु कथित जनसत्तात्मक पार्लमेंटरी शासन प्रणाली पर आधारित प्रांतीय-विधान जारी होने के बाद से जो घटनाये घटी है और पिछले वर्षों में जो अनुभव हुए हैं, उन्हें देखते हुए इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि मुस्लिम अल्पमत संप्रदाय पर हिंदू बहुमत संप्रदाय का प्रभुत्व स्थायी रूप से हो गया है और कांग्रेस सरकारों के प्रांतों में मुसलमानों का जीवन, स्वतंत्रता, सम्पत्ति और इज़्ज़त ख़तरे में पड़ गयी है।

प्रस्ताव में आगे कहा गया कि लीग की वर्किंग-कमेटी को पोलैंड, इंगलैंड तथा फ्रांस से गहरी सहानुभूति है; पर कमेटी यह समझती है कि ब्रिटेन को इस संकट के समय में मुसलमानों का असली और ठोस सहयोग तथा समर्थन सफलतापूर्वक नहीं मिल सकता, अगर सम्राट् की सरकार और वायसराय मुसलमानों के साथ कांग्रेस द्वारा शासित प्रांतों में न्याय नहीं करा सकते। कमेटी सम्राट् की सरकार और वायसराय से अनुरोध करती है कि वे गवर्ननरों को यह आदेश कर दें कि यदि किसी प्रांत का मंत्रि-मण्डल मुसलमानों के साथ न्याय कराने में असमर्थ है, तो गवर्नर लोग अपने विशेष अधिकारों का

उपयोग करें। कमेटी का आगे कहना है कि भारत की विधान-सम्बन्धी उन्नति के प्रश्न की बाबत तब तक कोई घोषणा सम्राट् की सरकार न करे, जब तक कि अखिल-भारतीय-मुस्लिम-लीग की स्वीकृति न ले ली जाय और तब तक कोई विधान अन्तिम रूप से तैयार न किया जाय।

मुसलिम-लीग की वर्किंग कमेटी ने जो यह प्रस्ताव पास किया, इसके पढ़ने से स्पष्ट मालूम हो जायगा कि यद्यपि इसके शब्द बड़े ही साहसपूर्ण हैं, किन्तु यह प्रस्ताव केवल इसी डर से पास किया गया था कि कहीं ब्रिटिश सरकार गांधी जी से कोई समझौता न कर ले और मुसलिम लीग ताकती ही रह जाय।

इस प्रस्ताव पर बहुत से मुसलमानों ने निराशा प्रकट की, और इस सम्बन्ध में केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य मि० आशफ़ अली ने कहा—अगर मुसलिम-लीग का कांग्रेस से मतभेद है तो यह मतभेद तीसरे दल की सहायता लिए बग़ैर आसानी से मैत्री-पूर्ण ढंग से दूर किया जा सकता है। मुसलिम लीग के समूचे वक्तव्य में असहायावस्था, अनिश्चय और झुंझलाहट की भावना व्याप्त है। वक्तव्य मुसलिम लीग के इस दावे से असंगत है कि वह ९ करोड़ मुसलमानों के सम्मान और हितों की संरक्षिणी है। अगर मुसलिम-लीग की कार्य-समिति अवसर के अनुरूप वीर और आत्म-निर्भर भारतीय मुसलमानों के वास्तविक सम्मान सुरक्षित नहीं रख सकती, तब भारतीय मुसलमानों की नौजवान पीढ़ी को, जिसमें साहस है, जो चीज़ों को ठीक दृष्टिकोण से देखती है, स्पष्ट घोषणा कर देनी चाहिए कि वह अपने देश और मानवता की आज़ादी के लिए लड़ने में एक क़दम पीछे नहीं हटेगी।

मि० आसफ़ अली ने अपने वक्तव्य के अंत में कहा है कि बराबर के आदमियों के सहयोग का अपना मूल्य होता है, लेकिन ग़ुलाम लोग

केवल हुक्म बजाते हैं, और उनके लिए 'सहयोग' शब्द का उपयोग करना मज़ाक़ है।

मुक्ति-दिवस

यह पहले ही बताया जा चुका है कि कांग्रेस-मंत्रिमंडलों के इस्तीफ़े पर मुसलिम-लीग के कट्टर नेता ख़ुश हुए थे, किन्तु यह नहीं समझा जा रहा था कि वे सार्वजनिक रूप से इस उपलक्ष्य में एक मुक्ति-दिवस मनायँगे, और उस पर रोशनी, जुलूस, सभाएँ होंगी, जिनमें हर एक मुसलमान से ईश्वर को इसलिए धन्यवाद दिलाया जायगा कि "उन्होंने मुसलमानों के ऊपर अशेष कृपा कर कांग्रेस-मंत्रिमंडलों से जो कि उनकी सभ्यता, संस्कृति, भाषा सबका विनाश कर रहे थे, मुक्ति दिलायी।"

इस मुक्ति-दिवस मनाने के निर्णय से हिंदुस्तान के सारे मुसलमान समाज में खलबली मच गयी और सर मुहम्मद उस्मान, लीग-पार्टी के प्रमुख सदस्य ख़ान बहादुर शेख़ मुहम्मद जान, तथा बहुत से ऐसे मुसलमानों ने—जिनका कांग्रेस से कोई संबंध नहीं था—इसकी निंदा की। केवल यही नहीं, राष्ट्रीय विचार की सभी मुसलमान संस्थाओं ने तय किया कि यदि मि० जिन्ना इस बेजा प्रदर्शन से बाज़ न आयँ, तो उसी दिन इस प्रस्ताव के विरोध में प्रस्ताव पास करते हुए सभाएँ की जायँ। तदनुसार नियत २२ दिसम्बर को मुसलमानों की दोनों प्रकार की सभाएँ हुईं।

लीग-कांग्रेस-वार्त्ताभंग

इसी मुक्ति दिवस मनाने के परिणाम-स्वरूप पं० जवाहरलाल जी और मि० जिन्ना में जो बात चीत होने वाली थी, वह भंग हो गयी। इस बात चीत का प्रारंभ इस प्रकार हुआ था—

कुछ महीने पूर्व वायसराय महोदय ने भारत के विभिन्न दलों के

नेताओं को वर्त्तमान परिस्थिति पर बात-चीत करने के लिए दिल्ली में बुलाया था, उस समय श्री गांधी जी, मि० जिन्ना तथा पं० जवाहर-लाल नेहरू भी उपस्थित हुए थे। तीनों महानुभावों में सांप्रदायिक समस्या के संबंध में कुछ बातें हुई थीं और अंत में श्री नेहरू और मि० जिन्ना के बीच में यह तय हुआ था कि वे इस समस्या के विविध पहलुओं पर विचार करने के लिए फिर कभी एकत्रित होंगे। मुक्ति दिवस के ऐलान के फलस्वरूप यह एकत्रित होना कांग्रेस की दृष्टि में व्यर्थ हो गया।

लीग मुसलमानों की प्रतिनिधि संस्था है ?

इसके पहले भी मि० मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में, मुसलिम लीग से कांग्रेस ने कितनी ही बार समझौते के प्रयत्न किये थे। जिस आधार पर वार्त्ताभंग हो गयी, वह यह है कि मुसलिम लीग कहती है कि कांग्रेस, लीग को भारत के समस्त मुसलमानों की प्रतिनिधि संस्था माने। कांग्रेस ने इसे मानने से इन्कार किया। भारत के विभिन्न-प्रांतों की व्यवस्थापिका सभाओं में, विभिन्न दलों के टिकट पर चुने गए व्यक्तियों को प्रतिनिधित्व का अधिकार है, जिनमें मोमिन, शिया, अहरारपार्टी हैं, जो कि हमेशा मुसलिम लीग का विरोध करती रहती हैं। इस दृष्टि से भी लीग का भारत के समस्त मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने का दावा झूठा प्रमाणित हो जाता है। अभी हाल में विभिन्न प्रांतीय-व्यवस्थापिका सभाओं में समस्त मुसलिम सीटों तथा मुसलिम लीग के सदस्यों की संख्या की एक तालिका प्रकाशित हुई है, जो यों है:—

प्रांत	मुसलिम सीट	लीग को प्राप्त
मद्रास	२५	१०
बम्बई	२९	२०

प्रांत	मुसलिम सीट	लीग को प्राप्त
बंगाल	११७	३९
युक्तप्रांत	६४	२७
पंजाब	९४	१
बिहार	३९	०
मध्यप्रांत	१४	०
आसाम	३४	९
सीमाप्रांत	३६	०
उड़ीसा	४	०
सिन्ध	३३	३
	४८९	१०९

मि० जिन्ना का नया सिद्धान्त

इसी ज़माने में मि० जिन्ना ने एक बहुत ही ख़तरनाक सिद्धांत का प्रतिपादन किया, इसका आशय यह है कि भारतवर्ष में लोकसत्तात्मक शासन होना ही नहीं चाहिए, यह अपने कहे हुए पुराने सिद्धान्तों के भी विरुद्ध है।

उनका एक लेख 'मानचेस्टर गार्जियन' में प्रकाशित हुआ जिसका आशय इस प्रकार है :—

"एक साधारण अंगरेज़ को पूर्ण-रूप से यह समझाना कठिन है कि आज मुसलमानों के सामने क्या परिस्थति मौजूद है।

सदा से प्रजातन्त्र से भय

मुसलमानों को सदा से भारत में प्रतिनिधि-शासन-प्रणाली तथा उससे भी अधिक लोकसत्तात्मक शासन पद्धति से भय व आशंकाएं रही हैं। १९०८ ई० के, मार्लेमिन्टो शासन-सुधार तथा १९१६ ई० के

महत्वपूर्ण हिन्दू-मुसलिम समझौते के समय से जो लखनऊ में हुआ था, हम पृथक् निर्वाचन, वैधानिक संरक्षण तथा अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था पर ज़ोर देते रहे हैं। इनसे यह साफ़ ज़ाहिर है कि हमें आशंकाएं थीं। किंतु जब से नए प्रान्तीय विधानों को कार्यान्वित किया गया है, यह निर्विवाद रूप से प्रमाणित हो गया है कि कांग्रेस का एकमात्र ध्येय देश की अन्य सभी संस्थाओं को नष्ट कर निकृष्टतम प्रकार की फ़ासिस्ट या अधिकारपूर्ण संस्था की भांति अपनी प्रभुता स्थापित करना है।

हिन्दू-राज्य

इसलिए मेरी राय में लोकसत्ता का केवल यह अर्थ हो सकता है कि सारे भारत में हिन्दू-राज्य स्थापित हो जाय। इस स्थिति को मुसलमान कभी स्वीकार नहीं कर सकते। ब्रिटिश सरकार को किसी ऐसी घोषणा का वादा नहीं करना चाहिए, जिसके लिए मुसलिम-लीग की राय पहले से न ले ली गयी हो।

ग्रान्ड मुफ़्ती के भतीजे मूसा हुसेनी का वक्तव्य

अरब नेता मूसा हुसेनी ने जो ग्रान्ड मुफ़्ती के भतीजे तथा अरब सर्वोच्च कमेटी के सदस्य जमाल हुसेनी के चचेरे भाई हैं, मि० जिन्ना के वक्तव्य पर इस आशय का एक वक्तव्य दिया है :—

अगर भारत वास्तविक स्वायत्त-शासन प्राप्त कर ले तो सीरिया, पैलेस्टाइन, ट्रान्सजोर्डन ही नहीं, संपूर्ण अरब-जगत् के लोगों के स्वाधीनता-आन्दोलन को बड़ा बल प्राप्त होगा। यदि भारत स्वतन्त्र हो जायगा तो हमारी वैध मांगें और ज़ोरदार हो जायँगी।

आरोपों को आगे रखने के लिए मि० जिन्ना ने जो समय चुना है वह ठीक नहीं है, उनकी यह ग़लती ख़तरनाक है। अगर आरोप

मनगढ़ंत हैं तो भारत की एकता और स्वाधीनता को ख़तरे में डाल कर मुसलिम देशों का बहुत अहित किया जा रहा है।

महात्मा जी का वक्तव्य

इस समय महात्मा गांधी ने "हरिजन पत्र" में हिन्दू मुस्लिम एकता पर निम्न आशय का लेख लिखा—

"हिंदू मुस्लिम एकता का मतलब साम्प्रदायिक एकता का है। ऐसा मालूम होता है कि हमारे सामने कोई समझौता नहीं है। मि० जिन्ना मुसलमानों के स्वार्थों की रक्षा के लिए अंग्रेज़ों से संरक्षण चाहते हैं। कांग्रेस उनके लिए चाहे जो कुछ भी करे, पर मि० जिन्ना उससे संतुष्ट न होंगे। वह स्वभावतः अपने दृष्टिकोण से सदा ही इतना अधिक माँगेंगे, जितना कि अंग्रेज़ उन्हें दे नहीं सकते, और न ज़िम्मेंदारी ले सकते हैं। इसलिए मुसलिम लीग की माँगों की कोई सीमा नहीं हो सकती। × × ×

कांग्रेस को चाहिए कि वह कांग्रेस - वादियों के निर्देश के लिए अपनी नीति चलावे, और इसकी परवाह न करे कि वे किस सम्प्रदाय के हैं। यदि मुसलिम लीग अंग्रेज़ों के द्वारा उन सब चीज़ों को प्राप्त करले, जो वह चाहती है, तो इसमें कांग्रेस की उससे कोई लड़ाई न होगी। जो संस्था (कांग्रेस) ब्रिटिश शक्ति से लड़ रही है, वह मुसलमानों से लड़ कर अपने को कभी ग़लती की तरफ़ न ले जायगी।

मुसलिम लीग का एकांगी रुख़

अब तक का इतिहास पढ़ने से पता लगता है कि मुसलिम लीग का रुख़ केवल साम्प्रदायिकता ही रहा है। इस साम्प्रदायिकता के ही कारण गत १५ वर्षों में स्थान-स्थान पर इतने हिन्दू-मुसलिम झगड़े हुए, जिसने कि हिन्दू- मुसलिम-ऐक्य की जड़ को ही खोखला कर दिया और जो कि

मुसलमानों के ८०० वर्ष के इतिहास में एक अनोखी और नई चीज़ है। इसका एक मात्र कारण मुसलिम लीग की 'मुसलमानों की रक्षा' के नाम पर साम्प्रदायिकता का प्रचार ही है। अभी हाल में मि० जिन्ना ने कहा था कि "भारत एक राष्ट्र नहीं है, एक देश भी नहीं है। यह तो एक छोटा सा भूखंड है, और इसमें हिन्दू-मुसलमान दो पृथक् राष्ट्र हैं।"

इससे साफ ज़ाहिर है कि मि० जिन्ना भारतवर्ष में हिन्दू और मुसलिम दो राष्ट्र अलग-अलग क़ायम करना चाहते हैं और शायद उनका मतलब उस पाकिस्तानी योजना से है जिसका समय-सयय पर मुसलिम लीडरों ने बखान किया है।

पाकिस्तान

पहले पहल पाकिस्तान की योजना कैंब्रिज विश्व-विद्यालय में पढ़ने वाले एक भारतीय मुसलिम युवक ने बनायी थी, उसका पाकिस्तान पंजाब, अफ़ग़ानिस्तान, काश्मीर और सिन्ध के प्रथम अक्षरों को लेकर बिलोचिस्तान के आख़िरी 'तान' को लेकर बना था, अर्थात् P, A, K, S और Tan; इस तरह पाकिस्तान शब्द बना। इसका अर्थ यह था कि भारत के मुसलमान भारत के पाकिस्तान से लेकर योरोप के तुर्किस्तान तक एक मुसलिम राज्य क़ायम करें।

प्रारम्भ में इस स्कीम पर भारत के मुसलमानों ने विशेष ध्यान नहीं दिया। इसके बाद सन् १९३० के मुसलिम लीग के लखनऊ वाले अधिवेशन में सर इक़बाल ने अपने सभापति पद से दिये गये भाषण में उसका उल्लेख किया और पाकिस्तान बनाने की कोशिश के लिए अपनी अपील भी की। सर फ़ज़लुल हुसैन वग़ैरह ने इसका समर्थन किया और पाकिस्तान बनाने का प्रयत्न होने लगा, साथ ही इस सम्बन्ध में मुसलिम देशों के साथ भी लिखा पढ़ी हुई।

इसी सम्बन्ध में पाकिस्तान नेशनल - कांग्रेस के सभापति मियां अब्दुल हक़ ने एक वक्तव्य दिया था जिसका सारांश इस प्रकार है—

"पंजाब, सीमाप्रदेश, काश्मीर, सिन्ध और बिलोचिस्तान—ये ही देश और मातृभूमि पाकिस्तान है। इन पांच प्रांतों को मिला कर एक अलग संघ - शासन मिलना चाहिए। यह शासन-विधान एक दम नया हो। इसका संचालन पाकिस्तान के रहने वाले ही करें। × × × पाकिस्तान को अखिल-भारतीय-संघ-शासन कभी भी मान्य न होगा।"

इधर तीन-चार वर्षों से इस सम्बन्ध में देश के मुसलमानों में काफ़ी ज़ोर पकड़ा है, यहां तक कि पंजाब तथा हैदराबाद में इस योजना के संचालन के लिए आफ़िस भी खुल गये हैं। हैदराबाद वाली सभा का नाम है, 'मुसलिम-कलचर-सोसायटी' और पंजाब वाली सभा का नाम है 'मुसलिम ब्रदरहुड' 'मुसलिम-कलचर-सोसाइटी' के मन्त्री सैयद अब्दुल लतीफ़ साहब हैं, जिन्हें जनवरी १९३९ के लाहौर वाले मुसलिम लीग के अधिवेशन में पाकिस्तान की पूरी योजना के तैयार करने का काम सौंपा गया था।

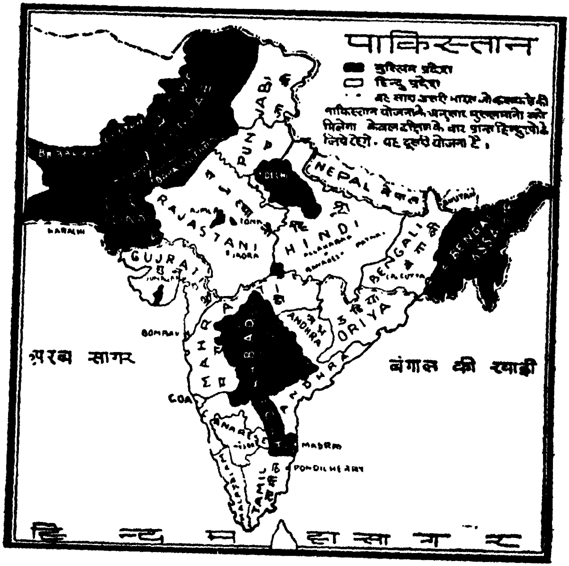
जैसा कि मि० जिन्ना ने कहा है—मि० लतीफ़ साहब का कहना है कि "भारत एक राष्ट्र नहीं है। यहां विभिन्न जातियों के लोग रहते हैं। × × × ख़ास कर इसलाम और हिन्दू धर्म में मौलिक भिन्नता है। अतः इन में मेल नहीं हो सकता। अतएव भारत को २ भागों में बाँट देना ज़रूरी है। इसके अतिरिक्त बहु संख्यक हिन्दुओं से इसलाम को ख़तरा भी है, अतः पाकिस्तान बनाना आवश्यक है।

मि० लतीफ़ साहब की पाकिस्तान योजना

१—उत्तर - पश्चिमी - मुस्लिम - मंडल—इसमें पंजाब, सीमाप्रांत, काश्मीर, ख़ैरपुर, भावलपुर, सिन्ध, बिलोचिस्तान और अफ़ग़ानिस्तान शामिल हैं।

२—देहली-लखनऊ-मुसलिम-मंडल—इस विभाग में संयुक्त-प्रांत और बिहारी मुसलमानों को स्थान मिलेगा।

३—उत्तरी-पूर्वी-मण्डल—इसमें आसाम और बंगाल शामिल हैं।



(चित्र में पाकिस्तान की दो योजनाओं को दिखलाया गया है)

१—काला भाग मुसलिम देश है, शेष में हिन्दू रहेंगे।

२—चित्र के बीच से होकर जो बिन्दुदार रेखा है, इसके उत्तर का समस्त भाग मुसलिम देश रहेगा और विन्ध्याचल से नीचे समुद्र तक हिन्दू देश।

४—दक्षिण-मुसलिम-मण्डल—इसमें हैदराबाद स्टेट और मदरास भी सम्मिलित हैं।

इनके अतिरिक्त काठियावाड़ में जूनागढ़, राजपूताने में अजमेर प्रांत, टोंक और जावरा स्टेट तथा मध्य-भारत में भूपाल स्टेट भी

पाकिस्तान में सम्मिलित समझे जायँगे। आपका यह भी कहना है कि उयुक्त पाकिस्तान के अन्तर्गत जितने हिन्दू तथा सिक्ख राज्य हैं, उनके राजाओं को मुआवज़ा देकर वहां से हटा देना चाहिए और उनके राज्य भी मुसलिम भाग में मिला लेने चाहिएँ। इस प्रकार हिन्दू तथा सिक्ख भी हटा दिये जायँगे, यदि वे चाहें तो केवल अपने तीर्थ-स्थान में रह सकते हैं। आपने अपने पाकिस्तान में हरिजन बौद्ध, जैन, ईसाई तथा पारसियों को रहने की आज्ञा दी है।

इस योजना को सिन्ध की प्रांतीय मुसलिम-लीग ने अपने करांची वाले अधिवेशन में स्वीकृत भी कर लिया है। और "आल-इंडिया-मुसलिम-लीग ने मि० जिन्ना तथा सर सिकन्दर हयात ख़ाँ आदि सात सज्जनों की एक कुमेटी बना दी है जो इस पर विचार करेगी।

किन्तु कुछ मुसलिम नेता इन मण्डलों के विरुद्ध हैं। उनका कहना है कि वे मंडल एक दूसरे से अधिक दूरी पर हैं और प्रथम मंडल को छोड़ कर शेष तीनों मण्डल हिंदुओं की आबादी से घिरे हुए हैं, जिन्हें ख़तरा है। इसलिए कलकत्ते के एक मौलवी महोदय ने एक नई योजना पेश की है, जो इस प्रकार है—

१—बिहार और संयुक्त प्रान्त के हिन्दुओं को निकालकर, सम्पूर्ण उत्तरी भारत मुसलमानों को दे दिया जाय।

२—काश्मीर के महाराज को निज़ाम का राज्य दिया जाय, निज़ाम साहब को काश्मीर का राज्य मिल जायगा।

३—बम्बई, मद्रास, मध्यप्रांत और उड़ीसा हिन्दुओं को दिया जाय।

४—शेष सातों प्रांत—सिन्ध, सीमांत-प्रदेश, पंजाब, संयुक्तप्रांत बिहार, बंगाल और आसाम में मुसलमान आबाद हों।

इस दूसरी योजना का मतलब यह है कि उत्तरी भारत के १२ करोड़ २० लाख हिन्दू अपना घर बार छोड़ कर दक्षिण में चले जायं। और दक्षिण के ५६ लाख मुसलमान उत्तरी भारत में चले जायँ। इसका

अर्थ यह हुआ कि दक्षिण की आबादी का औसत ५७१ मनुष्य हिन्दू प्रतिवर्ग मील और उत्तर की आबादी का औसत १३३ मुसलमान प्रति वर्ग मील है।

स्पष्ट है कि यह सारी योजनाएँ जिन लोगों ने बनायी हैं; वे कभी भी नहीं सोचते कि इसको व्यावहारिक रूप प्राप्त होगा। फिर भी हिन्दू और मुसलमानों के बीच वातावरण ख़राब करने के लिए और अपना उल्लू सीधा करने के लिए ऐसी बहकी-बहकी बातें किया करते हैं।

उपसंहार

इस बार मुसलिम लीगका वार्षिक अधिवेशन ता० २२,२३,२४ मार्च को लाहौर में होगा। आशा की जाती है कि यह अधिवेशन सांप्रदायिकता की दृष्टि से न हो कर केवल राष्ट्रीयता की दृष्टि से ही किया जायगा और आपस की कटुता एवं वैमनस्य के दूर करने का मसला इस ढंग से हल कर लिया जायगा जिससे कि हिंदू, मुसलिम, सिख, ईसाई आदि सब कंधे से कंधा भिड़ा कर देश के स्वराज्य प्राप्ति के काम में लग जायँगे और दुनिया को दिखा देंगे, कि विभिन्न सम्प्रदायों की एकता भी कितनी सुदृढ़ और सुसंगठित हो सकती है—

आशा तो बहुत है, किन्तु मि० जिन्ना के रोज़ नये सिद्धांतों से डर लगता है कि वे किसी भी हालत में राष्ट्रीय-दृष्टिकोण से चीज़ों को देखना नहीं चाहेंगे, किन्तु फिर भी इस घोर निराशा में यह आशा है कि अन्य जो राष्ट्रीय मुसलिम संस्थाएँ हैं, उनकी ताक़त दिन पर दिन बढ़ रही है। विशेष कर मौलाना अबुलकलाम आज़ाद के कांग्रेस के राष्ट्रपति चुने जाने पर हमारी इस आशा में और भी चार चांद लग गये हैं।

'क्या सांप्रदायिक भेद से है, ऐक्य मिट सकता अहो!
बनती नहीं क्या एक माला विविधि सुमनों की कहो!!

मोमिन कान्फ्रेंस

मोमिन जमात उन तमाम मुसलमानों की संस्था है, जो मुसलमान होते हुए भी मुसलमानों में हेय समझे जाते थे और जिन्हें दुनिया जुलाहों के नाम से जानती है। इस ऊंच-नीच के सवाल को मिटाने और उनकी उन्नति के वास्ते यह संस्था क़ायम हुई है और संक्षेप में उसका इतिहास इस प्रकार है:—

कपड़ा बिनने वालों का आरम्भिक काल

कपड़ा बिनना ही इन लोगों का प्रारंभिक पेशा था और इन लोगों ने इसमें काफ़ी उन्नति भी की थी। इनके बिने हुए कपड़ों की दूर दूर देशों में अच्छी ख्याति थी। प्रारंभ में ये लोग राजनैतिक मामलों से बिलकुल अलग रह कर इसी में आनन्द से जीवन व्यतीत करते थे।

अठारहवीं शताब्दी में हिंदुस्तान का शासकवर्ग जब अपने भोग-विलास में लिप्त था, देश में ईस्ट-इंडिया-कम्पनी का प्रभाव बढ़ रहा था। वह ज़माना हर क़िस्म की मशीनों के आविष्कार का ज़माना था। उस समय के अंग्रेज़ हाकिम विदेशी वस्तुओं की उन्नति की फ़िक्र में थे। शासक होने की वजह से यहां के बड़े बड़े आदमियों और प्रजा पर प्रभाव था ही, अतः देशी कारीगरी नष्ट होने लगी; ये लोग भी उसके शिकार हुए, यहीं से उनके ह्रास का काल शुरू होता है।

मोमिन-कान्फ़रेंस की बुनियाद

ज़ाहिर है, इस क़ौम का ज़बर्दस्त संगठन है, जो पंचायत के नाम से प्रसिद्ध है, इनके छोटे-बड़े सभी मसले प्रायः इन्हीं पंचायतों द्वारा तै किये जाते हैं। बुद्धिमान् क़ौम इस नतीजे पर पहुँची कि दस्तकारी के साथ-साथ मज़दूरी पेशा में घुसने और इल्म हासिल करने के लिए भी विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए, जिससे क़ौम की कठिनाइयाँ हल हों। नतीजा यह हुआ कि बहुत से लोग ठेकेदारी तथा व्यापार में घुसने लगे, और बहुतों ने सरकारी नौकरी हासिल कर ली। लेकिन जुलाहा होने की वजह से इन्हें समाज में इज़्ज़त और बराबरी का दर्जा न मिला। यहाँ तक कि मुल्लाओं ने बहावी, शिया, सुन्नी वग़ैरह जमात के झगड़ों में इन्हें फँसा दिया, जिससे इनकी सुसंगठित समाज के टुकड़े टुकड़े हो गये।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जाति की उन्नति की हर जगह चर्चा होने लगी और अलीहुसेन नामक एक बिहारी सज्जन ने सन् १९०९ में कलकत्ते पहुँच कर एक मोमिन मुसलमानों के स्थायी-संगठन का कार्य शुरू किया। फलस्वरूप सन् १९११ में 'तारीख़ मिनवाल' नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिससे शिक्षित लोगों के दिमाग़ से यह बात निकल गयी कि "जात-पांत की वजह से यह क़ौम नीच है"। यहीं से इनके पुनः संगठन और उत्थान का युग शुरू होता है।

संस्था का जन्म

कुछ जाति के सुधारकों ने सन् १९१३ में, कलकत्ते में "अंजुमन-इसलाह" नामक एक जमात क़ायम की, जिसने पुस्तकालय, डिबेटिंग-क्लब, स्वयं-सेवक-दल तथा रात्रिपाठशालाएँ खोलीं; इसके बाद कलकत्ते के ताँती बाग़ में सन् १९१५ ई० में 'जमैयतुल मोमिन' नामक संस्था

क़ायम हुई और यही इनकी हिन्दुस्तान में पहली जमात कही जाती है।

संस्था के कार्य

इस संस्था ने 'अलमोमिन' नामक हस्तलिखित अख़बार निकाला जिसमें संस्था की कार्यवाही छपने लगी। धीरे-धीरे संस्था का कार्य बढ़ने लगा। सन् १९२० में जब महात्मा गांधी ने असहयोग-आन्दोलन तथा स्वदेशी प्रचार का कार्य शुरू किया, तो इन लोगों ने भी उसमें भाग लिया। इस प्रकार देश की राजनीति में भी भाग लेने का इनका कार्य शुरू होगया। स्वदेशी प्रचार से उस समय जमात के जुलाहों को काफ़ी लाभ हुआ था।

सन् १९२३ में कलकत्ते से 'अलमोमिन' नाम का एक मासिक पत्र निकला। इसके बाद सन् १९२५ में कलकत्ते में, तथा अलीगढ़ में सूबा कानफ़रेन्स हुई। इसी बीच में सभा की तरफ़ से कलकत्ता और बिहार तथा यू० पी० के बहुत से शहर और क़स्बों में सभा की ओर से मदरसे तथा पुस्तकालय स्थापित किये गये। बनारस से 'तर्जुमान मेमिन अनसार' नाम से एक मासिक-पत्र भी निकला और बिहार से 'अलइकराम, नामक अर्ध-मासिक-पत्र निकाला गया। स्पष्ट है जाति की उत्तरोत्तर जाग्रति होने लगी।

सन् १९२६ में मोमिन-कांफ्रेंस कलकत्ता में हुई। इसी मौक़े पर इस जमात के कर्मचारियों ने 'आल-इंडिया - जमैयतुल - मोमनीन' नाम से पूरे हिंदुस्तान के प्रतिनिधियों की एक कांफ्रेंस की नींव डाली जिसका पहला अधिवेशन १९२७ में "आल-इंडिया-मेमिन-कांफ्रेंस" के नाम से कलकत्ता में हुआ, सभापति अब्दुलमजीद एम० ए० वकील, बनारस थे। दूसरा अधिवेशन १९२९ में इलाहाबाद में हुआ। इसके बाद सैकड़ों गांवों और क़स्बों में ये सभाएँ क़ायम हो गयीं और

उनके सालाना जलसे होने लगे। इसके बाद ही 'अलमोमिन" नामक पत्र बंद हुआ। इसके बाद तीसरा अधिवेशन दिल्ली में हुआ और चौथा सन् १९३१ में शेख़ मुर्तजा हुसेन साहब के सभापतित्व में लहौर में हुआ।

यह अधिवेशन अन्य अधिवेशनों से किसी अंश में महत्वपूर्ण रहा। यह जमात अब तक तो अपना संगठन, तालीम, उद्योग और व्यापार की उन्नति का ही ध्यान रखती थी, लेकिन अब देखा गया कि देश की तमाम जमातें राजनीति में हिस्सा ले रही हैं, तो इन्होंने भी 'राजनीति में भाग लेना' अपने उद्देश्यों में सम्मिलित कर लिया। लेकिन यह क़ैद लगा दी कि यह संस्था अवैध आंदोलन से अलग रहेगी। साथ ही जमात के धन से एक अख़बार निकालना तथा वैतनिक-कर्म-चारियों की नियुक्त भी की गयी।

गया के अधिवेशन के बाद इनके बहुत से मेम्बरान म्युनिसिपैलिटी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और टाउन एरिया के मेंबर तथा चेयरमैन आदि चुने गये। सन् १९३६ में स्वदेशी कारीगरी की नुमायश और आल-इंडिया-मोमिन-कांन्फ़रेंस का छठा अधिवेशन कानपुर में हुआ और मोमिन कांन्फ़रेंस का मुख पत्र "मोमिन गज़ट" साप्ताहिक निकलने लगा।

सातवां अधिवेशन अक्टूबर १९३७ में फिर कानपुर में हुआ, जिसमें सत्तर-पिचहत्तर हज़ार मोमिन अंसार और कई हज़ार स्त्रियां सम्मिलित हुईं। एक प्रकार से इसे आदर्श जागृति कहना चाहिए।

• आल-इंडिया-मोमिन-कांफ्रेंस का ७ वां अधिवेशन, मि० मुहम्मद ज़हीरुद्दीन ऐडवोकेट, अम्बाला के सभापतित्व में गोरखपुर में हुआ जिसके साथ देशी कारीगरी की नुमाइश भी हुई। इस अधिवेशन में ख़ास बात यह तै की गयी कि मुस्लिम-लीग इनका प्रतिनिधित्व नहीं

करती साथ ही विधान - निर्मात्री - परिषद् की मांग तथा उसका समर्थन किया गया।

इस जमात की आबादी पूरे भारत वर्ष में तीन करोड़ है, जो तमाम मुसलमानों की आबादी के आधे से कुछ ही कम है। प्रसन्नता की बात है कि अब इसका दृष्टिकोण राजनैतिक होता जा रहा है। इनकी यह अखिल-भारतवर्षीय-संस्था है, जिसके अन्तर्गत कई सौ क़सबाती, देहाती, शहराती और डिस्ट्रिक्ट कमेटियां हैं तथा बंगाल, बिहार, यू० पी०, पंजाब, देहली, सी० पी०, बम्बई और बर्मा में प्रान्तीय शाखाएँ हैं, जिनके वार्षिक अधिवेशन और उत्सव होते रहते हैं।

विधान

१—प्रत्येक बालिग़ मोमिन स्त्री, पुरुष इस संस्था का मेम्बर हो सकता है, चाहे वह किसी जमात का हो। पहले प्राथमिक मेम्बर बनने की फ़ीस ।) थी, लेकिन सन् १९४० से ‒) कर दी गयी है।

२—मेम्बर बनने के प्रतिज्ञा-पत्र में यह आदेश है कि प्रत्येक मेम्बर हाथ का बिना हुआ कपड़ा इस्तेमाल करेगा।

३—आल इंडिया-मोमिन-कांन्फ्रेंस की समस्त भारतवर्ष में १२० मेम्बरों की कार्य-समिति है और इन्हीं मेम्बरों में से २६ मेम्बरों की एक वर्किंग कमेटी है।

मोमिन जमात का कांग्रेस के प्रति रुख

इस जमात की कांग्रेस के विषय में राय है कि यह जमात किसी एक जाति की नहीं है, बल्कि हिन्दुस्तान भर की राजनैतिक संस्था है और मोमिन जमात इसे आज़ादी के लिए लड़ने वाली संस्था समझती है। इसका यह भी ऐलान है कि कोई मोमिन अकारण ही मुसलिम लीग की तरह, इसका विरोध न करे, परन्तु मत-विभिन्नता

(Difference of opinion) में राय ज़ाहिर करने की स्वतन्त्रता है। मोमिन जमात के कार्य कर्त्ताओं को कांग्रेस में काम करने की भी आज़ादी है।

मोमिन जमात का मुसलिम लीग के प्रति रुख़

"यह संस्था (मुसलिम लीग) अधिकतर अमीरों, ज़मींदारों, ताल्लुक़ेदारों तथा नवाबों की संस्था है और इसका उसूल यह रहा है, और है कि वह मज़हब के नाम पर मुसलिम जनता को भुलावे में रखकर अपना स्वार्थ सिद्ध करती रहती है। वास्तव में इसका उद्देश्य मुसलिम जनता को लाभ पहुँचाना नहीं है।"



शिया-राजनैतिक-कान्फ्रेंस

शिया लोगों का महत्व

शिया मुसलमानों में एक सम्प्रदाय का नाम है। यद्यपि संख्या में इस सम्प्रदाय के लोग कम हैं, फिर भी ये संख्या से हमेशा अधिक महत्व रखते रहे हैं। जिस समय मुसलमान-काल का अन्त हो रहा था, उस समय न केवल शियाओं के हाथ में बहुत सी सरकारें थी, बल्कि दिल्ली के बादशाहों को बनाने बिगाड़ने का अख़्तियार उन्हीं के हाथ में था। फिर भी शिया-सुन्नियों का झगड़ा बहुत पुराना है, और अक्सर यह मतभेद झगड़े के रूप में फूट ही पड़ता है। शियाओं ने सर सैयद अहमद के सुधार-संबंधी कामों में फिर भी बड़ा साथ दिया। ऐसे शियाओं में स्वर्गीय चिराग़अली का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जिस समय अलीगढ़ कालेज के साथ मसजिद बनाने का सवाल आया, उस समय सर सैयद अहमद का इरादा यह था कि दोनों संप्रदायों के लिए अलग-अलग मसजिदें बनें, किन्तु पटियाला के मंत्री ख़लीफ़ा महमूद हसन ने विरोध किया और दोनों संप्रदायों की एक सम्मिलित मसजिद बन गयी। किन्तु इस मेल के आदर्श का अनुकरण आम तौर पर न हुआ। कानपुर में जब जमैयतुलउलमा का अधिवेशन पहिले-पहल हुआ, तब शिया उलमा बुलाये गये थे, किंतु बाद को देखा गया कि पारलौकिक मामले तो दूर, ऐहिक मामलों

में भी इन दोनों का एक साथ चलना असंभव था। शिक्षा भी एक साथ नहीं हो सकती थी। मानों इस भाव को उत्साहित करते हुए सरकार ने शियाओं का एक अलग कालेज खोल दिया। शिया सुन्नियो के बीच की खाई रोज बढ़ने लगी और शियाओं में एक मज़ेदार ख़याल यह हो गया कि यदि अंग्रेज़ न आते तो वे ख़तम कर दिये गये होते। पहिले के शासन-सुधारों में वोट देने वाले उच्च श्रेणी के होते थे, इसलिए अनेक शिया कौंसिलों में पहुँच जाते थे, किन्तु जब वोटरों की संख्या विस्तृत हो गयी, और कट्टरता का आश्रय लेकर चुनाव में शिया उम्मीदवारों के विरुद्ध प्रचार किया जाने लगा तो सुन्नी वोटरों का वोट न मिलने के कारण शिया उम्मीदवार हारने लगे। इस बात की दो प्रतिक्रियाएँ हुई—एक तो यह कि कुछ शिया कहने लगे कि हिन्दू-मुसलमान सब का सम्मिलित चुनाव हो, उन्हें सुन्नियों से कहीं ज़्यादा एतबार हिन्दुओं पर था; कुछ कहने लगे कि शिया तथा सुन्नियों का अलग-अलग चुनाव हो।

शियाओं की मांग

इन्हीं सब बातों के कारण शियाओं को एक पृथक् राजनैतिक संस्था की ज़रूरत हुई, और १९२९ में शियाओं की पोलिटिकल कान्फ़रेन्स संस्था शुरू हुई, इसका पहिला अधिवेशन १९३० में लखनऊ में राजा नवाब अली ख़ाँ के सभापतित्व में हुआ। इस अधिवेशन में वैध तथा शान्तिपूर्ण उपाय से औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करना शियाओं का उद्देश्य बताया गया। इसमें दो माँगें पेश की गयीं:—

(१) निर्दिष्ट सीटों के साथ संयुक्त-निर्वाचन।

(२) शियाओं के लिए निर्दिष्ट सीटें।

मन्टगोमरी में दूसरे अधिवेशन में ये प्रस्ताव पास हुए—

(क) स्वदेशी तथा खद्दर का समर्थन।

(ख) दंगों पर अफ़सोस।

(ग) गांधी, इर्विन समझौते पर ख़ुशी इत्यादि।

संम्प्रदायिक निर्णय का विरोध

तीसरा अधिवेशन राजा ग़ज़नफ़र अली ख़ाँ के सभापतित्व में हुआ, इसमें मिस्टर मैकडोनल्ड के दिये हुए साम्प्रदायिक निर्णय का विरोध किया और कहा गया कि इलाहाबाद के सर्वदल-सम्मेलन के सिद्धांत पर निर्णय होना चाहिए।

राष्ट्रीयता के हामी

१९३७ में इसका अधिवेशन लखनऊ में सर सैयद वज़ीर हसन के सभापतित्व में हुआ। उन्होंने कहा " अल्प संख्या तथा बहुसंख्या का फ़ैसला तभी हो सकता है, जब हम आज़ाद हो जायँ। किसी देश के इतिहास में इसका उदाहरण नहीं है कि " ऐसी ज़मानत ग़ुलामों के एक तबक़े ने अपनी ही क़िस्म के ग़ुलामों से तलब की हो। इस हालत में ज़मानत तलब करने के माने तो यह होगा कि मुसलमान अपने हक़ूक़ के इतमीनान की उजरत लेकर जंग-आज़ादी में शरीक होना चाहते हैं।" इस अधिवेशन में पहिले प्रस्ताव में १९३५ के इंडिया-ऐक्ट को वापस लेने के लिए कहा गया, पृथक् निर्वाचन प्रथा तोड़ देने को कहा; इसके साथ ही अब पूर्ण स्वतंत्रता ही शिया लोगों का ध्येय क़रार दिया गया है।

तबर्रा आन्दोलन

काँग्रेस मंत्रिमंडल के आने के बाद उसने सुन्नियों को मदहे सहबा पढ़ने का हक़ लौटा दिया, इस पर शियाओं ने तबर्रा पढ़ना शुरू किया। नतीजा यह हुआ कि शिया सुन्नियों में झगड़ा पैदा हुआ। सरकार ने इस पर दफ़ा १४४ लगा दी, और शिया लोग तबर्रा पढ़-

पढ़ कर गिरफ़्तार होने लगे। इस आन्दोलन को मुख्यतः तनज़ीमुल-मोमनीन सिपाहे अब्बासिया नामक शिया संस्था ने चलाया। फिर शिया पोलिटिकल कांन्फ्रेंस की ओर से सिपाहे हैदरी ने चलाया। यही तबर्रा आन्दोलन है। इसमें १६ हज़ार शिया गिरफ़्तार हुए। कांग्रेस सरकार की तबर्रा नीति से शिया नाराज़ हो गए, किन्तु फिर भी वे संयुक्त निर्वाचन की नीति से न डिगे, साथ ही मुसलिम लीग से अलग हैं। शियाओं की नीति सांप्रदायिकता की आबोहवा में एक ख़ुशी देने वाली बात है।

जमैयतुल-उलमाए-हिन्द

लीग और जमैयत

मुस्लिम लीग एक तरह से अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों के द्वारा बनी है, तो जमैयतुलउलमा उन लोगों की संस्था है, जिन्होंने अपना अधिकतर समय धार्मिक स्वाध्याय में ही बिताया है, किन्तु यह एक अजीब बात है कि ऐसा होते हुए भी उलमा (धार्मिक विद्वान्) हमेशा से दूसरे मुसलमानों के मुक़ाबले में प्रगतिशील रहे। हिन्दू , पंडित और मुस्लिम उलमा धार्मिक दृष्टि से एक ही श्रेणी के हैं, किन्तु संस्कृत पंडितों की तरह पोंगापन्थी और राजनीति से शून्य होने के बजाय ये हमेशा से अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे मुसलमानों से अधिक राष्ट्रीय रहे हैं।

ग़दर के दिन

ग़दर के ज़माने में बहुत से उलमाओं ने अंग्रेज़ी सरकार के विरुद्ध भाग लिया, फलस्वरूप ग़दर दबा दिए जाने के बाद २०० से अधिक उलमा जल्लाद के हवाले कर दिये गये। सैकड़ों काले पानी गये। हाजी इमदादुल्ला हिजरत कर मक्का चले गये। मुहम्मद क़ासिम शहीद होते होते बचे। इस प्रकार उलमा बुरी तरह कुचल दिये गये तो बचे-खुचे लोगों ने मदरसों और ख़ानकाहों में शरण ली।

महायुद्ध

१९१४ का महायुद्ध छिड़ने के बाद सरकार ने कुछ दिन ठहरकर

शेख़ुलहिन्द महमूदुलहसन, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, मौलाना शौकतअली, मौलाना मुहम्मद अली, हसरत मुहानी आदि को नज़र बंद कर लिया। इसी शेख़ुलहिन्द साहब के शिष्य ओबेदुल्ला का ज़िक्र क्रांतिकारी दल के रेशमी चिट्ठी षड्यंत्र में आ चुका है। शेख़ुल-हिन्द मौलाना महमूदुलहसन, मौ० हुसैन अहमद मदनी, अज़ीज़ गुल आदि को सरकार ने हिजाज केवाली शरीफ़ हुसैन के ज़रिए गिरफ़्तार कर माल्टा में क़ैद कर लिया। तुर्की के जर्मनों का साथ देने के कारण ही मुसलमान अंग्रेज़ों के अधिक विरोधी बन गये। क्रांतिकारी दल के इतिहास में इस सम्बन्ध में मुसलमानों का हिस्सा स्पष्ट किया गया है।

महायुद्ध के बाद

रौलट ऐक्ट, ख़िलाफ़त तथा जलियान वाला का प्रभाव उलमाओं पर पड़ा, और उन्होंने इस बात की आवश्यकता का अनुभव किया कि इस प्रकार बिखरे ढंग से काम न कर उलमा को संगठित होना चाहिये, तदनुसार २८ नम्बर १९१९ को मौ० अब्दुल बारी फ़िरंगीमहली के सभापत्वि में अमृतसर में जमैयतुलउल्मा का पहिला अधिवेशन हुआ। दूसरे दिन का अधिवेशन मुफ़्ती मुहम्मद किफ़ाय-तुल्ला के सभापतित्व में हुआ। इन सभाओं में ख़िलाफ़त तथा भारतीय परिस्थिति पर कड़े प्रस्ताव पास हुए, और जमैयतुलउलमा के उद्देश्यों में ये भी जोड़ दिये गये—

(१) दूसरे धर्मावलम्बियों के साथ सहानुभूति तथा सहयोग।

(२) धार्मिक अधिकारों की रक्षा और मुसलिम नेतृत्व।

जमैयत के स्थायी सभापति मुफ़्ती किफ़ायतुल्ला, और संगठन-कर्ता अहमद सईद नियुक्त हुए।

नवम्बर १९२० में कलकत्ते में इसका एक विशेष अधिवेशन हुआ। इसमें माल्टा से रिहा होकर आये हुए शेख़ुलहिंद मौलाना

महमूदुलहसन सभापति थे। इसमें कोई ५०० उलमा शामिल थे। इस सम्मेलन में ऐलान किया गया कि वर्तमान-परिस्थिति में सरकार से सब तरह से सहयोग करना धार्मिक दृष्टि से हराम है। ४७४ उलमाओं के दस्तख़तों से इसी आशय का एक फ़तवा प्रकाशित किया गया जिसको सरकार ने ज़ब्त कर लिया। बाद को इसके साथ विलायती कपड़े का बायकाट भी जोड़ दिया गया। इसके बाद ख़िलाफ़त आन्दोलन में जो कुछ हुआ, वह पुस्तक में पहिले ही आ चुका है। १९२२ का सम्मेलन मौलाना हबीबुर्रहमान के सभापतित्व में हुआ।

मोपला-विद्रोह

असहयोग-आन्दोलन मोपलों में फैला तो सरकार को बहुत नागवार गुज़रा, और वहां के कलक्टर मिस्टर टामसन ने १४४ दफ़ा लगा दी। एक मौक़े पर पुलिस ने मोपलों पर गोली चलायी तो चार सौ मोपले मारे गये। इसी संबंध में १०० मोपला क़ैदियों को गरमियों में मालगाड़ी के डब्बे में भेजा जा रहा था, जिनमें से ५२ रेल में, और १४ बाद को मर गये। इस झगड़े ने बाद को सांप्रदायिक रूप धारण कर लिया था। असहयोग के ख़तम होते ही देश में सांप्रदायिक दंगों की बाढ़ सी आ गयी। १९२३-२४ में कोकनाडा में मौलाना हुसैन अहमद के सभापतित्व में जो अधिवेशन हुआ, उसमें एक तरफ़ तो हिंदुओं के अत्याचारों की निंदा की गयी और दूसरी तरफ़ हिन्दू-मुसलिम मेल के लिए इच्छा प्रकट की गयी। मानना ही पड़ेगा कि शुद्धि, संगठन आदि चलने के कारण जमैयतुलउलमा पर भी असर पड़ा, और यह संस्था भी कुछ प्रतिक्रिया की ओर खिंच गयी।

स्वतन्त्रता ही ध्येय

१९२५ में मुरादाबाद के अधिवेशन में कोई ख़ास बात न हुई।

मौलाना सैयद सुलेमान नदवी की अध्यक्षता में कलकत्ता में जो अधिवेशन हुआ, उसमें यह तय हुआ कि हिंदू चाहे तो सहायता दे, नहीं तो हर एक मुसलमान देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ना अपना फ़र्ज़ समझता है। इस प्रकार कांग्रेस से पहिले ही जमैयतुलउलमा ने स्वतंत्रता को अपना ध्येय घोषित कर दिया।

१९२७ में पेशावर में जो सम्मेलन हुआ उसमें यह तय पाया कि "शान्तिपूर्ण तरीक़े से मुसलमान स्वतंत्रता हासिल करना ही अपना ध्येय समझें, मुसलमानों का न केवल यह राजनैतिक कर्तव्य है, बल्कि धार्मिक भी है।" साइमन कमीशन का बायकाट तथा मिस्टर जिन्ना की १४ शर्तों की ताईद इसी सम्मेलन में हुई।

१९३० के अमरोहा अधिवेशन के अवसर पर मिस्टर मुहम्मद अली अपनी पार्टी सहित कुछ मामूली बात पर जमैयत से अलग हो गये, और चाहा कि दूसरी जमैयत क़ायम हो, किन्तु ऐसा न हो सका। इस अधिवेशन में फिर स्वतंत्रता तथा सत्याग्रह के प्रस्ताव पास हुए। १९३०-३१ के सत्याग्रह में जमैयत के सैकड़ों सदस्य जेल गये। तब से जमैयत बराबर कांग्रेस का साथ देती आ रही है।

आख़िरी सम्मेलन

आख़िरी सम्मेलन जो ३, ४, ५, ६ मार्च १९३९ को हुआ, उसमें जमैयत का एक घोषणापत्र तैयार किया गया, वह संक्षेप में यों है—

घोषणापत्र

(१) मुसलमान स्वभाव से स्वतंत्रता के प्रेमी और मनुष्य की ग़ुलामी करने के विरोधी हैं, अतः प्रत्येक दृढ़ मुसलमान स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए हर प्रकार के संग्राम तथा उसमें लगने वाले त्याग के लिए तैयार रहेगा।

(२) जमैयत का दृढ़ निश्चय है कि भारत ब्रिटिश साम्राज्यवाद के पंजों से सम्पूर्ण रूप से मुक्ति पावे।

(३) सब बुद्धिमान् भारतीय नेताओं का यह मत है कि भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए समस्त सम्प्रदायों की संयुक्त तथा सम्मिलित चेष्टा चाहिए। जब तक सब सम्प्रदाय ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा न पेश कर सकें; तब तक भारत के उद्धार की आशा सुदूरपराहत है।

(४) जमैयत ने इस दृष्टिकोण के अनुसार भारतीय सब जातियों की पार्टी इंडियन-नेशनल-कांग्रेस के साथ अपना पृथक् अस्तित्व क़ायम रखते हुए सम्पूर्ण सहयोग का ऐलान किया है।

(५) १९३५ के इंडिया ऐक्ट के अनुसार दिये हुए शासन-सुधार एकदम असन्तोष-जनक हैं, और स्वतंत्रता की माँग को किसी भी तरह पूरा नहीं करते, उसके अनुसार दिये हुए अधिकार इतने कमज़ोर और अविश्वास-योग्य हैं कि हर समय शासन-सुधार के फ़ेल होने का और सरकार टूट जाने का ख़तरा लगा रहता है।

(६) मुसलमानों से अपील की जाती है कि जब वे धारासभाओं में गये, और शासन-सुधार के यन्त्र को चला ही रहे हैं, तब उन्हें चाहिए कि वे शहर और देहात में कांग्रेस के बाक़ायदा सदस्य बनें; और समस्त कांग्रेस-कमेटियों में शरीक होकर उसकी कार्रवाई में हिस्सा लें। क्योंकि हमारी राष्ट्रीय तथा धार्मिक अधिकारों की रक्षा का यही उपाय है।

(७) इतना होते हुए भी जमैयत अपनी पृथक् हैसियत क़ायम रक्खेगी। गत लड़ाइयों में जमैयत ने अनुपात से अधिक त्याग किया, और बराबर कांग्रेस का साथ देती रही, किन्तु फिर भी पृथक् अस्तित्व आवश्यक है।

(८) जमैयत के विरोधियों का यह बिल्कुल ग़लत दोषारोपण है कि उसने उचित, अनुचित हर मौक़े पर कांग्रेस का साथ दिया है या उसकी हर बात को माना है। जमैयत का यह दावा है और इसके सबूत मौजूद हैं कि जमैयत ने हर मौक़े पर कांग्रेस के उन प्रस्तावों की कड़ी आलोचना की है जिनको मुस्लिम हितों के विरुद्ध पाया। नेहरू रिपोर्ट पर, तथा कांग्रेस के हिन्दू-मुस्लिम समझौते के फ़ारमूला पर जमैयत ने लिख कर आपत्ति की। एक भी ऐसा उदाहरण नहीं दिया जा सकता जब कांग्रेस के किसी ऐसे प्रस्ताव को जमैयत ने माना हो जो मुस्लिम हितों के विरुद्ध माना जा सकता है।

(९) जमैयत मुसलमानों को बता देना चाहती है कि वह अपनी असली मांग पूर्ण स्वतन्त्रता की प्राप्ति के प्रति उदासीन नहीं है, और उन मुसलमानों से जो कांग्रेस में शरीक हैं, यह अपील करती है कि वे इस्लाम की आज्ञाओं की पाबन्दी करते हुए सरकार के हर उस प्रस्ताव का ज़ोरदार विरोध करे जिससे पूर्ण स्वतन्त्रता के मार्ग में रुकावटें पैदा होती हों या जिनसे मुसलमानों के धर्म को ठेस लगे।

(१०) जमैयत ऐलान करती है कि राष्ट्रीय सरकार भी यदि मुस्लिम धर्म, संस्कृति, स्वार्थ पर चोट करे तो वह पहली संस्था होगी जो उस सरकार के विरुद्ध लड़ाई छेड़े।

(११) जमैयत की दृष्टि से हिन्दु, मुसलमान तथा अन्य भारत के सम्प्रदायों में एका इसलिए आवश्यक है कि वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा क़ायम कर सकें, न कि इस अर्थ में कि वे अपनी संस्कृति, विश्वास वग़ैरह भुला दें

(१२) इस्लाम को आने वाले भयंकर ख़तरों से बचाने के लिए यह आवश्यक है कि सब मुसलमान एक होकर जमैयत के अनुसार चलें।

प्रस्ताव

इसी अधिवेशन में मध्य प्रांत की शिक्षा योजना के विद्या-मन्दिर नाम की निन्दा की गयी। कहा गया कि नाम पर सरकार की ज़िद अनुचित है। मुसलमानों के लिए इसका नाम बेतुलइल्म या मदीना-इ-इल्म रखना ठीक होगा। कांग्रेस से कहा गया कि वह राष्ट्रीय संस्था है, अतएव अपने अधिवेशनों की सजावट आदि में ऐसी बात, निशान आदि का व्यवहार न करे, जो किसी ख़ास धर्म के द्योतक हों, या जिन से मुसलमानों के दिल को ठेस लगे। मौ० शाहिद मियां इलाहाबादी ने यह प्रस्ताव रक्खा कि कांग्रेस सरकारों के विरुद्ध मुसलमानों की शिकायतों की जाँच करने के लिए एक ग़ैरसरकारी तहक़ीक़ाती कमेटी बैठायी जाय। उड़ीसा में कोई मुसलिम मन्त्री न होने पर तथा मध्य प्रांत में मिस्टर शरीफ़ की जगह कोई मुसलिम मन्त्री न लिये जोने पर खेद प्रगट किया गया।

इसके अतिरिक्त कई घरेलू प्रस्ताव पास हुए। इन प्रस्तावों को पढ़ने से ज्ञात हो जायगा कि जमैयत सोलह आना राष्ट्रीय संस्था न है, न हो सकती है। जिसकी हर बात में धर्म घुसा है, वह संस्था राष्ट्रीय कैसे हो सकती है। फिर भी मानना पड़ेगा कि सब साम्प्रदायिक संस्थाओं में इसी का दृष्टिकोण अधिक राष्ट्रीय है। एक बात और भी है, वह यह कि जमैयत को अपने साथ धर्मांध मुसलमान जनता को ले चलना है, इसलिए उसे राष्ट्रीय चीज़ों को भी मुसलिम ज़नता के सामने मज़हबी प्याले में परोसना पड़ता है; नहीं तो शायद उसकी जनता में कुछ पूछ ही न हो।

ख़िलाफ़त-कमेटी

महायुद्ध में तुर्की

गत महायुद्ध के अवसर पर तुर्की अंग्रेज़ों के विरुद्ध और जर्मनी के साथ था। स्वभावतः इस बात से हिन्दुस्तान के मुसलमानों में बड़ी बेचैनी थी। अंग्रेज़ों की तरफ़ से मिस्टर लायड जार्ज ने यह वादा किया था कि तुर्की को क़ायम रक्खा जायगा तथा उसकी राजधानी पर क़ब्ज़ा करना या उसकी उपजाऊ ज़मीन से उसे वंचित करना अंग्रेज़ी सरकार का उद्देश्य नहीं है। किन्तु ऐसा आश्वासन देने पर भी अंग्रेज़ों ने फ़ौरन मोसल पर चढ़ाई शुरू की, और क़ुस्तुन्तुनिया पर क़ब्ज़ा कर ही लिया। वादों के होते हुए तुर्की के टुकड़े टुकड़े कर दिये गये। इस पर हिन्दुस्तान के मुसलमानों में बड़ी बेचैनी फैली, और जगह जगह पर प्रतिवाद सभाएँ हुईं। इसी सिलसिले में नवम्बर १९१९ में दिल्ली में मिस्टर फ़ज़लुलहक़ के सभापतित्व में एक सभा हुई, यह स्थायी बना दी गयी और इसमें निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुए—

(१) ईरान और तुर्की के पवित्र स्थानों के साथ सरकार ने जो अन्याय किये हैं, उनके प्रतिवाद में मुसलमान युद्धविराम की ख़ुशियों में हिस्सा न लें।

(२) सरकार से मुसलमान असहयोग करें।

(३) यदि वाञ्छित समझौता न हुआ तो विलायती माल का बायकाट किया जाय।

(४) महात्मा गांधी तथा और जो दूसरे हिन्दू ख़िलाफ़त से सहानुभूति रखते हैं, उनको धन्यवाद दिया जाता है।

ख़िलाफ़त आन्दोलन का प्रारम्भ

१९१९ के दिसम्बर के अन्त में ख़िलाफ़त कान्फ़रेन्स का पहिला अधिवेशन मौलाना शौकत अली के सभापतित्व में अमृतसर में हुआ। इस सभा में इंग्लैंड में एक डेपुटेशन भेजना तथा ख़िलाफ़त फ़ंड के लिए दस लाख रुपया जमा करना तय हुआ। मुसलमानों में यह आन्दोलन इस प्रकार विस्तृत हो गया कि मिस्टर मान्टेगू अपनी कौन्सिल के सदस्य गंगासिंह को लेकर पेरिस गये, और शान्ति कान्फ़रेन्स के सामने सेन्ट सोफ़िया के गिर्जा बना दिये जाने में भारत के लिए भय प्रकट किया। जो कुछ भी हो वास्तविकता इस बीच में एक दूसरी ही दिशा में जा रही थी। मित्रपक्ष की शह पाकर यूनानियों ने महायुद्ध से पस्त तुर्की के ऊपर केवल २४ घंटे की नोटिस देकर १५ मई १९१९ को स्मर्ना पर चढ़ाई कर दी। इसी युग में तुर्की में कमाल पाशा का उदय हुआ, जिन्होंने अपने देश को ख़तम होने से बचा लिया।

दूसरा अधिवेशन तथा प्रतिनिधित्व

ख़िलाफ़त-कानफ़रेन्स का दूसरा अधिवेशन १५ फ़रवरी १९२० में मिस्टर ग़ुलाम मुहम्मद भरगरी के सभापतित्व में बम्बई में हुआ, इसमें विलायत में डेपुटेशन भेजने का प्रस्ताव फिर से पास हुआ। यह प्रस्तावित डेपुटेशन गया, और मिस्टर फ़िशर उप भारत-मंत्री तथा मिस्टर मान्टेगू भारत-मंत्री से मिला।

असहयोग की नीति

१९२० की पहली जनवरी को मौलाना अबुलकलाम आज़ाद बहुत दिनों की नज़रबंदी के बाद रिहा हुए, और २९ फ़रवरी १९२० को कलकत्ते में प्रान्तीय ख़िलाफ़त-कानफ़रेन्स का सभापतित्व करते हुए पहले-पहल असहयोग का कार्यक्रम मुसलमानों के सामने रक्खा। मौलाना मुहम्मद अली ने इस बीच में बेवक़ूफ़ी से एक वक्तृता में आवेश में आकर कह डाला था कि यदि अफ़ग़ानिस्तान ने हिन्दुस्तान पर हमला किया, तो हिन्दुस्तान के मुसलमान अफ़ग़ानों का साथ देंगे। मौलाना आज़ाद ने मुस्लिम शरह के प्रमाण से सिद्ध किया कि यह बिलकुल ग़लत है और कहा "यदि हिन्दुस्तान स्वतंत्र हो, और उसमें ऐसी शासन-पद्धति हो, जिसमें मुसलमान भी और जातियों की तरह स्वतंत्र हों तो वैसी अवस्था में इस्लाम का यह हुक्म है कि मुसलमान अपने देश की आक्रमण-कारियों से रक्षा करें, चाहे स्वयं ख़लीफ़ा की फ़ौज ही आक्रमण कर रही हो।"

कांग्रेस से सहयोग

धीरे-धीरे ख़िलाफ़त-आन्दोलन कांग्रेस-आन्दोलन के साथ हो गया, और उसमें भी असहयोग की पालिसी मान ली गयी। १९२१ की जनवरी में ख़िलाफ़त कान्फ़रेन्स का अधिवेशन नागपुर में हुआ। अब्दुल मजीद साहब सभापति थे। इसमें ये प्रस्ताव भी पास हुए—

(१) इसलामी मुल्कों में मुसलमानी फ़ौजें न भेजी जायँ।

(२) ख़िलाफ़त के विरुद्ध मित्रपक्ष के फ़ैसले का विरोध किया जाता है।

(३) हिन्दू-मुस्लिम एका का समर्थन।

(४) तीस लाख रुपया जमा किया जाय।

(५) वालंटियर कोर बनाये जायँ ।

(६) असहयोग धार्मिक कर्तव्य है ।

तुर्की में ख़िलाफ़त रद्द

असहयोग के ज़माने में ख़िलाफ़त कमेटियों ने असहयोग में पूरा भाग लिया । उधर अगस्त १९२२ में मुस्तफ़ा कमाल ने यूनानियों पर आक्रमण करके उन्हें मुल्क से बाहर निकाल दिया । २२ नवम्बर १९२२ को तुर्कों की राष्ट्रीय असेम्बली का अधिवेशन हुआ और उसने तय किया कि ख़िलाफ़त और सल्तनत को अलग कर दिया जाय । इस फ़ैसले के कारण सुलतान वहीदुद्दीन ने भाग कर मित्रपक्ष के जहाज़ में आश्रय लिया, और अब्दुल मजीद अफ़न्दी ख़लीफ़ा चुने गये । इसी समय नवम्बर के अन्त में लोज़ान (Lausanne) कानफ़रेंस का अधिवेशन शुरू हुआ, किन्तु अब मुस्तफ़ा कमाल पाशा के कारण तुर्कों का पलड़ा भारी पड़ चुका था; इसलिए तुर्क इस कान्फ़रेंस के विजित नहीं, बल्कि विजेता के रूप में उपस्थित हुए ।

१९२३

१९२३ का अधिवेशन गया में हुआ । जिस समय अधिवेशन हो ही रहा था, ख़बर आई कि लोज़ान कान्फ़रेंस में तुर्की के प्रस्ताव न माने गये—इस पर बड़ा जोश फैला, और मुसलमानों को कांग्रेस में शामिल होने, सरकारी स्कूल बायकाट करने, तथा खद्दर पहिनने को कहा गया । किन्तु लोज़ान कान्फ़रेंस फिर बुलाई गयी और तुर्की की मांगें मानी गयीं । २५ जुलाई को इसके उपलक्ष्य में हिन्दुस्तान में खुशियां मनायी गयीं ।

तुर्की में प्रजातंत्र

१९२३ के अन्त में अंगोरा की राष्ट्रीय असेम्बली ने पास किया, कि देश में प्रजातन्त्र का प्रवर्तन किया जाय, केवल यही नहीं इस प्रजातन्त्र का राष्ट्रपति ग़ैर-मुस्लिम भी हो सकेगा। कहां तो यह बात थी कि तुर्की का सुलतान मुसलमानों का ख़लीफ़ा होता था और कहां यह कि ग़ैर मुस्लिम राष्ट्रपति हो सकेगा। ख़िलाफ़त आन्दोलन को राजनैतिक उद्देश्य से चाहे कितना भी इस्तेमाल किया गया हो, इसका नतीजा ख़राब हुआ हो या अच्छा, किन्तु अंगोरा असेम्बली के इस निर्णय से ख़िलाफ़त आन्दोलन की रीढ़ टूट गयी। थोड़े दिन बाद राष्ट्रीय तुर्कों ने 'ख़लीफ़ा' का पद ही तोड़ दिया, और शेख़ुलइसलाम के ओहदे को मन्सूख़ कर दिया। इस की ख़बर १० मार्च १९२४ को हिन्दुस्तान में पहुँची। भारतीय साम्प्रदायिकतावादी मुसलमान भला इन निर्णयों के महत्व को क्या समझते, वे इस बात पर बिलबिला उठे। हिंदुस्तानी मुसलमानों ने इस पर तुर्की नेताओं के पास एक प्रतिनिधि-मंडल भेजना चाहा, किन्तु सरकार ने पासपोर्ट नहीं दिया। १९ मार्च १९२४ को ख़िलाफ़त कान्फ़रेंस का एक अधिवेशन मौलाना मुहम्मद अली के सभापतित्व में कलकत्ता में हुआ।

प्रतिक्रिया आरम्भ

इस समय अजीब परिस्थिति हो रही थी, जो हिन्दू-मुसलिम कुछ दिन पहिले मिले हुए थे वे अब अलग हो रहे थे। देश में संग्रामशील कार्य-क्रम का अंत होते ही शुद्धि, संगठन, तबलीग़, तनज़ीम का बोलबाला हो रहा था। धार्मिक कट्टरता के सहारे तुर्कों के विरुद्ध हिंदुस्तान के मुसलमान भड़काये जा रहे थे। कुछ मुसलमान तीसरी

ताक़त के इशारे पर अंग्रेज़ों के ख़ैरख़्वाह शरीफ़हुसैन को ख़लीफ़ा बनाने के लिए प्रचार-कार्य कर रहे थे। कलकत्ता अधिवेशन में अरबों की आज़ादी की माँग की गयी। शरीफ़ हुसैन पर घृणा प्रकट की गयी, और यह इच्छा प्रकट की गयी कि दुनिया के मुसलमान नेता एक जगह सम्मिलित होकर ख़लीफ़ा का चुनाव करें, हिन्दू-मुसलमानों में मेल की आवश्यकता प्रकट की गयी। अर्थात् तुर्की में तो ख़लीफ़ा ख़तम हो गये, किन्तु हिन्दुस्तान के मुसलमान अपनी मूर्खता के कारण उसका स्वप्न देखते रहे। २४ जून १९२४ को दिल्ली में ख़िलाफ़त कान्फ़रेंस का फिर अधिवेशन हुआ, किन्तु अब यह कांफ़रेंस राजनैतिक प्रतिक्रिया की ओर जा रही थी, अतएव इसने एक प्रस्ताव यह भी पास किया कि तनज़ीम की जाय। साथ ही शायद अपनी ख़िलाफ़त कांन्फरेंस नाम की सार्थकता दिखाने के लिए यह पास किया कि दुनिया के मुसलमान मिल कर ख़लीफ़ा चुनें।

कानपुर अधिवेशन

१९२५ का अधिवेशन कानपुर में हुआ, इसमें अबुलकलाम आज़ाद सभापति थे। महात्माजी भी इसमें शरीक थे। मौलाना हसरत मुहानी ने स्वागताध्यक्ष की हैसियत से भाषण में कहा कि यदि तुर्कलोग ख़िलाफ़त न चाहें तो शाह हिजाज़ को ख़लीफ़ा बना दिया जाय, साथ ही इब्न सऊद की निन्दा की। मौलाना मुहम्मद अली ने इस पर यह प्रस्ताव रक्खा कि स्वागताध्यक्ष का भाषण रद्द क़रार दिया जाय; तदनुसार यह रद्द क़रार दिया गया। उलटा यह प्रस्ताव हुआ कि इब्न सऊद के हिजाज़ प्रवेश पर ख़ुशी ज़ाहिर की जाती है।

१९२६ के दिल्ली में होनेवाले अधिवेशन में बहुत से वक्ताओं ने हिंदुओं के विरुद्ध ज़हर उगले। अब यह संस्था मुसलिम लीग की तरह होती जा रही थी। इसकी राजनैतिकता ग़ायब होकर कट्टरपन बढ़ता जा रहा था।

आन्दोलन का अन्त

१९२७ में इस के तीन अधिवेशन हुए। १९२८ में एक तरह से इसका अन्त हो गया। ख़लीफ़ा प्रथा का तुर्की के ही द्वारा अन्त कर दिये जाने पर इस आन्दोलन की जान निकल गयी थी, तिसपर भी इसके १८ लाख रुपये लोगों ने ग़बन कर लिये; फिर इसकी आवश्यकता भी तो नहीं थी, क्योंकि मुसलिमलीग तो थी ही। इस प्रकार ख़िलाफ़त कान्फ़रेन्स तथा आन्दोलन की प्राकृतिक मृत्यु हो गयी, किन्तु जब यह जीवित थी तो इसने कुछ ऐतिहासिक प्रयोजन सिद्ध किया था।

ख़ाकसार

अल्लामा मशरिकी

ख़ाक़सार आन्दोलन के नेता अल्लामा मशरिकी सरकारी नौकर थे, वे अब भी पेंशनर हैं। उन्होंने पहिले-पहल इस आन्दोलन को सीमाप्रान्त और पंजाब में चलाया, किन्तु बाद को यह आन्दोलन सारे हिन्दुस्तान में फैला। सब बात तो यह है कि यह आन्दोलन किसका दोस्त है और किसका दुश्मन-यह अभी तक अच्छी तरह समझ में नहीं आया, इसका ध्येय क्या है, उपाय क्या है, साधन क्या है, किसी को ठीक-ठीक पता नहीं। इन बातों में स्पष्टता न होते हुए भी कैसे एक आन्दोलन वर्दी की मादकता में ही चल सकता है, इसकी कहानी ख़ाकसारों की कहानी है।

अर्ध सामरिक दल और बेलचा

ख़ाकसार दल एक अर्ध-सामरिक दल है, इसके लोग वर्दी में रहते हैं, (चाहे वह वर्दी गुदड़ी बाज़ार से ही ख़रीदी गयी हो) और हर समय एक बेलचा लिए हुए रहते हैं। बेलचा यों एक साधारण व्यक्ति की दृष्टि में कोई काम की चीज़ नहीं, किन्तु एक ख़ाकसार की आंखों में उसके निम्नलिखित गुण हैं—

(१) यह ख़ाकसार की कोई चीज़ भूनने या तलने की कढ़ाई है।

(२) यह सिपाही की तिपाई है।

(३) यह उसके पीने का बर्तन है।

(४) यह उसकी छड़ी है।

(५) यह पैग़म्बर के व्यवहार की वस्तु थी, इसलिए वरदान प्राप्त है।

(६) सर्वोपरि यह सिपाही की तलवार है जो सिक्खों के कृपाण से बढ़कर है और सब से बड़ी बात यह है कि इसके लिए लैसंस की ज़रूरत नहीं है।

बेलचाधारी ख़ाकसारों का बाक़ायदा परेड होता है, यहां तक कि नक़ली युद्ध भी होते रहते हैं।

ख़ाकसारों में अधिकांश साधारण पढ़े लिखे लोग या अनपढ़ लोग ही अब तक शामिल हैं। कहा जाता है कि प्रत्येक ख़ाकसार को अपनी वर्दी आप ही लाना पड़ता है, यहां तक कि पड़ाव में जाने पर भी अपने लिए सूखा भोजन लाना पड़ता है। कुछ लोग यह समझते हैं। कि इस दल को जर्मनी के हिटलर से धन मिला है, कुछ समझते हैं, अंग्रेज़ी सरकार से धन मिलता है, सच बात तो यह है कि इनको धन कहां से मिलता है, यह किसी को पता नहीं। ये लोग आम जनता से चन्दा नहीं लेते, इसी से इन सन्देहों की उत्पत्ति हुई।

क्रान्तिकारी प्रतिक्रियावादी

अल्लामा मशरिकी के विचार कुछ सुलझे हुए नहीं हैं। बहुत अंशों में वे मध्ययुग के धर्मान्धों की तरह हैं, किन्तु उनका धर्म मुल्ला का धर्म नहीं। धर्म में वे कुछ हद तक क्रान्तिकारी हैं, क्योंकि वे मुल्लाओं का प्रभुत्व मुसलमानों पर से हटाना चाहते हैं, किन्तु एक सच्चे क्रान्तिकारी की तरह उनका सिक्का उठाकर उनकी जगह पर प्रगतिशील विचारों का प्रभुत्व वे नहीं चाहते, बल्कि वे अपना सिक्का बैठाना चाहते हैं। फ़ैसिस्टों के (Superman) या अतिमानव सिद्धान्त से अल्लामा की

बातें मिलती हैं, अल्लामा सब के ऊपर हैं। न उन पर कोई बुद्धि है, न कोई और व्यक्ति। पता नहीं, अल्लामा जो हज़ारों अललटप्पू बातें करते या कहते हैं, उनमें उनका भी स्वयं कोई विश्वास है कि नहीं, या वे कुछ गहरे मतलब को साधने के लिए जनता को विशेष कर अपने भक्तों को इस प्रकार बहलाते हैं। इसके साथ ही यह बतला देना ज़रूरी है कि अल्लामा में कुछ जनता के मन को समझने की ताक़त होने पर भी वे उस प्रकार के नेता नहीं हो सकते, जैसे हिटलर या मुसोलिनी हैं। ऐसा नेता होने के लिए यह ज़रूरी है कि एक सिलसिले से वह जनता को बहलाने में समर्थ हों, किन्तु अल्लामा ऐसा कुछ नहीं कर सकते।

कांग्रेस के प्रति रुख़

अल्लामा कांग्रेस के विरोधी हैं, और उसके सम्बन्ध में अजीब अजीब बातें कहते हैं। अहिंसा के सम्बन्ध में वे क्या कहते हैं, यह द्रष्टव्य है —

"हिन्दू काँग्रेस द्वारा मुसलिम राजनीति को जो सब से बड़ी हानि पहुँचाई जा रही है, वह यह है कि एक ही हिन्दू - दर्शन भिन्न भिन्न रंगों में सब जगह जाता है। मुसलमानों के हर एक धार्मिक तथा राजनैतिक आंदोलन के कार्यक्रम का यह मुख्य अंग हो गया है। हम देखते हैं कि मुसलमान व्यर्थ की आशा में सरकार के क़ानूनों को तोड़ कर अपने को गिरफ़्तार करा रहे हैं, वे गोलियों के लिए अपना सीना खोल देते हैं, वे किसी को नुक़सान नहीं पहुँचाते किन्तु स्वयं मर जाते हैं, वे मैदान में सिर्फ़ मरने के लिए जाते हैं, वे गिरफ़्तार होने के लिये जत्थों में जाते हैं, वे अपनी मांगें पूरी कराने के लिए असहयोग आन्दोलन करते हैं। उनकी आवाज़ें और नारे आकाश में गूंज जाते हैं, वे जुलूस निकालते हैं, हड़ताल करते हैं और विरोध में सभाएँ करते हैं, आदि आदि। मुसलमान इस कार्यक्रम को नक़ल करने के सिवा और कुछ नहीं सोच सकते। इसलाम धर्म का दर्शन

पीछे फेंक दिया गया है। मुसलमानों के मस्तिष्क पर हिन्दू तौर तरीक़ों ने क़ब्ज़ा कर लिया है। गांधी जी के विचारों का मुसलिम जाति पर अब भी प्रभाव है। जो मुसलमान कांग्रेस के राजनैतिक प्रभाव को सैनिक विजय समझते हैं, उनकी बुद्धि पर हमें बड़ा तरस है। जब हमारा (कांग्रेसमैनों का) अंग्रेज़ों से मुक़ाबला पड़ता है तो हम अपने को स्त्रियों की तरह जेल की एकान्त कोठरियों में बन्द कर लेते हैं। हम स्त्रियों की भांति चर्ख़ा कातते हैं और आवाज़ करते हैं। हम पुलिस की लाठियों और जूतों की मार बड़ी ख़ुशी से सहते हैं, भूख हड़ताल भी करते हैं। हमसे कहा जाता है कि हटो तो हम बैठ जाते हैं और हमें ज़बरदस्ती खींच कर हटाया जाता है। यदि ज़रूरत पड़े तो चुपचाप गोली बर्दाश्त कर सकते हैं, किन्तु दूसरे को मार कर हिंसा के अपराधी कभी नहीं बनेंगे।"

"हमारी अहिंसा और सत्याग्रह की शक्ति को देखो कि अगर दस मरें तो वे सब शहीद हो जायँगे, और हमारा सेनापति बिना लड़े अपनी सारी सेना शत्रु को सौंप देता है। सारा काम स्त्रियों की भांति हम करते हैं, किन्तु जेल को हम ससुराल और अपने को सरकार का दामाद कहते हैं। हम ख़ुशी ख़ुशी जेल की रोटी खाते हैं और सरकार को दिवालिया बनाते हैं। ज़रा देखो तो कि पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने का रास्ता कितना आसान है! जब सरकार को हमें हमेशा के लिए भोजन खिलाना पड़ेगा, तो वह तुरन्त भारत से कुत्ते की तरह दुम दबाकर भाग जायगी। वाह"

व्यर्थ की समालोचना

अल्लामा मशरिकी के उक्त बयान से, जिसमें उन्होंने अहिंसा को पानी पी पीकर कोसा है, शायद किसी को ख़याल हो जाय कि अल्लामा शायद दूसरे भगतसिंह या आज़ाद हैं, यह बात नहीं। उनकी सारी समालोचना केवल कांग्रेस को ठेस लगाने के लिए है, उनके पास

कोई भी दूसरा कार्यक्रम नहीं है। सच बात तो यह है कि उनका राजनैतिक उद्देश्य पूर्ण स्वतन्त्रता है, औपनिवेशिक स्वराज्य है या वर्तमान शासन-प्रणाली को क़ायम रखना है—यह कोई नहीं जानता। जहां तक मालूम होता है, इस दल का कोई राजनैतिक उद्देश्य है ही नहीं।

तीन श्रेणियां

ख़ाकसारों में मुसलमान ही हैं, अल्लामा हर बात में क़ुरान और पैग़म्बर का नाम लेते हैं, केवल यही नहीं, वे मुल्ला से अपने को अधिक मुसलमान समझते हैं। ख़ाकसारों की तीन श्रेणियां हैं—

(१) ख़ाकसार या मुजाहिद

(२) जानबाज़

(३) मुआविन

कर्त्तव्य

मुआविन वे है, जिनको फ़ौजी भाषा में Reserve कहेंगे यानी वे लोग जो अभी क्रियाशील नहीं हैं, किन्तु काम पड़ने पर सब कुछ करने को तैयार हो जायँगे। उनको १) सालाना चन्दा देना पड़ता है। जानबाज़ तथा ख़ाकसार को अपनी प्रतिज्ञा अपने ही ख़ून से लिखकर देनी पड़ती है, जिसमें वे सिपहसालार के हुक्म पर सर्वस्व अर्पण करने की क़सम खाते हैं। अल्लामा ने एक कैंप में भाषण करते हुए कहा था—

"निःसन्देह तुमने इसलाम और ईश्वर की सेवा में मृत्यु का मार्ग चुना है, तुमने अपने हथियार की नोंक से ख़ून निकालकर बतलाया है कि इसलाम की तरक़्क़ी के लिए तुम अपनी जान तक देने को तैयार हो, फिर याद रखना यदि तुम अपने सब से बड़े सेनापति का आदेश न मानोगे, तो तुम नरक जाओगे।"

डिक्टेटर

इस बात से साफ़ है कि अल्लामा धर्म, पैग़म्बर तथा क़ुरान से केवल जोश दिलाकर मुसलमानों को अपने क़ब्ज़े में कर लेना चाहते हैं। रहा यह कि क़ब्ज़े में करके वे क्या करना चाहते हैं, यह स्पष्ट न हो सका। लाहौर के पास अछ्रा नामक गाँव में ही इनका सर्वोच्च कार्यालय है। यहीं से उनका 'अल-इस्लाह' नामक पत्र प्रकाशित होता है, और यहीं से ख़ाकसारों के सब हुक्म जारी होते हैं। अल्लामा को किसी ने चुना नहीं, उन्होंने स्वयं अपने आपको चुना है। केवल यही नहीं, सारी संस्था में इसी प्रकार चुनाव का कहीं स्थान नहीं है। सबसे छोटी टुकड़ी आठ की है, उसका नेता सालारे मुहल्ला कहलाता है। वह ८½ बजे शाम को बिगुल बजाकर सबको इकट्ठा करता है। सालारे मुहल्ला का एक सहयोगी सालारे अदरिया होता है, वह हाज़िरी लेता है। ऐसे तीन सालारे मुहल्ला पर सीर सालार होता है और इन पर सालारे इलाक़ा होता है। इन सबके ऊपर सालारे ज़िला होता है, इसकी सहायता के लिए आफ़िस सुपरिंटेन्डेन्ट होता है।

दल की पोल

ख़ाकसारों के ऊपर निगरानी रखने के लिए सालारे ज़िला कुछ अन्य सादी पोशाकवाले ख़ाकसारों को नियुक्त करता है। ये जासूस कहलाते हैं। सच बात तो यह है कि इन्हीं के कारण (Romanticism) के वातावरण के कारण यह संस्था पनप रही है। इसी कारण यह और भी ख़तरनाक संस्था है। निश्चित रूप से यह संस्था सरकार विरोधी नहीं, सरकार को अपने जासूसों से यह बात भली भांति ज्ञात है, तभी वह इसका दमन नहीं करती। यदि सरकार को इस बात का ज़रा भी ध्यान हो तो वह कभी भी इस अर्धसामरिक दल को पनपने न दे।

पंजाब सरकार और ख़ाकसार

ख़ाकसारों की देखा देखी पंजाब में शक्ति दल के नाम से क़रीब क़रीब उसी तरह के हिन्दू रंग में रंगे उसूल लेकर बेलचा की जगह त्रिशूल लिए हुए एक दल की उत्पत्ति हुई, जिसका नाम पहिले शक्ति दल और बाद को राष्ट्रीय एकता दल पड़ा। इस पर पंजाब सरकार को यह भय हुआ कि कहीं शांतिभंग न हो, अतः किसी भी राजनैतिक दल को सामारिक रूप से ड्रिल वग़ैरह करने से मना करते हुए सरकार ने २८ फ़रवरी को एक हुक्म निकाल दिया। इस पर अल्लामा ने कहा है कि इस हुक्म से उनका कोई नुक़सान न होगा, क्योंकि उनका दल सम्पूर्ण रूप से सामाजिक सेवा तक ही अपने कर्मक्षेत्र को रखता है। सरकार ने भी इस पर कहा है कि उन्हें किसी संस्था पर रोक नहीं लगानी है, उन्हें तो केवल सामरिक ड्रिल पर आपत्ति है। अल्लामा इस पर क्या करते हैं, देखना है, क्योंकि सामरिक ड्रिल ही इनका सब कुछ है। इसी के मोह में तो लोग इस उद्देश्यहीन आन्दोलन में शरीक होते हैं ख़ाकसारों पर रोक लगाने पर इन लोगों ने संयुक्तप्रांत की कांग्रेस सरकार पर सत्याग्रह बोल दिया था, किन्तु मालूम होता है, पंजाब सरकार द्वारा किये हुए इस अपमान के अल्लामा पी गये।

पूना सार्वजनिक सभा

इस समय भारतवर्ष में प्रायः जितनी राजनैतिक संस्थाएँ काम कर रही हैं, उन सबों में प्राचीनतम पूना की सार्वजनिक सभा ही कही जा सकती है। इसकी अवस्था पहली अप्रैल सन् १९४० को ७० वर्ष की पूरी हो जायगी, इसका जन्म कांग्रेस से भी १५ वर्ष पहिले हो चुका था।

भारतवर्ष में अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रवेश से थोड़े ही समय पश्चात् यहां के सुशिक्षितों में राजनैतिक भावों का जन्म होने लग गया था। सबसे पहले सन् १८५३ में एक राजनैतिक संस्था "बाम्बे एसोसिएशन" स्वर्गीय श्रीयुत दादा भाई नौरोज़ी द्वारा बम्बई नगर में स्थापित की गयी थी। किन्तु भारतीय जन-समूह से अधिक स्पर्श न रहने के कारण यह संस्था जनता की वास्तविक आवश्यकताओं पर यथोचित प्रकाश नहीं डाल सकती थी। इसके पश्चात् बलवे का ज़माना आया, जिससे देश की परिस्थिति में भी बहुत कुछ परिवर्तन आ गया। अस्तु, सन् १८६७ में पूना के कुछ प्रमुख व्यक्तियों ने एक "पूना एसोसिएशन" की नींव डाल दी। तीन वर्ष बाद यह एसोसिएशन "पूना की सार्वजनिक सभा" में मिला दिया गया।

जन्मकाल

यह 'सार्व-जनिक-सभा' पूना में सन् १८७० की २ री अप्रैल को स्थापित की गयी थी। इसके मुख्य जन्मदाता स्वर्गीय श्रीयुत

गणेश वासुदेव जोशी थे, जो इसी कारण लोगों में 'सार्व-जनिक-काका' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। इसकी स्थापना ६००० व्यक्तियों की ओर से चुने हुए ९५ प्रतिनिधियों की एक सभा में की गयी थी, जिसमें औंध के राजा श्रीमंत श्री निवासराय पंत प्रतिनिधि ने सभापति-का आसन ग्रहण किया था। विधान और नियम तैयार हो जाने के बाद १७ प्रमुख सदस्यों की एक कार्य-समिति बनायी गयी, जिसमें औंध के उक्त राजा साहब सभापति नियुक्त हुए, और भोर, जामखंडी, साँगली तथा कुरुंडवाड के राजागण व श्रीमन्त नीलकंठराव पुरंदरे तथा माधोराव फड़नीस उपसभापति बने। मंत्रीत्व का भार 'सार्वजनिक-काका' को तथा श्रीमन्त त्र्यम्बकराव राजमाचीकर को सौंपा गया। यह निर्वाचन तीन साल के लिए किया गया था। ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस सभा ने आरंभ से ही अपने संगठन तथा कार्यों में निर्वाचन-पद्धति का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया था।

उद्देश्य

सभा का उद्देश्य उसके विधान में भूमिका रूप से इस प्रकार बतलाया गया था :—

"चूँकि यह उचित समझा गया है कि सरकार और प्रजा के बीच कोई ऐसी संस्था होनी चाहिए जो दोनों के बीच में एक मध्यस्थ का काम कर सके और एक ओर तो प्रजा को सरकार के सच्चे इरादों और उद्देश्यों को समझने के लिए सहूलियतें दे सके और दूसरी ओर सरकार के सामने प्रजापक्ष की तरफ़ से वास्तविक स्थिति को रखकर उसके अधिकारों को प्राप्त करने का उपाय कर सके, अतएव यह संस्था "पूना-सार्वजनिक-सभा" के नाम से स्थापित की गयी है।"

कार्य

इस प्रकार शासक और शासितों में बिचवैये का काम करना इस

सभा ने अपना मुख्य उद्देश्य मान रखा था। आज कल के ज़माने में हम इसे भले ही हेय समझें, किंतु यह उस समय का ज़िक्र है जब यहां प्रजा की सारी शक्ति बुझी हुई थी, अधिकारियों का हर जगह रोब ग़ालिब था और नौकरशाही की विनम्र आलोचना करने में ही सदा राजद्रोह का संदेह उठा करता था। ऐसी स्थिति में सभा को बहुत फूंक-फूंक कर पांव रखना पड़ता था और हाकिमों की निगाह को बराबर देखते रहना पड़ता था।

अपने जीवन के प्रथम चार वर्षों में सभा एक नौजात शिशु के समान केवल छोटे-मोटे और साधारण कामों में ही लगी रही। उसका सर्वप्रथम महत्व पूर्ण कार्य वह ज़बर्दस्त आन्दोलन था जो उसने बड़ौदा-नरेश श्री मल्हारराव गायकवाड़ पर साधारण अंग्रेज़ी अदालतों में मुक़दमा चलाये जाने के विरुद्ध उठाया था। इसके परिणाम में तत्कालीन वायसराय लार्ड नार्थब्रुक को बरबस झुकना पड़ा और हिंदुस्थान के लिए भी ब्रिटिश मैग्ना चार्टा का वही सिद्धांत लागू करना पड़ा. जिसके द्वारा न्याय करने का हक़ केवल बराबर वालों को ही हासिल है। सभा के इस सफल हस्तक्षेप ने भारतीय जनता के हृदय में एक अजीब गुद्गुदी पैदा कर दी और साथ ही उसने अधिकारियों को भी उसकी ओर से बेहद सशंक बना दिया। इसके पश्चात् सभा हाकिमों की प्रीतिपात्र किसी समय भी न बन सकी और कई बार तो उसके कार्य-कर्ताओं को सरकारी कोप का परिणाम भी भुगतना पड़ा।

सन् १८७७-७८ के दुर्भिक्ष में इसने लोगों की बड़ी सहायता की और सरकार को भी स्थानीय परिस्थितियों की सूचना बराबर भेजती रही। क़ानूनों के बनने के समय यह सरकार के सामने प्रजा पक्ष की बातें रखती और उनका समर्थन किया करती थी। सन् १८८० में लार्ड रिपन के शासन काल से इसने एक क़दम और आगे बढ़ाया

और भारतीयों की शिकायतें ब्रिटिश जनता एवं पार्लिमेन्ट के सामने तक पहुंचाने लगी। इल्बर्ट बिल के विरोध से अधगोरे हाकिमों की पोल खुल गयी, और भारतीय जनता की अश्रद्धा उन पर दिन पर दिन बढ़ने लगी, जिसने आगे चल कर सन् १८८५ में राष्ट्रीय कांग्रेस को जन्म दे दिया।

इस सभा के कार्यकर्ताओं में महाराष्ट्र के प्रायः सभी बड़े-बड़े नेताओं का नाम दिखाई देता है। प्रसिद्ध स्वर्गीय महादेव गोविंद रानाडे तो इसके जीवन-प्रारंभ ही थे। पूरे बीस वर्ष (सन् १८७५–१८९५) तक उनका संबंध इस सभा के साथ अत्यंत घनिष्ट बना रहा। श्रीयुत एस० एच० चिपलूणकर और श्री एस० एच० साथे इस काम में इनके लेफ्टिनेन्ट थे। इनके अतिरिक्त लो० तिलक, माननीय गोखले, श्री एन० सी० केलकर, श्रीयुत खापर्डे, श्रीयुत पटवर्धन, श्रीयुत शिवराम महादेव परांजपे आदि के नाम भी इस सभा के प्रमुख कार्य कर्ताओं में लिए जा सकते हैं।

सभा की स्थापना के समय उसके कोष में एक पैसा भी न था। पहले साल चंदे द्वारा २५८३) रु० एकत्र किया गया। इसके पश्चात् इसका कोष दिन पर दिन बढ़ता ही गया और इसे धन का कभी विशेष कष्ट नहीं उठाना पड़ा।

सभा का भवन और पुस्तकालय

आरंभ में सभा का काम मँगनी के या किराये के मकानों से चलाया जाता रहा। किन्तु फिर शीघ्र ही उसके पास एक निज का तिमँज़ला मकान हो गया, जो १५,०००) रु० में ख़रीदा गया था। इसमें से ६,०००) रु० परलोकगत "सार्वजनिक काका" की स्मृति में इकट्ठे किये गये थे, और ९०००) रु० सभा के कोष से दिये गये थे। इस मकान में जो बड़ा हाल है उसका नाम "सार्वजनिक काका" के नाम पर "गणेश वासुदेव जोशी हाल" रखा गया है, और इसमें सभा की

मीटिंग हुआ करती है। इसी मकान में सभा की एक बहुमूल्य लाइब्रेरी भी है, जिसमें बहुत से प्राचीन तथा मूल्यवान् ग्रंथ एकत्रित हैं।

मुख-पत्र

जुलाई सन् १८७८ से सभा की ओर से एक त्रैमासिक पत्र "Quarterly Journal भी प्रकाशित किया जाता है, जिसका सम्पादन कुछ समय तक स्वर्गीय श्रीयुत गोखले ने भी किया था।

अखिल-भारतवर्षीय-महिला-सम्मेलन

(All India Women's Conference)

जन्म

जिस प्रकार राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म एक अंग्रेज़ सज्जन के प्रयत्नों का फल था, उसी प्रकार इस महिला-सम्मेलन का जन्म भी एक अंग्रेज़ महिला की कोशिशों का परिणाम है। इसकी जन्म-कथा इस प्रकार हैं:—



(बेगम हामिद अली)

सन् १९२६ में बंगाल शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर ने कलकत्ते के बेथून कालेज में पारितोषिक वितरण के अवसर पर भारतीय स्त्रियों को सम्बोधित करते हुए एक वाक्य कहा था, जिसका प्रभाव आगे चलकर बड़ा परिणामकारी हुआ। उसने कहा था कि भारतीय महिलाओं का कर्तव्य है कि "वे हम से कहें कि वे क्या चाहती हैं, और जब तक उनका कहा पूरा न कर दिया जाय तब तक वे बराबर उसे कहती ही रहें।"

उक्त कालेज की भूतपूर्व प्रिंसिपल श्रीमती ए० एल० हाइड कोपर (Mrs. A. L. Hudekoper) ने इस पर दो लेख तैयार किये और उन्हें विमेन्स-इन्डियन-एसोसिएशन, अडयार की मुख्य मासिक-पत्रिका "स्त्री धर्म" में छपवाया। इसके पश्चात् इसी एसोसिएशन की मन्त्राणी श्रीमती मार्गरेट ई० कज़िन्स (Mrs. Margaret E. Cousins) ने समस्त भारतीय स्त्रियों के नाम एक अपील प्रकाशित की, जिसमें प्रार्थना की गयी कि वे अपने-अपने यहाँ महिला-कमेटियों का संगठन करके प्रत्येक प्रान्त एवं रियासत में महिला-कान्फ़रेन्स बुलावें और स्त्री-शिक्षा के प्रश्न पर अपनी सम्मति प्रकट करें।

इस अपील का प्रभाव आशातीत दिखाई पड़ा, और सितम्बर १९२६ से लेकर दिसम्बर १९२६ तक २२ भिन्न-भिन्न स्थानों में महिला कान्फ़रेन्सें की गयीं, जिसके परिणाम-स्वरूप इस अखिल-भारतीय-महिला-सम्मेलन का भी जन्म दिखाई पड़ा।

प्रथम अधिवेशन

इस सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन पूना में तारीख़ ५ जनवरी सन् १९२७ को आरंभ हुआ था। बड़ौदा की महारानी श्री चिमनाबाई साहब गायकवाड़ ने इसमें अध्यक्षा का आसन ग्रहण किया, और श्रीमती कज़िन्स साहबा मन्त्राणी बनीं। इस अधिवेशन में प्रायः सब प्रस्ताव स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में ही—प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा एवं वयस्क-शिक्षा तक—पर पास किए गये। हाँ, एक प्रस्ताव बाल-विवाह की निन्दा में भी पास हुआ था।

अन्य अधिवेशन

तब से आज तक इस सम्मेलन के चौदह वार्षिक अधिवेशन हो चुके हैं, जिनकी सभानेत्रियों और स्थानों की सूची इस प्रकार है:—

(१) दूसरा अधिवेशन दिल्ली में सन् १९२८ में हुआ था, अध्यक्षा बेगम भूपाल थीं। (२) तीसरा पटना में सन् १९२९ में, अध्यक्षा रानी मांडी थीं। (३) चौथा बम्बई में सन् १९३० में, अध्यक्षा श्रीमती सरोजनी नायडू। (४) पाँचवां लाहौर में सन् १९३१ में, अध्यक्षा डा० मुथूलक्ष्मी रेड्डी। (५) छठवाँ मद्रास में सन् १९३२ में अध्यक्षा श्रीमती पी० के० रे। (६) सातवाँ लखनऊ में सन् १९३३ में अध्यक्षा श्रीमती रमन भाई नीलकंठ। (७) आठवाँ कलकत्ते में अध्यक्षा लेडी अब्दुल क़ादिर। (८) नवाँ करांची में दिसम्बर सन् १९३४ में अध्यक्षा श्रीमती रुस्तम जी फ़रदून जी। (९) दसवाँ त्रिवेन्द्रम् में दिसम्बर सन् १९३५ में अध्यक्षा महारानी सेतु पार्वती बाई साहिबा, त्रावंकोर। (१०) ग्यारहवां अहमदाबाद में सन् १९३६ में अध्यक्षा श्रीमती कज़िन्स। (११) बारहवां नागपुर में सन् १९३७ में अध्यक्षा राजकुमारी अमृत कुँवर। (१२) तेरहवां दिल्ली में सन् १९३८ में अध्यक्षा श्री रानी लक्ष्मीबाई राजवाड़े, ग्वालियर और। (१३) चौदहवां वार्षिक अधिवेशन दिसम्बर सन् १९३९ में इलाहाबाद में हुआ, जिसकी अध्यक्षा बेगम हामिद अली हुईं।

उद्देश्य और नीति

सम्मेलन के विधान में उसके उद्देश्य इस प्रकार वर्णित हैं:—

(१) स्त्रियों और बच्चों की सब प्रकार की उन्नति और भलाई के लिए मुस्तैदी से काम करना।

(२) स्त्रियों और बच्चों में सच्ची नागरिकता के भावों को उत्पन्न करना और बढ़ाना।

(३) शिक्षा की सही रास्ते पर उन्नति करना।

(४) समाज सुधार पर ज़ोर देना और उसके लिए काम करना।

(५) सबको बराबरी का अधिकार तथा अवसर दिलाने के लिए प्रयत्न करना।

(६) भारत में ऐक्य स्थापित करने की कोशिश करना।

(७) जीवन के सम्पूर्ण विभागों में उच्च नैतिक आदर्श स्थापित करना और उसकी माँग करना।

(८) अंतर्राष्ट्रीय सौहार्द तथा विश्व-शांति का पक्ष ग्रहण करना।

सम्मेलन की कार्य-नीति "यहाँ की तमाम राजनैतिक दल बन्दियों से अलग रह कर भारतवासियों की भलाई से संबंध रखने वाले, विशेष कर स्त्रियों और बच्चों की भलाई से संबंध रखने वाले प्रश्नों और समस्याओं पर विचार करना तथा सहायक बनना है।"

प्रस्ताव

आरंभ में सम्मेलन के प्रस्ताव केवल स्त्रियों और बच्चों की शिक्षा एवं समाज-सुधार संबंधी प्रश्नों तक ही परिमित थे। किन्तु आगे चल कर उसका विचार-क्षेत्र व्यापक होने लगा। यहां तक कि अब कोई भी ऐसा आवश्यक प्रश्न नहीं दिखाई देता, जिस पर उसने अपनी सम्मति न प्रकट की हो। स्थूल रूप से इसके आज तक के तमाम प्रस्ताव निम्न-लिखित विभागों में बाँटे जा सकते हैं:—(१) शिक्षा; (२) स्वास्थ्य; (३) राष्ट्रभाषा; (४) सामाजिक प्रश्न; (५) स्त्रियों के क़ानूनी अधिकार; (६) स्त्री और बच्चों की बिक्री; (७) स्वदेशी कला-कौशल और ग्रामोद्योग; (८) मज़दूर और कृषक-संबंधी प्रश्न; (९) जीवों पर दया, तथा (१०) अंतर्राष्ट्रीय प्रश्न, वर्तमान युद्ध और विश्व शांति।

शिक्षा-विषयक प्रश्न पर अत्यधिक व्यापकता के साथ ध्यान दिया गया है। लड़कों के साथ-साथ लड़कियों को भी एक ही दर्जे में पढ़ाने की व्यवस्था; दोनों ही के लिए निःशुल्क अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा; किंडर-गार्टन और मांटेसरी विधियों की हर जगह व्यवस्था; माध्यमिक शिक्षा में काम विज्ञान (Sex hygiene); गार्हस्थ्य शास्त्र तथा अन्य स्त्रियोचित विषयों का समावेश; कालेज शिक्षा में संपादन-कला; गृह निर्माण विद्या; उच्च गार्हस्थ्य शास्त्र; समाज शास्त्र तथा अन्य सुकुमार कलाओं की आवश्यकता, छात्राओं के लिए विशेष



(श्रीमती विजया लक्ष्मी पंडित)

वृत्तियों का प्रबंध; शिक्षिकाओं की ट्रेनिंग; वयस्क-शिक्षा; सार्वजनिक शिक्षा (Mass education) शिक्षा में देशी भाषा का माध्यम; हिंदुस्तानी राष्ट्रभाषा इत्यादि प्रायः सभी प्रश्नों पर प्रस्ताव पास किये गये हैं। स्वास्थ्य शिक्षा, स्कूलों में डाक्टरी जाँच तथा दूध की व्यवस्था पर भी ज़ोर दिया गया है। साथ ही संतति-निग्रह तथा दाइयों की अनिवार्य रजिस्ट्री का प्रश्न भी छूटने नहीं पाया।

सामाजिक प्रश्नों में पर्दा-निवारण, बहुविवाह, बाल-विवाह, अंतर्जातीय-विवाह, हिंदू स्त्रियों के तलाक़ का अधिकार,

हरिजन सेवा, अछूतोद्धार, भिखमंगों के लिए क़ानून, मादक वस्तु-निषेध, सिनेमा, फ़िल्मों पर निगरानी, तीसरे दर्जे के रेलवे यात्रियों की दशा, जेल में स्त्रियों की दशा, विवाहों में फ़िजूल ख़र्ची आदि विषयों पर प्रस्ताव हुए हैं। हर सीग़े में स्त्रियों को पुरुषों के समान क़ानूनी अधिकार दिलाने की भी चेष्टा की गयी है। उनके उत्तराधिकार के क़ानून, तलाक़ के क़ानून तथा विधवाओं के अधिकार सम्बन्धी क़ानून में संशोधन के लिए भी ज़ोर दिया गया है। साथ ही तमाम सरकारी एवं अर्द्ध सरकारी संस्थाओं तथा नौकरियों में स्त्रियों के पूर्ण प्रतिनिधित्व की भी आवश्यकता बतलायी गयी है। इसी प्रकार अन्य विषयों पर भी प्रस्ताव हुए हैं, जिनका पूरा ब्यौरा स्थानाभाव से यहां नहीं दिया जा सकता।

सब से अधिक प्रशंसनीय बात जो इस संस्था के विषय में कही जा सकती है, वह यह है कि इसमें अभी तक साम्प्रदायिकता की हवा नहीं आने पायी। प्रत्युत नवीन शासन विधान के बनने के समय इसकी ओर से जो मेमोरेन्डम पेश किये गये थे और जो गवाहियां दी गयी थीं उनमें लगातार और ज़ोरों के साथ सांप्रदायिक तथा विशेष निर्वाचनों के विरुद्ध राय दी गयी थी।

शाखाएँ और उपशाखाएँ

इस सम्मेलन की लगभग २८ शाखाएँ और ८० उप शाखाएँ देश के प्रायः हर एक भाग में काम कर रही हैं।

आयव्यय

सन् १९३८ के अंत में साल भर के आय-व्यय का जो ब्यौरा दिया गया है, उससे जान पड़ता है कि ८१३७॥=)॥ उस वर्ष सम्मेलन की आय थी, और ५३०१।-)॥। उसने व्यय किया। आय का मुख्य द्वार दान में प्राप्त की हुई रक़म तथा सदस्यों, प्रतिनिधियों एवं उप

सभापतियों की फ़ीस थी। व्यय में दफ़्तर का ख़र्च, कर्मचारियों की तनख़्वाह, छपाई ख़र्च तथा अन्य फुटकर ख़र्च शामिल हैं।

टिप्पणी

यद्यपि इस संस्था ने देश भर में अपना विस्तार काफ़ी बढ़ा लिया है और इसकी आर्थिक अवस्था भी बुरी नहीं दीखती, किन्तु फिर भी अभी तक वास्तव में यह केवल ऊँचे दर्जे की पढ़ी-लिखी स्त्रियों की ही संस्था बनी हुई है। मज़दूर और देहाती स्त्रियों में तथा देश की अशिक्षित महिलाओं में, जहाँ इसका वास्तविक कार्य क्षेत्र होना चाहिए, इसकी पैठ अभी तक नहीं हो सकी है। इसके अतिरिक्त इसके विचारों में भी पाश्चात्य सभ्यता का रंग ज़रूरत से अधिक दिखाई पड़ता है। उदाहरणार्थ बालक और बालिकाओं की ऊँचे दर्जों में भी एक साथ शिक्षा, सरकारी नौकरियों और संस्थाओं में स्त्रियों का बराबरी का हक़ इत्यादि ऐसे प्रश्न हैं जिनमें बहुतों का इस संस्था के साथ मतभेद हो सकता है। किंतु सब कुछ होते हुए भी यह संस्था प्रगतिशील और होनहार जान पड़ती है और आगे कार्य-क्षेत्र बढ़ने पर संभव है, यह देश के सम्पूर्ण स्त्री समाज का सच्चा प्रतिनिधित्व प्राप्त कर सके।

——:०:——

अखिल-भारतीय-हरिजन-सेवक-संघ

स्थापना की सूचना

सांप्रदायिक निर्णय में हिन्दुओं को बांट कर दो टुकड़े कर दिये जाने पर, उसके फलस्वरूप हिन्दुओं में बड़ी खलबली मची। यहाँ तक कि इसके प्रतिवाद में गांधीजी ने तो आमरण उपवास भी किया। बंबई में २५ सितम्बर को पं० मदनमोहन मालवीय के सभापतित्व में अखिल भारतीय हिन्दू प्रतिनिधियों की एक कानफ़रेन्स हुई, जिसमें यह प्रस्ताव पास हुआ—

"यह सम्मेलन निश्चय करता है कि हिन्दुओं में कोई जन्म से अछूत नहीं होगा, और जो अब तक ऐसे समझे गए हैं, वे सार्वजनिक कुओं, सड़कों तथा सार्वजनिक संस्थाओं के सम्बन्ध में अब से ऐसे नहीं समझे जायँगे। जल्द से जल्द यह बात क़ानून में दर्ज कर दी जायगी, और स्वराज्य धारा-सभा की तो यह पहली बात होगी। इसके साथ ही प्रत्येक हिन्दू नेता का कर्तव्य होगा कि रिवाज के कारण कथित अछूतों पर मन्दिर प्रवेश आदि के सम्बन्ध में जो रोक हैं, उनको वैध तथा शान्तिपूर्ण उपाय से हटावें।"

प्रारंभ

३० सितम्बर को महामना मालवीय जी के सभापतित्व में एक दूसरी सभा हुई, जिसमें Anti-untouchability league नाम की सभा

स्थापित हुई। इसके ये उद्देश्य क़रार पाये—(१) सार्वजनिक कुएं, धर्मशालाएं, सड़कें, स्कूल, श्मशान, आदि अछूतों के लिए उन्मुक्त हों। (२) सब मन्दिर उन्मुक्त कर दिये जायँ। इसके सभापति और मन्त्री क्रमशः श्री बिरला और ठक्कर बाबा हुए।

इसी लीग का नाम बाद को हरिजन-सेवक-संघ हो गया और २६ अक्टोबर १९३२ को इसका विधान बना।

संघ के कार्य

संघ के कार्यक्रम में अछूतों की शिक्षा-सम्बन्धी आर्थिक और सामाजिक उन्नति वर्णित है। इसके विधान में यह भी लिखा है कि "बाक़ी हिन्दुओं के साथ अछूतों को सम्पूर्ण रूप से बराबरी का दर्जा दिलाना" संघ का उद्देश्य है, किन्तु हमें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि ऊँची जातियों के साथ अछूतों का सहभोज या विवाह कराना हरिजन-सेवक-संघ के कार्यक्रम में नहीं है। हमारी यह समझ में नहीं आता कि इन दोनों बातों के आम हो जाने तक कैसे यह कहा जा सकता है कि कथित अछूतों को ऊँची जातियों के साथ बराबरी का दर्जा मिला। केवल सड़क, और मन्दिरों को खोलना हमारी समझ में कोई विशेष सुधार नहीं, एक हद तक यह शायद उनको धोखा देकर उनके अन्दर के विद्रोह को दबा देना है। यह परम आश्चर्य की बात है कि अछूतों की सामाजिक क्या तकलीफ़ें हैं तथा उनकी समस्याओं का केन्द्रविन्दु क्या है, उसको समझने की चेष्टा हिन्दुओं के नेता तथा हरिजन-सेवक-संघ के संस्थापकगण भी नहीं करते।

संघ का क्षेत्र

फिर भी संघ ने कुछ हितकर कार्य किये हैं, जिनमें ये हैं—

(१) अछूतों के लिए विद्यालय।

(२) हरिजन बस्तियों के लिए कुएं खुदवाना।

(३) अछूत छात्रों को भत्ता तथा वृत्ति दिलवाना।

(४) अछूत विद्यार्थियों को मुफ़ पुस्तकें।

हरिजन-आश्रम तथा कुछ गुरुकुल भी खोले गये हैं। आश्रमों में नये तरीक़े पर जूता, चटाई आदि बनाना अछूतों को सिखाया जाता है, यानी मोचियों को मोची और चमारों को चमार ही रक्खा जाता है। हरिजन-सेवक-संघ का राजनीति से कोई सम्पर्क नहीं है, किन्तु यह स्पष्ट है कि वह कांग्रेसी प्रभाव विशेष कर गांधी जी के प्रभाव में है। कहना न होगा कि महात्मा जी ने अछूतों की बड़ी सेवा की है, किन्तु अछूतों की सारी असमर्थताओं की पोल को सम्यक् रूप से समझने के साहस के अभाव के कारण वे हमेशा एक हद तक ही सेवा कर पाये।

हरिजन-सेवक-संघ का विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होगा कि यह उच्चवर्णवालों द्वारा संगठित एक सुधारवादी संस्था है। इसके ये पदाधिकारी हैं—

सभापति—श्री घनश्यामदास बिड़ला

उपसभानेत्री—श्रीमती रामेश्वरी नेहरू

मंत्री—श्री ए० वी० ठक्कर

कोषाध्यक्ष—श्री मुरलीधर डालमियाँ

उप-मंत्री—श्रीश्यामलाल

आवश्यकता इस बात की है कि 'बराबरी का दर्जा' दिलाने का एक क्रान्तिकारी दृष्टिकोण लेकर यह संघ संगठित हो; ऐसा नहीं है, तभी डाक्टर अम्बेडकर ऐसे व्यक्ति के पनपने की गुंजाइश हो जाती है।

प्रतिवर्ष संघ का एक अधिवेशन होता है, उसमें संघ के नियम तथा कार्य की आलोचना होती है। जनवरी १९४० में दिल्ली में इसकी पिछली कान्फ़रेंन्स हुई थी, जिसमें गान्धी जी भी थे।

—:o:—

अखिल-भारत-चर्खा-संघ

यद्यपि यह संस्था राजनैतिक नहीं है, किन्तु गत बीस वर्षों से स्वदेशी प्रचार—ख़ास कर चर्ख़ा और खद्दर—आर्थिक दृष्टि से वर्त्तमान राजनीति का प्रधान अंग रहा है। अतः पाठकों की जानकारी के लिए इसका उल्लेख करना आवश्यक समझा गया। स्वदेशी आन्दोलन के पूर्व तथा उसके दरम्यान में भी अरबों रुपयों का सामान विदेशों से आता था। परिणाम यह हुआ कि कला-कौशल के ह्रास के साथ-साथ देश की दरिद्रता भी उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। इसी दरिद्रता को दूर करने एवं भारतीय कला-कौशल की उन्नति में सहयोग देने के लिए गत दस वर्षों में, स्थान-स्थान पर कितनी ही स्वदेशी लीगों की थापना हुई है, जिनका उद्देश्य स्वदेशी-आन्दोलन को शीघ्र सफल बनाना है। ये लीगें स्थान-स्थान पर प्रतिवर्ष स्वदेशी वस्तुओं की प्रदर्शिनी करके जनता में स्वदेशी के प्रचार का प्रयत्न कर रही हैं।

विदेशों से आने वाली वस्तुओं का तख़मीना

७७ लाख की चूड़ियां, ७७ लाख की शीशे की पोतें, (दाने या गुरियां), डेढ़ करोड़ का कपड़े धोने का साबुन, १ करोड़ का बदन में लगाने का साबुन, १६ लाख का सुगंधित तेल, २२ लाख का मुंह में मलने का पाउडर, १४ लाख का मुंह में लगाने का क्रीम, १५ लाख के सेंट, ९ लाख के फ़ीते, १५ लाख के बालों में लगाने के हेयरपिन, २६ लाख के कंघे, ४ लाख के सेफ़्टीपिन, ३२ लाख के

बटन, ४ लाख के हेयर ब्रुश, ३ लाख के टूथ ब्रुश, २१ लाख के खेलने के ताश, ३० लाख की लैसें, ५७ लाख के बिस्कुट, २७ लाख के लाज़ेज़, सवा करोड़ का गाढ़ा दूध (Tinned Milk) सवा करोड़ का खाना (Infant's food) करोड़ों की इसी प्रकार की अन्य खाने पीने की वस्तुएँ, १९ करोड़ की चीनी, ४ करोड़ के सिगरेट-सिगार, ४ करोड़ के काग़ज़ के सोख़्ते, ३६ लाख के लिफ़ाफ़े और चिट्ठियों के काग़ज़, ६ लाख की स्लेटें और पेंसिलें, २० लाख के होल्डर्स, ११ लाख की काग़ज़ की पेंसिलें, ३४ लाख के चाक़ू, १० लाख की क़ैंचियां, २० लाख की लालटेनें, १० लाख की टार्चें, ११ लाख के स्टोव, ढाई करोड़ के ताले, ४ लाख के लोहे के बर्तन, साढ़े चार लाख के एनेमेल के बर्तन, ३ लाख के एलूमीनियम के बर्त्तन, २ लाख के चाय के सेट, १ करोड़ के जूते, १७ लाख की जूते की पालिश, १७ लाख के जूते के फ़ीते साढ़े तीन करोड़ की शराब, २ करोड़ की दवाएं, ३ करोड़ के केमिकल, ५ करोड़ की मोटर, १६ करोड़ की मशीनें, डेढ़ करोड़ का नमक, ३-४ करोड़ के टीन, सेलोलाइट, गटापार्चा के खिलौने, ६०-७० करोड़ के कपड़े, कई लाख का सिंदुर (स्त्रियों के मस्तक में लगाने का)। इस प्रकार अमीर ग़रीब सभी के प्रतिदिन के काम में आने वाली हज़ारों छोटी छोटी चीज़ें करोड़ों, अरबों की प्रति वर्ष विदेशों से आती हैं।

चर्खा-संघ

यद्यपि चर्खा-संघ का उक्त चीज़ों के साथ कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है, किन्तु चर्खा और खादी प्रचार ने देश में स्वदेशी आन्दोलन की एक ज़बर्दस्त लहर पैदा कर दी है और चूंकि चर्खा कातने और खादी बिनने के काम का सम्बन्ध देश के करोड़ों स्त्री, पुरुषों से है, जिस का संचालन सुसंगठित रीति से चर्खा-संघ कर रहा है। संक्षेप में इस संस्था के नियम इस प्रकार हैं:—

१—आल-इंडिया-कांग्रेस-कमेटी की अनुमति से सूत कातने वालों का एक अखिल-भारतीय-चर्खा-संघ स्थापित किया जा रहा है। यह कांग्रेस का एक अखंड अंग होगा।

२—इस संघ में मेम्बर, सहायक और दान देने वाले होंगे। और संघ की व्यवस्था का संचालन एक ट्रस्टी-मंडल के द्वारा होगा।

ट्रस्टीमंडल के मेम्बर—

१—श्री मोहनदास करम चंद गांधी, २—सेठ जमनालाल बजाज़, ३—श्री श्री कृष्णदास जाजू, ४—श्री जी० बी० देश पांडे, ५—श्रीकोंडा वैंकटापैया, ६—श्री डा० राजेन्द्रप्रसाद, ७—श्री पं० जवाहर लाल नेहरू, ८—श्री धीरेन्द्र मजुमदार, ९—श्री वल्लभ भाई पटेल, १०—श्री लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम, ११—श्री एस० जी० बेंकर, १२—श्री गोपबन्धु चौधरी।

३—सहायक मेम्बर को खद्दर पहनना होगा और १२) सालाना चन्दा देना होगा।

४—खद्दर पहनने वाला और ५००) पेशगी देने वाला संघ का आजीवन सहायक सदस्य होगा।

संघ की शाखाएं

मध्यप्रांत-महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, काश्मीर, केरल, पंजाब, राजस्थान, सिंध, तामिलनाड, संयुक्तप्रांत, उत्कल।

उद्देश्य

संघ का उद्देश्य भारतवर्ष के हर एक घर को उसकी कपड़े की आवश्यकता के सम्बन्ध में खादी द्वारा स्वावलंबी बना देना और कपास बोने से लेकर कपड़ा बिनने तक रुई की तरह-तरह की क्रियाओं में जो जो लोग काम करते हैं, उन सब की और ख़ास कर कत्तिनों की भलाई में वृद्धि करना है।

खादी की उत्पत्ति और विवरण

संघ की सब शाखाओं ने सन् १९३८ में १,००,५०,४१६ वर्ग गज़ और प्रमाणित संस्थाओं ने २५, ०९, १७८ वर्ग गज़ खादी तैयार की है जिसका मूल्य क्रम से ४४,५३, ९४२ रु० और १०, ४५, ५४४, रु० है। इसके अतिरिक्त गुजरात प्रांत में ग्रामीण कुटुम्बों ने २२, ९०५ वर्ग गज़ खादी तैयार की। जिसका मूल्य ११,०३९ रु० है। शाखाओं के कार्य कर्त्ताओं की संख्या २,२२१ और प्रमाणित संस्थाओं के कार्य कर्त्ताओं की संख्या ३५६ थी। खादी का कार्य इस वर्ष १३, २६५ ग्रामों में हुआ। चर्ख़ा-संघ की शाखाओं के कताई और बुनाई के केन्द्र ६६६ और प्रमाणित संस्थाओं के २१७ हैं।

कुल रजिस्टर्ड कत्तिनों की संख्या २,८१,८८० और बुनकरों की १८,६३२ है। इसके अतिरिक्त अन्य कारीगर—ओटने वाले, धुने, धोबी, रंगरेज़, छीपी, दर्ज़ी आदि रजिस्टर्ड ६,७४७ कारीगरों ने काम किया। इस वर्ष मज़दूर कत्तिनों को कुल २१,१४८,२४ रु०, बुनकरों को ११,९८,८०३ रु० दिये गये। अन्य कारीगरों को ५,६५, १३१ रु० दिये गये।

इस प्रकार देश के ग़रीबों ने इस उद्योग द्वारा काफ़ी रुपयों का काम किया और देश की पूंजी का एक बहुत बड़ा परिमाण अपने ही देश में रहा। यदि भारतीय जन-समुदाय पूर्ण रीति से इसमें योग दे और इसके साथ ही साथ अन्य उद्योग धंधों की ओर संगठित रूप से ध्यान दे तो देश की आर्थिक समस्या की कठिनाई अधिक अंश में और शीघ्र हल हो सकती है।

—:o:—

इन्डियन-सिविल-लिबरटीज़-यूनियन

इंडियन-सिविल-लिबरटीज़-यूनियन का प्रारंभ अप्रैल, सन् १९३६ ई० से होता है, जिस समय पं० जवाहर लाल नेहरू ने विभिन्न-दलों के स्त्री-पुरुषों—राजनीतिज्ञ नेता, वकील, लेखक, शिक्षित-व्यक्ति, समाज-सुधारक-कार्यकर्त्ता और मज़दूर नेताओं के पास एक गश्ती चिट्ठी इस आशय की भेजी थी, जिसमें उनके मौलिक नागरिक अधिकारों की रक्षा तथा उन्नति के लिए संगठन की आवश्यकता बतलायी थी। यह प्रस्ताव किया गया था कि यह संघटन उन सभी लोगों के लिए खुला रहेगा जिनका राष्ट्रीय-कर्मक्षेत्र के लिए नागरिक स्वत्वों की रक्षा में विश्वास हो। यह भी कहा गया था कि यह संस्था और दूसरे राजनैतिक तथा आर्थिक उलझनों से स्वतंत्र हो। एक विधान का मसविदा तैयार किया गया और राष्ट्रीय-समिति (National Council) की स्थापना उसी साल के अगस्त महीने में हुई। यह भी निश्चय हुआ था कि प्रधान-कार्यालय, अन्य शाखाओं से संबंधित करने के लिए, संगठन के कार्य की उन्नति तथा अन्य और दूसरी संस्थाएँ जो अपने विशेष तरीक़े से नागरिक स्वतंत्रता की रक्षा करने में संलग्न हैं, उन से भी संबंध रखने के लिए, बंबई में खुले।

इस संघ के सभापति डाक्टर रवीन्द्र नाथ टैगोर तथा चेयरमैन श्रीमती सरोजनी नायडू हैं। सन् १९३७ के फ़रवरी महीने में जब केन्द्रीय कार्यालय ने कार्य प्रारंभ किया तो डाक्टर के० बी० मेनन मंत्री और मिस्टर जी० पी० हत्थी सिंह अवैतनिक कोषाध्यक्ष नियुक्त हुए।

प्रारंभ में संघ का कार्य नागरिक स्वतंत्रता से संबंध रखने वाली सत्य बातों का संग्रह तथा प्रकाशन करना ही रहा है। इस अभिप्राय

से संघ हर दूसरे सप्ताह में एक विज्ञप्ति प्रकाशित करता है जिस में ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतों की नागरिक स्वतंत्रता (Civil Libertises) की शाखाओं की एक सूची दी जाती है। इन्हें मज़बूत बनाया जाता है और प्रति वर्ष नागरिक स्वतंत्रता की दशा पर वार्षिक रिपोर्ट भी प्रकाशित होती है।

यह विज्ञप्ति स्थानीय प्रेस को दी जाती है जिसकी प्रतिलिपि इंग-लैंड, यूरोपीय देशों और संयुक्त राज्य अमेरिका को भी बज़रिए डाक के भेजी जाती है। जब भारत में नागरिक स्वतंत्रता के संगीन मसले खड़े हो जाते हैं तो उन पर केन्द्रीय कार्यालय से विशेष वक्तव्य भी जारी किए जाते हैं। यूनियन की ओर से नागरिक-स्वतंत्रता हड़पने के विरोध में सभाएँ की जाती हैं और जब आवश्यकता होती है तो सीधा प्रनिनिधि मंडल भी भेजा जाता है। शाखाएं उसी प्रकार अपने अपने स्थानों में कार्य करती हैं। जनता को नागरिक-स्वतंत्रता-संबंधी शिक्षा देने के लिए भी यूनियन ने प्रयत्न किया है, जो इश्तहार और बड़े-बड़े लोगों के व्याख्यानों द्वारा किया जाता है। केन्द्रीय दफ़्तर ने "भारतीय-प्रेस-क़ानून" पर भी अपना स्वतंत्र विचार प्रकाशित कराया है।

केन्द्रीय दफ़्तर ने भारत की उन संस्थाओं से निकट संपर्क रक्खा है जो संघ के कार्य में लाभ-प्रद हैं या जिनकी कार्यवाही संघ से मेल जोल खाती है। जैसेः—अखिल-भारतीय-किसान-सभा, अखिल-भार-तीय-क़ैदी-मुक्ति-सभा, मज़दूर-दल और कांग्रेस। "नागरिक-स्वतंत्रता की राष्ट्रीय-समिति इंगलैंड की 'नागरिक-स्वतंत्रता की राष्ट्रीय-समिति' तथा फ्रांस और अमरीका की 'नागरिक-स्वतंत्रता-संघ, से भी इसका सम्बन्ध है तथा इंगलैंड वाली समिति में इसका एक प्रतिनिधि भी रहता है।

——:o:——

ईसाई कांफ्रेन्स

राष्ट्रीयता का रुख़

भारत का ईसाई समाज बहुत दिनों तक इस धोखे में रहा कि चूँकि भारत के शासक अंग्रेज़ ईसाई हैं, इसलिए वे भी साम्राज्य के हिस्सेदार हैं। शुरू शुरू में ऐसा ही हुआ, किन्तु बाद को जब ईसाई संख्या में बढ़ गये तो धीरे धीरे-धीरे उनकी समझ में आने लगा कि उन्हें यहीं रहना है; इसलिए राष्ट्रीय मांगों के विरुद्ध जाना तथा साम्राज्यवाद का हर समय साथ देना उनके लिए ख़तरनाक है। फिर मामूली ईसाइयों की हालत मामूली हिन्दू या मुसलमानों की हालत से कुछ अच्छी नहीं थी। इन्हीं सब कारणों से भारतीय ईसाइयों का रुख़ राष्ट्रीयता की ओर गया।

कई संस्थाएं

ईसाइयों की कई कानफ़रेन्सें समय-समय पर होती रही हैं, एक तो अखिल-भारतीय-ईसाई कानफ़्रेंस है, फिर अखिल भारतीय कैथोलिक कानफ़्रेंस है; फिर और ईसाई धर्म के छोटे-मोटे सम्प्रदायों की भी अलग कानफ़रेंसें धार्मिक-सामाजिक दृष्टि से हुआ ही करती हैं, किन्तु दिसम्बर १९३९ में इनकी जो एक राजनैतिक कानफ़रेंस हुई है वह राजनैतिक रूप से महत्व रखती है, हम विशेष कर उसी का ज़िकर यहां करेंगे। उस कानफ़रेंस को विशेष कर बुलाने की आवश्यकता इसलिए हुई कि इस के कुछ दिन पहले मि० जिन्ना ने जो यह दावा

किया था कि भारत के समस्त अल्प संख्यक दलों के प्रतिनिधि विशेष कर भारतीय ईसाइयों के प्रतिनिधि हैं, इसका प्रतिवाद करना था। भारतीय ईसाइयों की आम राय यह थी कि वर्तमान समय में दूसरे अल्प संख्यकों की तरह हर मौक़े पर सांप्रदायिक दृष्टिकोण से चलना तथा उनका साथ देना ईसाई सम्प्रदाय के लिये घातक होगा; क्योंकि ईसाइयों की संख्या कांग्रेस प्रान्तों में ही अधिक है।

कान्फ़रेंस के नेता

इस कानफ़रेंस में जो लोग निमन्त्रित किये गये थे, वे अधिकतर केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं में चुने गये भारतीय प्रतिनिधि हैं।

इसमें बम्बई, बिहार, युक्त प्रान्त तथा बंगाल के लगभग २० प्रतिनिधि हैं, जिनमें राष्ट्रीय और ग़ैर-राष्ट्रीय दोनों मतों के लोग हैं। इनके अतिरिक्त ५० भारतीय ईसाइयों ने अपने मत लिख कर भेजे थे। कान्फ़रेंस अ० भा० भारतीय-ईसाई-एसोसिएशन के अध्यक्ष डा० एच० सी० मुकर्जी और मि० बेल्टी शाह जिवानी ने बुलायी थी।

प० जवाहरलाल नेहरू का सन्देश

पं० नेहरू ने इस कानफ़रेन्स को निम्नलिखित सन्देश भेजा—

मुझे यह देख कर ख़ुशी हुई कि बहुतेरे प्रमुख हिन्दुस्तानी ईसाइयों ने उन बातों को मानने से इंकार कर दिया, जिन्हें अन्य प्रतिक्रियावादी लोग भारतीय ईसाइयों के नाम पर कहा करते हैं। पहिले यह क़ायदा था कि हिन्दुस्तानी ईसाई अपने को अन्य भारतीय जनता से अलग समझा करते थे, किन्तु अब वह समय बदल गया है। यदि हम घटनाओं को ठीक ऐतिहासिक दृष्टि से देखें और समझें तो यह मालूम होगा कि भारतीय स्वतन्त्रता के आने के साथ यह भेद-भाव का वातावरण भी दूर हो जायगा। भविष्य में भारतीय स्वतन्त्रता का

जो राज्य होगा उसमें वह राज्य किसी भी धर्म का प्रतिनिधित्व न करेगा।

हिन्दुस्तानी ईसाइयों को चाहिए कि वे हर तरह के भेदभावों और बाधाओं की जंज़ीरें तोड़ कर राष्ट्रीयता और भारतीय स्वतन्त्रता का साथ दें। ऐसा करके वे आगे अपने लिए स्वतंत्र भारत में अपना स्थान पैदा कर लेंगे। अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए किसी विदेशी राष्ट्र का मुंह ताकना सब से बड़ी ग़लती है, और इससे ख़ुदग़र्ज़ी भी मालूम होती है। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि कोई भी विदेशी राष्ट्र दीर्घकाल तक किसी के स्वार्थों की रक्षा नहीं कर सकता। इस दृष्टि से भारतीय ईसाइयों ने धार्मिक विश्वास के आधार पर भारतीय जनता का प्रथक् भाव और साम्प्रदायिक चुनाव का विरोध करके बहुत अच्छा किया। इस तरह के भेद-भावों से जो संरक्षण मिलेंगे उनसे अल्पसंख्यकों की रक्षा न होगी, बल्कि दूसरी ओर उन से उन्हें हानि ही अधिक पहुँचेगी। अन्त में पं० नेहरू ने ईसाई कान्फ़रेंस से ऐसे अच्छे कार्यों के लिए आशा प्रकट की है जिनसे भारतीय राष्ट्र को लाभ पहुंचे।

कान्फ़रेन्स की कार्यवाही

कार्यवाही के सम्बन्ध में एक प्रामाणिक वक्तव्य निकाला गया है जिसके अन्दर कहा गया है कि भारत का सांप्रदायिक प्रश्न इतना गम्भीर है कि हम अपने वाद-विवाद को भारतीय ईसाइयों की समस्याओं तक ही सीमित नहीं कर सकते, हमने साम्प्रदायिक प्रश्न पर राष्ट्रीय जीवन के विस्तृत दृष्टिकोण से विचार किया है और हमारा ख़्याल है कि यही व्यावहारिक तरीक़ा है।

साम्प्रदायिकता का विरोध

जैसा कि सब को मालूम है। भारतीय ईसाई समाज ने सिद्धान्तरूप

से साम्प्रदायिकता का विरोध किया है। हम ज़ोरों से यह महसूस करते हैं कि साम्प्रदायिक समस्या धार्मिक कम और राजनैतिक अधिक है, हाल में जो बातें हुई हैं, उन से यह स्पष्ट हो गया है। इस खेदपूर्ण झगड़े में आर्थिक कारण जिनका प्रभाव सारी भारतीय जनता पर समान रूप से पड़ता है। भुला दिए गए हैं। हमारा मत है कि एक सुव्यवस्थित कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाय, जिसके अन्दर अनेक नागरिकों को यह विश्वास दिलाया जाय कि मनुष्य होने के नाते उनकी जो आवश्यकताएं हैं, वे पूरी की जायंगी। उस कार्य-क्रम को कार्यरूप में परिणित करने के लिए एक यंत्र या संगठन भी तैयार किया जाय। एक स्वतन्त्र और जनसत्तात्मक राज्य में जातियों का अस्तित्व स्वाभाविक है, किन्तु उन्हें झगड़े का कारण न बनकर सामाजिक जीवन को उन्नत बनाने में योग देना चाहिए।

मनुष्य के मौलिक अधिकारों की गारण्टी विधान में कर देनी चाहिए। यह बात भी उल्लेखनीय है कि भारतीय ईसाई अपने लिए कोई भी ऐसी चीज़ नहीं चाहते, जिसे प्रत्येक के लिए मांगने को वे तैयार नहीं हैं।

मि० जिन्ना का वक्तव्य खेदजनक

हमें खेद है कि मि० जिन्ना ने दिल्ली में एक वक्तव्य निकाल कर भारतीय ईसाइयों को भी उस साम्प्रदायिक झगड़े में घसीटा है, जो राजनैतिक उद्देश्यों के कारण बढ़ा दिया गया है। हम किसी भी ऐसे राजनैतिक गुट्ट या दल में नहीं रहना चाहते, जो न्याय, स्वाधीनता तथा भ्रातृभाव के आधार पर न संगठित हो।

गारंटी आवश्यक

इसलिए हम सिफ़ारिश करते हैं कि विधान द्वारा यह गारण्टी कर दी जाय कि सबको धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा मानसिक

स्वतन्त्रता रहेगी। सबको मिलने-जुलने तथा विचार प्रकट करने की स्वाधीनता मिलेगी। सभी नागरिक क़ानून की दृष्टि में बराबर समझे जायँगे, चाहे वे जिस जाति या धर्म के हों।

अल्प-संख्यक-विभाग

अच्छा होगा कि उक्त अधिकारों के संरक्षण के लिए प्रत्येक प्रान्त में एक अलग मन्त्री हो जिसके सुपुर्द अल्प संख्यकों का विभाग हो। सर्व-सम्मति से यह भी तय किया गया है कि वर्तमान विधान के अन्दर गवर्नरों के संरक्षण तथा गवर्नर जनरल को अल्पसंख्यकों के लिए जो विशेष अधिकार दिए गए हैं, वे रद्द कर दिए जायँ, क्योंकि वे व्यर्थ साबित हुए हैं, और साम्प्रदायिक झगड़े को बढ़ाते हैं।

कांग्रेस के साथ

विश्वविद्यालयों के ईसाई विद्यार्थियों के एक प्रतिनिधि मंडल ने ईसाई युवकों का विचार प्रकट करते हुए कहा कि हम युवक कांग्रेस के साथ हैं। क्योंकि जो आकांक्षाएं हमारी हैं वही कांग्रेस की हैं। मि० जिन्ना का रुख़ निन्दनीय है। ईसाई विद्यार्थियों के क्या राष्ट्रीय विचार हैं, इस के सम्बन्ध में हमें भ्रम में नहीं रहना चाहिए।

कान्फ़रेन्स और नेहरू

कान्फ़रेंस की ओर से नेहरू जी से यह प्रार्थना की गयी है कि वे भारतीय ईसाइयों के एक डेपुटेशन को कांग्रेस-अध्यक्ष से मिलाने का प्रयत्न करें, ताकि ईसाइयों को कांग्रेस-अध्यक्ष के समक्ष अपनी स्थिति और शिकायतें कहने का अवसर मिले। पंडित जी से यह भी कहा गया कि अखिल-भारतीय-कांग्रेस-कमेटी के प्रधान-कार्यालय में अल्पसंख्यक सम्प्रदायों का एक विभाग खोला जाय। भारतीय ईसाइयों का यह ख़याल है कि कुछ वर्ष पूर्व कांग्रेस-वर्किंग-कमेटी एक ऐसा विभाग खोलना चाहती थी, पर उसे न खोल कर उसने

मुसलिम-जन-सम्पर्क का विभाग खोला, जिसका फल यह हुआ कि आज कांग्रेस को एक नई परिस्थिति का सामना करना पड़ रहा है।

कांग्रेस मंत्रिमंडलों से शिकायत

पं० नेहरू को कुछ उन शिकायतों की भी सूचना दी गयी है जो कई प्रान्तों में कांग्रेस वादियों के रुख से ईसाइयों को है।

महात्माजो के लेख से भ्रम

कुछ ईसाइयों में महात्मा गांधी के पहिले के लेखों से थोड़ा भ्रम फैल गया है, जिनके कारण ईसाई लोग कांग्रेस से दूर हटते गये; पर यदि महात्मा जी कुछ लिखकर उन भ्रमों को दूर कर देंतो ईसाइयों का कांग्रेस से सहयोग होना बहुत सम्भव है।

कानफ़रेन्स किनकी थो ?

कुछ सरकारी व्यक्ति विशेष कर मि० वी० वी० डेविड एडवोकेट ने ईसाई कानफ़रेन्स करने वालों को एक पत्र भेजा है, जिसमें लिखा है कि यह कानफ़रेन्स कांग्रेस के पक्षपातियों की थी।

मिस्टर डेविड के ऐसे लोगों का कथन सत्य हो, या नहीं, इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि ईसाइयों में अभी अंग्रेज़ी शासन के दोस्त बहुत हैं, किन्तु साथ ही मानना पड़ेगा कि मिस्टर जिन्ना की तरह दो नेशन की तरह प्रतिक्रियावादो सिद्धांत का प्रतिपादन करने वाला नहीं है। ईसाई सम्प्रदाय एक प्रगतिशील सम्प्रदाय है।

—:o:—

अखिल-भारत 'भारत-रक्षा-दल'

पिछले दो वर्षों के अन्दर खाकसार आन्दोलन के ढंग पर हिन्दुओं और सिक्खों की जो अनेक सामाजिक-सैनिक संस्थाएं (शक्ति दल, अग्निदल, राष्ट्रीय एकता दल और दूसरे हिन्दू-रक्षा संघ) क़ायम हुई थीं, इन संस्थाओं के प्रतिनिधियों की एक संयुक्त कानफ़रेन्स के बाद फ़रवरी मास में सब मिला कर एक कर दी गयी हैं और इस नई संस्था का नाम 'भारत-रक्षा-दल' रखा गया है। इस संस्था के उद्देश्य और ध्येय ये हैं :—

(१) शान्ति और व्यवस्था क़ायम रखना, (२) स्त्रियों के सम्मान की रक्षा करना, (३) भारत का राजनैतिक तथा भौगोलिक रूप से विभाजन न होने देना और (५) साम्प्रदायिकता तथा फ़ैसिज्म के प्रचारों को रोकना।

कहा जाता है कि यह नयी संस्था ग़ैर-राजनैतिक तथा ग़ैर-साम्प्रदायिक होगी और सभी सम्प्रदाय के लोग इसके मेम्बर हो सकेंगे। इस संस्था के नेता पं० रामसरन दास ने एक वक्तव्य प्रकाशित करते हुए कहा है कि 'भारत-रक्षा दल' का सर्व प्रथम कार्य देश के सभी भागों में वालंटियर दल स्थापित करना है। इसकी शाखाएं पंजाब में तथा भारत के अन्य प्रान्तों में हैं। इसके पदाधिकारी ये हैं:—

१—लीडर—पं० रामसरन एडवोकेट २—चीफ़ कमांडर—ला० बेलीशाह कपूर ३—सेक्रेटरी ला० चुन्नीलाल बहल।

अभी हाल ही में पंजाब सरकार ने अपने तारीख़ २८ फ़रवरी सन् १९४० के नोटिफ़िकेशन द्वारा इस दल पर रोक लगादी है, जिससे यह दल हथियार लेकर या बिना हथियार के क़वायद या अन्य कार्य नहीं कर सकता।

——:०:——

सिख-आन्दोलन

पन्द्रहवीं शताब्दी में जिस समय लोधी वंश दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ था, हिन्दू जाति घोर अवनति के गढ़े में गिरी हुई थी। चारों ओर अविद्या, फूट और उँच-नीच का बोलबाला था ऐसे ही समय में गुरुनानक शाह का जन्म रायतुलपुर ज़िला शेख़ूपुरा, पंजाब में हुआ। जब वे बड़े हुए तो भारतवर्ष के हिन्दुओं की दयनीय दशा देख कर इनका मन विचलित हो उठा। हिन्दू हिन्दू का दुश्मन था। दूसरी ओर ज़ालिम हुकूमत हिन्दुओं पर अत्याचार कर रही थी। इस शोषण और उत्पीड़न को जड़ से उखाड़ने के लिए आपने सिख धर्म की नींव डाली। इस धर्म में हर मिल्लत व मज़हब के लोग, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, शामिल हो सकते थे; यही उस समय की कांग्रेस थी। जिन राजाओं, महाराजाओं के अत्याचारी शासन के विरुद्ध कांग्रेस आज बग़ावत का नारा बुलंद कर रही है, उसकी तरफ़ आपने सब से पहले ध्यान दिया। आपका कहना था कि "भारत के राजे शेर हैं और उनके कर्मचारी कुत्ते हैं, जो दिन भर प्रजा को लूटने पर भी रात को सोती हुई जनता को जगा कर लूटते हैं" आपने एक हिन्दू और एक मुसलमान को अपने साथ लेकर राजा-महाराजाओं, मन्दिर, मसजिदों को पाक साफ़ रखने तथा उँच नीच का भेद-भाव मिटाने के लिए एक जंग शुरू कर दी। आपने देश-देशान्तरों का भ्रमण भी किया। आप को हिन्दू और मुसलमान दोनों ही प्यार करते थे। आपने आज़ादी को प्रत्येक प्राणी का जन्म-सिद्ध अधिकार बतलाया।

गुरु गोविन्द सिंह और खालसा सेना

गुरु गोविन्द सिंह सिक्खों के नवें गुरु तथा गुरु तेग़ बहादुर सिंह के लड़के थे। इनके समय में औरंगज़ेब दिल्ली में राज्य करता था। औरंगज़ेब बड़ा ही कट्टर मुसलमान था। उसने गुरु तेग़ बहादुर सिंह को दिल्ली के चांदनी चौक में क़त्ल करा दिया था और गुरु गोविन्द सिंह जी भी उसकी नज़रों में सदैव खटका करते थे। गुरु गोविन्द सिंह का सिद्धान्त बड़ा ही अनूठा था और इसी सिद्धान्त पर सिख जाति हिन्दुस्तान में एक बहादुर क़ौम बनी। आप "विचित्र नाटक" में स्वयम् फ़रमाते हैं कि "मैं किसी का दुश्मन नहीं हूँ। मैं दुश्मन हूँ अत्याचार, शोषण और अन्याय का"

आपने सिखों का एक संगठन करना प्रारंभ किया और अपने नव-दीक्षित शिष्यों के दल का नाम "ख़ालसा" रक्खा, जिसका अर्थ है ख़ालिस या शुद्ध। यह दल अत्याचारी औरंगज़ेब के शोषण और उत्पीड़न को उन्मूलन करने के लिए संगठित हुआ था और शोषित जनता को ज़ालिम हुकूमत से बचाने के लिए। आपने प्रत्येक सिख के लिए पांच वस्तुएँ—केश, कंघा, कृपाण, कच्छ और कड़ा रखना आवश्यक बतलाया था। आज भी प्रत्येक सिख का अंग इन पांचों वस्तुओं से विभूषित रहता है। आपने ज़ालिम हुकूमत से छः लड़ाइयां लड़ीं और इनमें आप के चार पुत्र और लाखों सिख शहीद हुए परन्तु फिर भी आप का हौसला कम न हुआ।

कट्टरपंथी औरङ्ग़ज़ेब ने आपके दो लड़कों को जिनकी उम्र क्रम से नौ और सात वर्ष की थी, ज़िन्दा दीवार में चुनवा दिया था। इसके बाद बहादुर बन्दा भी सात सौ बहादुर सिखों के साथ दिल्ली में शहीद हो गया। इसके पश्चात् पूरे पंजाब पर सिखों का क़ब्ज़ा हो गया और उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में शेरे पंजाब रनजीतसिंह पंजाब का राजा

हुआ। इसकी धाक अंग्रेज़ लोग भी मानते थे। इनका राज्य यमुना से लेकर क़िला जमरौद तक फैला हुआ था। इनके मरने के बाद सिखों का राज्य अंग्रेज़ों के हाथ लगा।

नामधारी आन्दोलन

अंग्रेज़ी सरकार का पाया जब पंजाब में जम गया तो धार्मिक मामलों के सम्बन्ध में अंग्रेज़ और सिखों से अनबन हो गयी अंग्रेज़ों के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा हो गया और यह इतिहास में "कूका" या "नामधारी" आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध है। इस आन्दोलन में बहुत से सिख सम्मिलित हुए। अंग्रेजों को इससे बड़ा ख़ौफ़ पैदा हुआ और वे इसे कुचलने पर कटिबद्ध हो गये। इस आन्दोलन के बानी बाबा रामसिंह जी को देश निर्वासन का दण्ड मिला। इनका उद्देश्य यह था।—

(१) विदेशी कपड़ों का बहिष्कार (२) अदालतों का बहिष्कार। (३) अंग्रेज़ी नौकरी और शिक्षा का बहिष्कार।

अकाली आन्दोलन

जब महात्मा गांधी ने सन् १९२१ ई० में सरकार के ख़िलाफ़ असहयोग आन्दोलन चलाया था, सिखों ने भी अपने लिए यह अवसर उपयुक्त समझा और अपने गुरुद्वारों के ख़िलाफ़ जंग छेड़ दी। महन्तों का पक्ष सरकार ने लिया और हज़ारों की तादाद में अकाली सिख जेलों में ठूँस दिए गए। यह एक प्रकार का शान्ति-पूर्ण सत्याग्रह था और यह आन्दोलन अकाली सिखों के हाथ में था। उस समय इस शान्तिपूर्ण सत्याग्रह के लिए कई मोर्चे क़ायम हुए थे—जैसे गुरु का बाग़, नानकाना साहब, तरनतारन और भाई फेरू आदि। परन्तु दूसरी ओर जेतू गुरुद्वारा गंगासर में नाभा का प्रश्न उठ खड़ा हुआ। नाभा नरेश ने अपने सहधर्म्मियों की अंग्रेज़ सरकार की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ मदद की थी, और इस अपराध में

वे राजपद से च्युत कर दिए गये। इस मोरचे पर भी हज़ारों सिख जेल गए। परन्तु यह आन्दोलन बढ़ता ही गया और अंत में पंजाब काउन्सिल ने एक बिल पास किया, जो गुरुद्वारा ऐक्ट १९२५ के नाम से मशहूर है। इस क़ानून की रू से सिखों के तमाम धार्मिक स्थान इनके हवाले कर दिए गये। अकाली आन्दोलन के समय सिखों में दो दल हो गए थे। एक सरकारी दल था जिसका नाम 'चीफ़ ख़ालसा दीवान,' था और दूसरा राष्ट्रीय दल जिस का नाम 'अकाली दल है।

आज कल 'अकाली दल' ही सिखों की एक प्रतिनिधि संस्था है। इसका संबंध श्री शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी करती है, जिसमें अकाली दल द्वारा निर्वाचित सदस्य होते हैं। यह शिरोमणि गुरु द्वारा प्रबंधक कमेटी सिखों के धार्मिक तथा राजनैतिक दोनों पहलुओं पर प्रस्ताव पास करती है और कांग्रेस के साथ आज़ादी की लड़ाई में भाग लेने तथा क़ुरबानी करने के लिए सदैव तैयार रहती है।

नया कार्य-क्रम

अभी हाल ही में अकाली दल ने अमृतसर में १ अक्टूबर १९३९ ई० को अपनी मीटिंग में युद्ध-विषयक एक प्रस्ताव पास किया जिसमें कांग्रेस की मांग को जायज़ क़रार दिया। उसका सारांश नीचे दिया जाता है। 'ब्रिटिश सरकार अपने वर्त्तमान और भविष्य के इरादों को बतलावे और प्रस्ताव में यह भी कहा गया था कि शासन-संबंधी कार्यों में सिखों के साथ उचित न्याय किया जाय। सिख इस युद्ध में सहयोग करें।

इसके लिए यह आवश्यक है कि सरकार सिखों को अपने विश्वास में ले। सभा ने अकाली दल की वर्किंग कमेटी को एक युद्ध सब-कमेटी बनाने का अधिकार दिया तथा पंजाब के प्रधान मंत्री सर सिकन्दर हयात ख़ां का ज़ोरदार विरोध किया गया कि वे पंजाब के सभी सैनिक जातियों के प्रतिनिधि हैं। सभा ने यह भी घोषणा की सिखों का सर सिकन्दर हयात ख़ां में कुछ भी विश्वास नहीं है।

आल-इण्डिया-कैन्टूनमेन्ट-एसोसिएशन

म्युनिसिपैलटियों की उत्पत्ति

१६८७ में मद्रास में एक रायल चार्टर के द्वारा भारतवर्ष में पहिली म्युनिसिपैलिटी बनी। १७२६ में बंबई, कलकत्ता और मद्रास-इन तीन प्रेसिडेन्सी शहरों में म्युनिसिपैलिटियों को एक नये ढंग से बनाते हुए एक चार्टर फिर निकला। इस प्रकार धीरे धीरे म्युनिसिपैलिटियां बनती गयीं। किन्तु पहिले पहल १८०६ के रेगुलेशन नम्बर तीन के ही द्वारा छावनियों के अन्दर पुलिस तथा अमन का इन्तज़ाम आफ़िसर कमांडिङ्ग पर सौंपा गया। धीरे धीरे फ़ौजी छावनियों के पास व्यापार तथा अन्य कारणों से आकर बसने लगे, और इस प्रकार छावनियों के आस पास असामरिक नागरिकों की तादाद बहुत हो गयी। इस समय भारतवर्ष में कैंटूनमेन्टों की संख्या ९० के लगभग है, और इनमें पन्द्रह लाख आदमी बसते हैं।

कैन्टूनमेन्ट वासी के कष्ट

कैंटूनमेन्ट प्रान्तीय सरकार के अधीन नहीं है, ये सीधे तरीके से भारत सरकार के अधीन है। कैंटूनमेंटों में आफ़िसर कमांडिङ्ग की ही तूती बोलती रहती है, वहां के अधिवासी स्थानीय स्वायत्त-शासन से क़रीब-क़रीब वंचित हैं। यों देखने के लिए तो कैंटूनमेन्ट बोर्ड है, किन्तु एक तो वोटरों की सूची से लेकर चुनाव-दरख़्वास्तों का सुनना सब मिलिटरी आफ़िसर कमांडिङ्ग के अधीन है, दूसरी बात यह है कि बोर्ड के

सदस्यों में मिलिटरी की ही बहुसंख्या तथा उन्हीं का सभापति रहता है, नतीजा यह है कि कैंटूनमेन्ट के अधिवासियों को मामूली म्युनिसिपैलिटियों से दुगुना टैक्स देना पड़ता है। पानी तथा रोशनी का चार्ज दुगुना है, बोर्ड के अस्पतालों पर सामरिक डाक्टर मनमाने ढङ्ग से लादे जाते हैं और फिर जब लड़ाई में उनकी ज़रूरत हुई तो मनमाने ढङ्ग से उन्हें वापस ले लिया जाता है और बोर्ड से कहा जाता है कि वह अपना इन्तज़ाम आप करें; जिसको सामरिक आफ़िसर चाहता है, बदअमनों का बहाना करके निकाल देता है; व्यापार के लिए भी लैसंस लेना पड़ता है; बोर्ड के सदस्यों को राजभक्ति की प्रतिज्ञा करनी पड़ती है; ज़मीन क़ानून सख़्त हैं इत्यादि। कैंटूनमेन्ट के अधिवासियों की मांग यह है कि बोर्ड में चुने हुए लोगों की बहुसंख्या हो; चुना हुआ सभापति हो; बैलट से चुनाव के बजाय रंगीन बाक्स की पद्धति चलाई जाय; और ऊपर जो कष्ट बताये गये वे दूर किये जायँ। सारांश यह है कि अन्य म्युनिसिपैलिटियों की तरह कैंटों के अधिवासियों को हक़ मिले।

कैन्टूनमेन्ट एसोसिएशन

१९१९ के गवर्नमेन्ट आफ़ इंडिया ऐक्ट के अनुसार स्थानीय स्वायत्त-शासन प्रांतीय मंत्रियों का विषय कर दिया गया, किन्तु कैंटूनमेन्ट के अभागे अधिवासियों को इस क़ानून का कुछ फ़ायदा न हुआ। १९१९ की जनवरी में काम्पटी के राव बहादुर दीवान लक्ष्मीनारायण के सभापतित्व में अम्बाला में अखिल भारतीय कैंटूनमेन्ट एसोसिएशन का जन्म हुआ। इस ने कैंटूनमेन्टों में अपरिहार्य सुधारों की एक सूची बनायी, और सर चार्ल्स मनरो कमांडर इनचीफ़ के पास एक प्रतिनिधिमंडल भेजा। इस कोशिश के फलस्वरूप मिस्टर क्रेक के सभापतित्व में एक कमेटी बैठी। फिर दूसरी कमेटी बैठी, इस प्रकार कुछ छोटे छोटे सुधार हुए। इस बीच में दिसम्बर १९२० में पूना में,

जनवरी १९२२ में मेरठ में और मार्च १९२३ में रावलपिंडी में एसोसिएशन के अधिवेशन हुए।

एसोसिएशन के सभापतियों में श्री भूलाभाई देसाई रह चुके हैं, १६३९ में इस का अन्तिम अधिवेशन श्री एन० वी० गाडगिल के सभापतित्व में हुआ था। इस एसोसिएशन का मुखपत्र कैन्टूनमेन्ट गज़ट है। आश्चर्य की बात है कि १५ लाख व्यक्तियों के नागरिक अधिकारों से सम्बन्ध होते हुए भी कांग्रेस ने इसके सम्बन्ध में कोई नीति अख़्तियार नहीं की है। यदि कैन्टूनमेन्ट सम्पूर्णरूप से प्रान्तीय सरकार के मातहत आ जायँ, तभी ये कष्ट दूर हो सकते हैं। कैन्टूनमेन्टों में रहने वाले लोगों का अधिकार हमारी स्वतन्त्रता की लड़ाई का एक अंग है।

योरोपियन एसोसियेशन

यह संस्था सन् १८८३ में क़ायम हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य भारत में गोरी जाति की आर्थिक और राजनैतिक सत्ता को बढ़ाना और उसकी रक्षा करना है। इसकी भारतवर्ष में कुल बीस शाखाएँ हैं और एक त्रैमासिक पत्रिका भी निकाली जाती है। इसकी संकुचित और स्वार्थी नीति ने इसे भारतीय हितों का कट्टर शत्रु बना रखा है और यह सदा से भारतीय मांगों का बराबर विरोध करती रही है। ब्रूटिश सरकार और नौकर शाही से इसकी जन्म-जात मैत्री है और दोनों ही एक दूसरे का बराबर पोषण करती आयीं है। इसका मुख्य आफ़िस १७, स्टीफ़न कोर्ट, पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता है।

ऐंग्लो-इन्डियनलीग

यह संस्था भारतीय अधगोरों के राजनैतिक और आर्थिक हितों की रक्षा के लिए क़ायम है और इसकी भी नीति भारतीय स्वतंत्रता की मांगों के प्रति वैसी ही द्वेष पूर्ण और घातक है जैसी योरोपियन एसोसिएशन की। इसका मुख्य आफ़िस २ वेलस्ली स्कायर कलकत्ता है।

पारसी-राजकीय-सभा

यह संस्था सन् १८८१ में स्थापित हुई थी। इसका उद्देश्य पारसी समाज में राजकीय शिक्षा का प्रचार करना और पारसीयों में राजनैतिक कार्य की रुचि उत्पन्न कर के उन्हें देश की उन्नति और समाज की सहायता के लिए तैयार करना है। इसका मुख्य आफिस आपोलो स्ट्रीट, फोर्ट, बम्बई में है।

न्यू इंडिया लीग

नेशनल होमरूल लीग की स्थापना सन् १९१९ में डा० एनी बीसेन्ट ने की थी। इसका नाम इस समय 'न्यू इंडिया लीग' है। इसके सभापति डा० जी० एस० आरंडेल (थियोसोफ़िकल सोसाइटी, अडयार, मद्रास) हैं, इसका ध्येय पूर्ण स्वराज्य औपनिवेशिक स्वराज्य के साथ है। इसके प्रसिद्ध मेम्बर बा० हीरेन्द्रनाथ दत्त, मि० जमशेद नौ शेरवाँ जी, मि० रोहित मेहता और श्री राम हैं। इसका ध्येय हिन्दुस्तान के लिए पूर्ण स्वराज्य तथा ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वतन्त्र राष्ट्रों में समानता का पद प्राप्त करना है।

कांग्रेस-नेशनलिस्ट-पार्टी

इस दल की स्थापना कांग्रेस के भूतपूर्व सभापति पंडित मदन मोहन मालवीय ने उन हिन्दू कांग्रेस मैनों की सहायता से की जो साम्प्रदायिक निर्णय को राष्ट्र के लिए घातक समझते थे। कांग्रेस के कर्णधार इस मसले पर तटस्थता की नीति अख्तयार करके मौन साधे हुए थे, यही इस दल की अप्रसन्नता का कारण था। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में इसके सदस्यों की संख्या केवल दस-बारह है। आज कल इसके नेता मिस्टर अणे और पं० कृष्ण कान्त मालवीय हैं।

महात्मा गांधी ने अभी हाल में बंगाल से एक वक्तव्य प्रकाशित कराया था, जिसमें साम्प्रदायिक निर्णय का विरोध किया था। इससे इस दल को विशेष संतोष हुआ। आगे चल कर यदि कांग्रेस ने साम्प्रदायिक निर्णय का विरोध किया तो यह दल कांग्रेस में पूर्ववत् सम्मिलित हो जायगा।

—:o:—

जस्टिस पार्टी

मद्रास में हिन्दू जाति के अन्तर्गत ब्राह्मण तथा अब्राह्मण की समस्या बड़ी ही टेढ़ी है। इसलिए अब्राह्मणों ने मद्रास में अपना संगठन किया और इसका नाम जस्टिस पार्टी रक्खा। इस दल ने मांट फ़ोर्ड सुधार को बड़ी सफलता से कार्यान्वित किया। परन्तु कांग्रेस ने प्रांतीय स्वायत्त-शासन के पहिले ही आम निर्वाचन में इसे बुरी तरह से हराया। इस दल के नेता बबली के राजा हैं। दल का राजनैतिक कार्य-क्रम नरम है।

———

प्रजा पार्टी

इस दल की स्थापना बंगाल के वर्त्तमान प्रीमियर मिस्टर फ़ज़लुल हक़ ने प्रांतीय स्वायत्त-शासन के आम निर्वाचन के समय की थी। इस दल का राजनैतिक उद्देश्य बंगाल के मुसलमान किसानों की दशा सुधारना था। इस दल को बंगाल में काफ़ी सफलता मिली और इस दल से बंगाल के बहुत से प्रमुख मुसलिम लीगी नेताओं को हार खानी पड़ी। बाद में यह दल मुसलिम लीग से मिल गया और बंगाल में संयुक्त मंत्रि-मंडल क़ायम हुआ। इसके बहुत से सदस्य नरम कार्य-क्रम होने से इस दल से उदासीन हो गए हैं और इससे अलग भी हो गए हैं। अलग होने वाले सदस्य भी दो दलों में विभाजित हो गए हैं। कृषक-प्रजा पार्टी के नेता मिस्टर शम्सुद्दीन अहमद हैं। दूसरे दल का नाम निर्भग प्रजा पार्टी है। पुरानी प्रजापार्टी के कुछ सदस्य अब भी फ़ज़लुल हक़ के साथ हैं।

-:•:—

यूनियनिस्ट पार्टी

यह दल भारत व्यापी नहीं है, इसका सम्बन्ध सिर्फ़ पंजाब की राजनीति से है। यह सन् १९२४ में स्थापित किया गया था। सन् १९२४ से १९२७ तक पंजाब में इस दल की सरकार रही।

स्थापना

सन् १९२७ तक गवर्नर ने संयुक्त उत्तरदायित्व के सिद्धांत को स्वीकार किया, परन्तु सन् १९२७ के बाद प्रत्येक मंत्री पृथक् रूप से व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी माना जाने लगा। सरफ़ज़ली हुसेन और स्वर्गीय ला० हरकिशन लाल सन् १९२१ से २४ तक मंत्री रहे। किंतु इसी समय सरफ़ज़ली हुसेन ने पंजाब के हिन्दुओं को नाराज़ कर दिया और हिन्दू-मुसलिम विरोध यहां तक बढ़ा कि सन् १९२२ में हिन्दू-सभा-दल के नेता राजेन्द्रनाथ ने पंजाब कौंसिल में सर हुसेन के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव रक्खा। इसके बाद एक कृष्ण-दल का निर्माण हुआ जो सन् १९२४ में 'यूनियनिस्ट' दल के रूप में परिवर्तित हो गया।

मुद्रक—नारायण प्र ... बिल्डिंग, प्रयाग।